पजाब केसरी पूज्यश्री काशीरामजी महाराज के
सुशिष्य पं. मुनिश्री शुक्लचंद्रजी म द्वारा रचित

अष्टम त्रीक महापुरुष चरित्र

जैन रामायण

(पूर्वार्ध)

प्रकाशक
लाला हंसराज शादीलाल जैन

मूल्यः
१-८-०

पंजाब केसरी पूज्यश्री काशीरामजी महाराज के
सुशिष्य पं. मुनिश्री शुक्लचंदजी म द्वारा रचित

अष्टम त्रीक महापुरुष चरित्र

जैन रामायण

(पूर्वार्ध)

प्रकाशक .
लाला हंसराज शादीलाल जैन

मूल्यः
१-८-०

पुस्तक मिलनेका पता –

लाला हंसराज शादीलाल जैन
१५८, बारभाई मोहल्ला, बम्बई नं. ३

धी लक्ष्मी मेडीकल स्टोर्स
७९, शीका स्ट्रीट, गुलालवाडी, बम्बई नं. ४

प्रथम आवृत्ति १०००
वीर संवत २४६७
विक्रम संवत १९९७

मुद्रक.–
हर्षचंद्र कपुरचद दोशी
श्री सुखदेव सहाय जैन कॉन्फ. प्रि प्रेस
४५१, कालबादेवी रोड, बम्बई २

गुरुवन्दन

दो.— गुरु रतनाकर समरतन, आचार्य सम्राट् ।
पूज्य सोहनलालजी की कृपा, खोले ज्ञान कपाट ॥
सार वस्तु ससार में कहा, जिन धर्म एक ।
चूरण कर सब दु:खों का, अविचल राखे टेक ॥
आकर्षण शक्ति कही, सर्व सुखों की यह ।
सच्चिदानन्द वरते सदा, अमृत वरसे मेह ॥
मोक्ष ही अपना गृह है, मोक्ष ही अपना ध्येय ।
वीर प्रभु के मार्ग से, लगा हमारा नेह ॥
पंजाब केसरी धर्माचार्य, गुरुवर पूज्य हमारे है ॥
हम जैसे पामर पतितों को भी, देकर ज्ञान सुधारे है ॥
जिस जिसने जो उपकार किया, मैं उन सब का आभारी हू ।
कृपया अपराध क्षमा करना, क्योंकि नादान अनाडी हू ॥
विनय सहित कर नमस्कार, आज्ञा ले कलम उठाता हूं ।
निर्विघ्न कार्य सिद्ध वने, आशिर्वाद यह चाहता हू ॥
सिया राम लखन का चरित्र, शिक्षाप्रद अति सुख कारक है ।
त्रियोग शुद्ध जो "शुक्ल" पढे, उन सब का कलमल हारक है ॥

शुक्ल मुनि

साभार धन्यवाद

इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये रु ४००) श्रीमान लाला हसराजजी शादीलालजी जैन (पंजाब) हाल बम्बई और कलकत्ता वालोंने सहायतार्थ दिये हैं जिनका कि इस पुस्तक की उपजमें से नयी आवृत्ति प्रकाशित करने में उपयोग किया जायगा।

॥ ॐ ॥

प्रकाशक का निवेदन

जैन रामायण नामक ग्रंथ को पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। सं १९८२ के चातुर्मास में जब प्रखर प्रतिभा संपन्न बाल ब्रह्मचारी पंजाब केसरी पूज्यश्री काशीरामजी म. सा आदि पूज्य संतगण जेजू (पंजाब) नामक क्षेत्र में थे। तब वहां के श्रावकों ने व्याख्यानरत्न पंडित मुनिश्री शुक्लचन्द्रजी म सा को एक जैन रामायण के लिये कई अनुरोध एवं आग्रह किये। महाराज श्री को यह बात जच गई तथा शुभस्य शीघ्रं के अनुसार रामायण का शीघ्र ही श्री गणेश हो गया।

यह पुस्तक जेजू (पंजाब) से प्रारंभ होकर सं १९८६ में लगभग अम्बाला में समाप्त हुई। हम जेजू क्षेत्र के रामायण के सुप्रेरक लाला पन्नालालजी एवं राजारामजी का यहां आभार प्रदर्शित कर देना उचित समझते हैं। क्यों कि यह पुस्तक उन्हीं की प्रेरणा का फल मात्र है।

यद्यपि इस की रचना बहुत समय पूर्व ही हो चुकी थी, लेकिन समय समय पर ऐसे अनुकूल साधनों की प्राप्ति नहीं होने से प्रकाशित न हो सकी।

इस पुस्तक के प्रस्तावना लेखक श्री शान्ति स्वरूपजी "रत्न" महाराज सा ने एवं मुनिश्री फूलचन्द्रजी म सा ने आवश्यक पुस्तक संबंधी कार्य एवं संशोधन किये इस में आप लोगों का पूर्ण आभारी हूं। तथा समय समय पर संशोधन कर्ता श्री [illegible] सेठी

होशियारपुर और श्री मुशीरामजी अमर कवि होशियारपुर तथा श्री किशोरीलालजी अम्बाला वाले बहुत धन्यवाद के पात्र है। मैं उनका हृदय से आभार मानता हूं। इस के बाद सम्पूर्ण रामायण तैयार होने के बाद इस की प्रथम प्रेस कॉपी करवाने का प्रबन्ध करवाने के लिये मनमाड निवासी श्री खेमराजजी, श्री दीपचन्दजी, श्री गुलाबचन्द्रजी, तथा श्री चुन्नीलाल ने जो तन, मन और धन से सहायता दी है, अत. उन को भी सहर्ष धन्यवाद दिया जाता है।

अब दूसरी प्रेस कॉपी करवाने के लिये प्रबन्ध करने वाले बम्बई संघ के सेक्रेटरी सेठ श्री जमनादास खुशालदास वोरा को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते हैं। तथा साथही डाक्टर नारायणजी मोनजी वोरा M B B. S. ने इस पुस्तक के लिये प्रेस कॉपी मे सहायता और अन्यस्थलो से पत्र व्यवहार आदि का कार्य करके तथा अन्य सभी भार लेकर जो सेवा की है एतदर्थ उनको हम हार्दिक धन्यवाद देते है। तथा प्रस्तुत पुस्तक की द्वितीय प्रेस कॉपी के लेखक पं श्री मानमलजी नलवाया छोटी सादडी निवासी को भी धन्यवाद दे देना परमावश्यक है जिन्होनें कि लेखन कार्य प्रूफ संबंधी सब कार्य अत्यन्त सावधानी पूर्वक संभाला है। अस्तु।

पाठक वृन्द इस ग्रन्थ की अधिक से अधिक उपयोगिता समझ-कर इसका लाभ लेगें तभी रामायण की रचना करने वाले मुनिश्री शुक्लचन्द्रजी म सा का भी प्रयास सार्थक होगा।

प्रकाशक

लाला हंसराज शादीलाल

—नमो चतुर्विंशति जिनाय—

प्रस्तावना

जिस महा पुरुष के परम पुनीत नाम को आबाल वृद्ध वनिता प्रातःकाल से ही सुमधुर सुघोष से उच्चारित कर, चतुर्दिक परिपूर्ण, कर हर्षोन्मत्त बने स्वजन्म कृत कृत्य मानते हैं, जिस पुरुषोत्तम के पावन चारित्र को पठन पाठन व श्रवण कर आर्यावर्तीय ही नहीं अपितु पाश्चात्य विद्वद्वर्ग भी हर्ष विभोर हुए बिना नहीं रहता, जिस नर केशरी के असामान्य चारित्र की प्रखर अतिशय शुभ्ररश्मियां अज्ञानतिमिर परिपूर्ण व धर्मान्धता के मद से मदोन्मत्त संकीर्ण हृदयी मनुज के भी अन्तस्तल को स्पर्शित किये बिना नहीं रहतीं, उन्हीं पुरुष प्रधान महात्मा भगवान राम व जगज्जननी मनस्विनी स्वनाम धन्य तथा अनुपम पतिव्रत धर्म रूपी प्रचंड मार्तंड के उत्तप्त ताप से मलपूर्ण व पापपूरित हृदय की कालिमा को दग्धकर, अन्यायियों के हृदयों में चकाचौंध उत्पन्न कर देनेवाली माता सीता की चारित्र मणियों की निधि स्वरूप रामायण को किस प्रेमी पाठक का अन्तस्तल अवलोकनार्थ चंचल न हो रहा होगा।

इस अनन्तनीलाकाशस्थ जगति मण्डल का अनादि नियम है कि इसका वास निवासी जो कि क्रूर कर्म रत होकर धर्म मनाता है [illegible] की अपेक्षा अधर्म को अधिक मात्रा में उपादेय समझता है, प्रकृति विरुद्ध नियमों का निःशंक भाव से प्रयोग करता है, अर्थात् पाप प्रकृति के वशीभूत हो स्वार्थान्ध बन अपर पुरुष के लिये अहित से अधिक मात्रा में हानिप्रद कर्मों का अनुष्ठान कर [illegible] होता। ऐसे अत्याचारियों से [illegible] दुर्बल निवासी [illegible] है

उन के प्रति घृणा बीजांकुरो को पल्लवित करने के लिये बाध्य होते है और जब वे यह निहारते हैं कि उनके विश्वमंडल का उपरोक्त कर्मा एक सदस्यताका अंत कर रहा है तब वे शोक की अपेक्षा अत्यधिक आनन्दित होते हुए घृणा प्रदर्शित कर नामोच्चारण करते हैं। दूसरी तरफ वह सदस्य जो कि प्राणी मात्र को निज बन्धु मानता हुआ शत्रु मित्र पर सम भाव से उपकार करने मे रत रहता है, कष्टावस्थावस्थित प्राणी के कष्ट को दूर करने के लिये निज तन मन धन सर्व्स्वसमर्पण करता है, सत्याचरण में ग्रीवा भी बलिवेदी पर बलिदान करने के लिये तत्पर रहता है उदार हृदयधारी, धर्मपालक, दु खभजक, प्राणीमात्र के विशाल वक्षस्थल पर निजप्रतिमा प्रतिबिम्बितकर निज अनुगामी बना अन्तिम अवधिमे विश्व को शोक सागर मे निमज्जितकर प्रहसितवदन से सदस्य-ताको त्यागदेता है। ऐसे महापुरुष को विश्व अपनाता है। अत्यन्त आदर पूर्वक निजस्वान्तमे उसके लिये पीठिका बिछाता है उसके नाम स्मरण से मुक्ति मानता है उसका आदर्श आचरणीय जीवन पठन, पाठन श्रवण मनन करना एक मुख्य कर्तव्य समझता है, परन्तु प्रथम उपरोक्त दुर्जनजन कि जिनका स्वभाव "जलौकास्तनसंपृक्तौरक्तपिवतिना-मृतम्" के अनुसार होता है ऐसे महापुरुष के जीवन में भी छिद्र देखने की व्यर्थ चेष्टा किया करते हैं। जिस प्रकार अत्यन्त रमणीक व सुदृढभवनमें भी पिपीलिका छिद्र निहारनेका अथक परिश्रम करती है परन्तु इससें उन महापुरुषों पर दूषण नहीं लग सकता। ये उन दुर्जनो की दुष्ट प्रकृति का ही दोष समझना चाहिये जैसे कि —

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषों वसन्तस्यकिं।
नोल्लूकोऽप्यविलोकते यदि दिवा सूर्यस्यकिं दूषणम्॥
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं।
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं क क्षम॥

अर्थात् जिस बसन्त से वनस्पति मात्र में नवयौवन प्रस्फुटित हो उठता है तथा जो दिवाकर सम्पूर्ण लोकको प्रकाश प्रदान करता है अथवा जो वारिवाह प्राणी मात्र की तृषा को शान्त करने वाला व आनन्ददायक, है। उसमें यथाक्रम करीर का पौदा वसतसे, सूर्यसे उल्लू व मेघसे चातकपक्षी लाभ नहीं प्राप्त करते तो उनकी क्या महत्ता घटगई? इसी प्रकार प्रस्तुतविषय में भी समझना चाहिये कि यदि वे महज्जनों के पुनीत इतिहास से लाभ नहीं उठाते तो उनका कुछ बिगाड भी नहीं सकते।

किसी भी देश व धर्म के पुनरुत्थानमें उसके नायकोंका जीवन चरित्र अधिक लाभ दायक सिद्ध होता है जैसे कि देखने मे आता है कि जब सेनानायक निज सैन्यको संग्राम के लिये कूच करने की आज्ञा देने को तत्पर होता है तब सबसे प्रथम सैनिकों को सम्बोधित करता हुआ उनके पूर्वजों की वीरता का वर्णन करता हुआ बतलाता है कि देखो तुम्हारे देश वासियो ने व वशजो ने अमुक युद्ध मे निज देश व धर्म की रक्षा के लिये किस वीरता से शत्रु के छक्के छुडा दिये थे। उसी तरह तुम भी निज पूर्वजो का अनुकरण करते हुए संसार को दिखा दो कि जब तक हम उनके वशज जगतितल पर विद्यमान है तबतक किसी की भी शक्ति नहीं कि उनके देश व धर्म की तरफ आख उठाकर देखसके। परिणाम यह होता है कि मृतप्राय सैनिकों में भी विद्युतलहर दौड़ जाती है और निज पूर्वजों के कर्तव्य सुन अद्भुत वीररसका पान करते हुए अदम्य साहसी अदम्यशूर बन जाते हैं और जीवन के अन्तिम रक्त बिन्दुतक निज महापुरुषो के नामों पर आच नहीं आने देते। इसके विपरीत जहां नायकों के इतिहासों की शून्यता हो वहा कहना पड़ेगा कि—

हो देश और जिस धर्म मे इतिहास की अल्पता।
निर्धन से निर्द्वन्द सज्जन कीजिये साहसता॥

उन के प्रति घृणा बीजांकुरो को पल्लवित करने के लिये बाध्य होते हैं और जब वे यह निहारते हैं कि उनके विश्वमंडल का उपरोक्त कर्मा एक सदस्यताका अंत कर रहा है तब वे शोक की अपेक्षा अत्यधिक आनन्दित होते हुए घृणा प्रदर्शित कर नामोच्चारण करते हैं। दूसरी तरफ वह सदस्य जो कि प्राणी मात्र को निज बन्धु मानता हुआ शत्रु मित्र पर सम भाव से उपकार करने मे रत रहता है, कष्टावस्थावस्थित प्राणी के कष्ट को दूर करने के लिये निज तन मन धन सर्वस्वसमर्पण करता है, सत्याचरण में ग्रीवा भी बलिवेदी पर बलिदान करने के लिये तत्पर रहता है उदार हृदयधारी, धर्मपालक, दु:खभंजक, प्राणीमात्र के विशाल वक्षस्थल पर निजप्रतिमा प्रतिबिम्बितकर निज अनुगामी बना अन्तिम अवधिमे विश्व को शोक सागर मे निमज्जितकर प्रहसितवदन से सदस्यताको त्यागदेता है। ऐसे महापुरुप को विश्व अपनाता है। अत्यन्त आदर पूर्वक निजस्वान्तमें उसके लिये पीठिका बिछाता है उसके नाम स्मरण से मुक्ति मानता है उसका आदर्श आचरणीय जीवन पठन पाठन श्रवण मनन करना एक मुख्य कर्तव्य समझता है परन्तु प्रथम उपरोक्त दुर्जनजन कि जिनका स्वभाव "जलौकास्तनसंपृक्तौरक्तपिवतिनामृतम्" के अनुसार होता है ऐसे महापुरुप के जीवन में भी छिद्र देखने की व्यर्थ चेष्टा किया करते हैं। जिस प्रकार अत्यन्त रमणीक व सुदृढभवनमे भी पिपीलिका छिद्र निहारनेका अथक परिश्रम करती है परन्तु इसमे उन महापुरुपों पर दूपण नहीं लग सकता। ये उन दुर्जनो की दुष्ट प्रकृति का ही दोप समझना चाहिये जैसे कि —

पत्र नैव यदा करीरविटपे दोपों वसन्तस्यकिं।
नोल्लूकोऽप्यविलोकते यदि दिवा सूर्यस्यकिं दूपणम्॥
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूपणं।
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखित तन्मार्जितुं क क्षम॥

अर्थात् जिस वसन्त से वनस्पति मात्र में नवयौवन प्रस्फुटित हो उठता है तथा जो दिवाकर सम्पूर्ण लोकको प्रकाश प्रदान करता है अथवा जो वारिवाह प्राणी मात्र की तृषा को शान्त करने वाला व आनन्ददायक, है। उससे यथाक्रम कैर का पौदा वसंतसे, सूर्यसे उल्लू व मेघसे चातकपक्षी लाभ नहीं प्राप्त करते तो उनकी क्या महत्ता घटगई? इसी प्रकार स्वलविषय म भी समझना चाहिये कि यदि वे महाजनो के पुनीत इतिहास से लाभ नहीं उठाते तो उनका कुछ बिगाड भी नहीं सकते।

किसी भी देश व धर्म के पुनरुत्थानमें उसके नायकोंका जीवन चरित्र अधिक लाभ दायक सिद्ध होता है जैसे कि देखने मे आता है कि जब सेनानायक निज सैन्यको संग्राम के लिये कूच करने की आज्ञा देने को तत्पर होता है तब सबसे प्रथम सैनिकों को सम्बोधित करता हुआ उनके पूर्वजो की वीरता का वर्णन करता हुआ बतलाता है कि देखो तुम्हारे देश वासियों ने व वंशजों ने अमुक युद्ध मे निज देश व धर्म की रक्षा के लिये किस वीरता से शत्रु के छक्के छुडा दिये थे। उसी तरह तुम भी निज पूर्वजो का अनुकरण करते हुए संसार को दिखा दो कि जब तक हम उनके वंशज जगतितल पर विद्यमान है तबतक किसी की भी शक्ति नहीं कि उनके देश व धर्म की तरफ आंख उठाकर देखसके। परिणाम यह होता है कि मृतप्राय सैनिकों में भी विद्युतलहर दौड जाती है और निज पूर्वजो के वर्तव्य गुन सदृश वीररसका पान करते हुए अदम्य साहसी रणशूर बन जाते हैं और जीवन के अन्तिम श्वास पर्यन्त निज महापुरुषो के नामो पर आंच नहीं आने देते। इसके विपरीत उन नायकों के इतिहासों की शून्यता हो तब कहना पडेगा कि—

> हो देश और जिस धर्म म इतिहास की शून्यता।
> निश्चय मे निर्दिष्ट सतत न कीजिये सार्थकता।

क्योकर भला जीवित कहैं जिस देहमे न प्राण हो ।
'शान्ति'' भला कैसे वे जन जिनमें न स्वाभिमानहो ॥

विद्वज्जनो के वाक्योमें कहना होगा कि देश व धर्म रूपी कलेवर मे उसके अपनाने वाले महत्पुरुषो के लाभप्रद जीवन प्राणभूत होते है । तथा किसी भी प्रकार के जीवन चरित्र के विषयमें हम हेय, ज्ञेय उपादेय इन तीन सैद्धान्तिक शब्दोंको बिनाकिसी हिचकिचाहट के उपस्थित कर सकते है । जिसमे गर्हित कर्म हेय, ज्ञातव्य विषय यथा गणिकाकी आकर्षक विधि जिससे उसके चंगुल से सावधान रहा जा सके ज्ञेय, तथा आचरणीय विषयको उपादेय समझना चाहिए । इसप्रकार रामायण के प्रधान नायकोके चरित्र अतिसुगम व स्पष्ट रीतिसे चित्रित किये जा सकते हैं यथा—श्रीरामका गुरू जन आज्ञा पालन, कर्तव्य परायण, "क्षमा वीरस्यभूषणम्" की उक्ति चरितार्थ कर दिखाना, निरभिमानता, शत्रुपर भी मित्रभाव परन्तु दुष्कर्मियोके लिये कालरूप आदि । लक्ष्मण का अनुपम भ्रातृप्रेम अद्भुतकर्तव्यनिष्ठा "खलस्यदंड सुजनस्यत्राण," गुरुजन वाक्यमर्यादा आदि । सीता का नारी धर्म कर्तव्यज्ञान पति सुश्रुषा, धर्मरक्षा मे निर्भीकतादि। भरत की निर्लोभनीय वृत्ति, गुर्वाज्ञापालन, भोगादि, से निवृत्ति, प्रजावात्सल्यादि, वीर विराध सुग्रीव हनुमान विभीषणादि का कर्तव्यज्ञान, सत्यग्राहकता स्वामीभक्ति, सेवक कर्तव्य, असहाय की सहायता अनुपम शूरता, तथा मन्दोदरी की नीतिपरायणता, नारित्व रक्षा सत्यकथन में निर्भीकता, आदि कार्य आबालवृद्ध वनिता के लिये अनुकरणीय है उपादेय है । तथा मन्थरा की हृदय संकीर्णता के वशीभूत हो उसके वागजाल मे फस कैकयी का अपनत्व विस्मृत करना सूर्पनखा के द्वारा अकुलीनताका प्रदर्शन, मृगितोद्देशसे स्त्रीहत्या आदि ज्ञेय रूप में गिननी चाहियें, तथा दशकन्धर की नैतिक असंयमता, अहंकारात्मक वृत्ति आदि अनर्गल कृतियां हेयरूप है त्यजनीय है ।

अभूत पूर्व अलौकिक शक्ति को प्रगटाते हुए तथा विश्व मंडल के सदस्यो को उनके कर्तव्य पथपर आरूढकर अपने वास्तविक गुण अनंत ज्ञानमय स्वरूप को प्राप्त कर आत्म पद से परमात्मपद को प्राप्त कर लेता है" । शीघ्र ही किसी भी पुरुष को जिसने दिक् विभ्रमगत पृषत् के समान अज्ञान व मात्सर्य के वशीभूत हो झगडते हुए विमूढ मनुष्यो का नेतृत्व कर सत्पथपर लाने का प्रयास किया नहीं, कि तुरन्त किसी को अंशावतार किसी को पूर्णावतार के पद से विभूषित कर उस घडी के समान कि जिस में कारीगर ने चावी आदि भर कर चला दी हो, उपस्थित कर उस की महानता तथा अनुगामियो के हृदयस्थ महान पथ पर अग्रसर होने के रम्य उत्साह को क्षीण कर डालने में सहायक सिद्ध होते हैं । तथा इसी वार्ता को प्रगटाने के लिये महा पुरुषो के मनुष्यत्वका भी हरण कर किसी को पशुत्व व किसी को निशिचरत्व पद विभूषित कर अन्धश्रद्धालुओ के सिवाय इस बौद्धिक कालके भगवान राम व पवन पुत्र के उपासक विद्वन्मंडल के आस्वनितमे गहरी अश्रद्धा व तिलमिलाहट उत्पन्नकर महापुरुषों के जीवनपर व्यंगपूर्वक उपहास्य करनेका समय प्रदान कर दिया जाता है । परन्तु उपस्थित ग्रन्थके लेखक माननीय विद्वान पं. मुनिश्री शुक्लचन्द्रजी महाराज का प्रयास स्तुत्य है और पूर्ण आशा है कि आर्षग्रन्थों की सहायता पेक्षित हो । आधुनिक गायन प्रणाली अनुसार रचित ग्रन्थके अन्तर्गत उत्साही पुरुषोंको सुभाषित वचनामृत व चरित्रावलोकन कर आचरण करने से इहलौकिक व पारलौकिक सम्बन्धि उभय प्रकार का लाभ प्राप्त होगा । क्योंकि हमें एक २ पात्रके चरित्रमें अनमोलरत्न देखने को मिलते हैं, श्रीराम की वह आदर्श पितृभक्ति कि जिससे प्रेरित हो अपने सम्पूर्ण सुखों को ही नहीं वरन् राज्याभिषेक से भी मुंह मोडकर वन के भयकर कष्टों को जानबूझकर तथा कोई १—२ दिवस के लिये

नहीं बल्कि १४-१४ वर्ष के लिये निज सिरपर उठालेना कर्त्तव्यनिष्ठता का बड़ा ज्वलन्त उदाहरण है। फिर माता सीता का पतिव्रत धर्म प्रेरित होकर हर्म्य के सुखों पर लात्थी ठोकर मारना तथा श्रीराम के इस समझाने पर कि 'जिस तुमने बिना यान के कभी गमन नहीं किया किस प्रकार वनों के कण्टकाकीर्ण पथोंपर अग्रसर हो सकोगी, जो अरण्य हिंसकजन्तुओं से परिपूर्ण है तथा भयंकर सन्ध्यता की नग्नमूर्ति है उस विकट अटवी में किस प्रकार सखी परिवार से रहित विचरण कर सकोगी? किस प्रकार भूमिशयन कर सकोगी? किस प्रकार वन्य फलों से क्षुधा को शान्त कर सकोगी, तुम नारी हो नारी जाति प्रकृति कोमल होती है इस कारण वह अटवी तुम्हारे योग्य नहीं है''। क्या ही सुन्दर शब्दों मे उत्तर देती है कि प्राणेश्वर मै अर्धांगिनी हूं। विश्व मे कहीं भी ऐसा देखने व सुनने में नहीं आता कि काया का अर्धभाग तो चल दिया हो और अर्धभाग अवस्थित रहा हो या अर्ध की छाया पड़ती हो और आधे की नहीं फिर आप किस प्रकार मुझको छोड़ सकते है? तथा आप जो कष्ट मेरे सन्मुख उपस्थित करते है आप उनके भय से सभ्यस्त हैं? प्रभो आपके चरण कमलो के दर्शन होते रहने से शूल भी फूल समान हो जावेंगे। वन्यजन्तु पालतू श्वान सम बन जावेंगे। साधर्मीलतादि मेरी सखियां होंगी, तथा जहां आपकी चरण सेवा हो सकती है वहीं स्थान मेरे लिये [illegible] सौध है। सुखदुख मे सर्वत्र पति का पतिपद अनुसरण कर्तव्य है इस में विपरीताचरण करने की इच्छा भी हीनत्व की सूचक है तथा

> प्रारम्भ [illegible], [illegible]।
> [illegible] [illegible] [illegible] ॥
> [illegible] [illegible] [illegible]।
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

हे षट्पद ! वसन्तारम्भ पर जब आम्र मंजरी विकसित हुई उस समय तो मधुर गुंजारव करता हुआ मंडराता रहा परन्तु शक्ति क्षीण होने से भाग्यवशात् पुष्पविहीन वृक्ष हो गया तब उसको त्यागते हुए तेरे समान अन्य कौन नीच होगा ? अब विचारिये कि जब एक तिर्यंच को भी तोता चश्मी के कारण इतना धिक्कार सहना पडता है। प्रभो फिर मैं तो वीर कन्या हू वीर पत्नी हू, अर्धांगिनी हू किस प्रकार अपने जीवन धन से विपत्ति में विलग होकर कर्त्तव्यच्युत हो तिरस्कार से तिरस्कृत जीवन को धारण कर सकूगी ? इस प्रकार यहा तो आदर्श दम्पति इस तरह के विचार विनिमय में संलग्न हैं। उधर महा उद्भटयोद्धा, प्रचंड तेजस्वी, अनुज लक्षण जब ये सुन पाते है कि राम का वन गमन है, भ्रातृ सेवार्थ शीघ्र माता के चरणो में शीश निवा गमन की अनुमति प्राप्त करने के समय माता की, किस ओजस्वीवाणी को श्रवण करने का अनुपम समय प्राप्त करते है कि अय पुत्र आज तक तुम राम के भ्राता थे परन्तु आज से तुम अपने को उनका चाकर समझना, राम की जनक समान सेवा करते हुए सीता की मेरे समान (जैसे मेरी सेवा करते हो) सेवा करना । जहां राम का पसीना गिरे वहा अपना खून बहाना कर्त्तव्य समझना । यदि सेवा करते समय शीश की भी अवश्यकता पडने पर आनाकानी न करना तो मैं समझूंगी कि मैं पुत्रवती हू लक्ष्मण ने मेरा दूध पिया है । अहा ! कितने भाग्यवान थे वे पुरुष जो निजमाताओ के मुखसे ऐसी उच्चकोटि की शिक्षा श्रवण कर निज जन्म पवित्र करते थे । अन्त त्रिवेणी संगम होकर के भव्यजनोके त्रय तापका हरण करते हुए निर्भीक चित्तसे विचारने लगे ! प्राणप्रिया सीताके से दुस्सह वियोग से उत्तप्त हृदयान्वित होते हुए भी जिस समय वीर विराध व सुग्रीव शरणार्थीवन निज दुःखसे मुक्त होनेके लिये प्रार्थना करते है तो महात्मना शीघ्रही स्वकष्ट की

हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी ?
आवो विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी ॥

सुनो ! आये वर्ष रामलीला न पता कब से मनाते आ रहे है । दो बालको को सुन्दर वेष पहना हाथ मे खप्पच का धनुषबाण देकर खूब धूम धाम से सवारी निकालते हैं और ले जाते हैं वहा जहां कि खडा होता है कागज का रावण, बडे उत्साह से सीखो के बाण चलवाकर आग लगवा दी जाती है और फिर दर्शक गिनते हैं कि रावण के पेट से कितने गोले चलते हैं । कोई निरखता है कि छातीपर आतिश की कैसी सुन्दर माला बनाई गई है तुरन्त सिर से गोला छुटता है और उपस्थित समाज में भगदड मच जाती है बस फिर क्या है ? सर्वत्र चीख पुकार धक्कम से व मुक्का सफाई वालाओं का हरण तथा बनावटी रावण का अन्तकर असली रावण बन बैठना । मित्रो ? इस प्रकार प्रतिवर्ष रामलीला का स्वांग रचाकर उन महा पुरुषोंका घोर अपमानकर हम मन में अतिहर्षाते है और बोलते हैं कि रावण मारा गया बोल श्री रामचंद्र कि जय । परन्तु वास्तव में रावण कहा मारा गया जबकि स्वय उसकी मूर्तिबने बैठे हैं तथा उसके प्रत्येक कार्य के स्वयं पोषक हैं ! एक ही स्तन का पयपान करने पर भी परस्पर स्नेह भावसे विलोक भी नहीं सकते फिर कष्टावस्था में सहाय्य भाव लाना तो कहां तक सम्भव हो सकता है । प्रतिदिन लंगोट कस २ कर महोदगे को अदालत रूपी अखाडो मे उतरते हुए निरखते हैं और प्रतिज्ञा करते हुए सुनते' हैं कि चाहे घरबार लुटजाय स्त्रीके गहने कपडे भी बन्धक क्यो न रखने पडें लेकिन इसको तो एक बार जेल में घुमाकर ही दम लूगा । इसके पश्चात प्रतिज्ञापूर्तिके लिये माननीय विद्वद्वर्ग (वकील) की शरण मे जाता है । कहां तो उन सज्जनो का कर्तव्य था कि असत्यपन्थी को डांटकर वहीं उसका सम्पर्क कराके

वर्द्धनशील विद्वेषानल को शान्त कर देते परन्तु होता है उसके विपरीत ये सभ्य कृषि सम्बन्धी गवाहियां व्यापार पुनीत साधन जिस सभ्यके रक्षार्थ पूर्वजों ने जान की बाजी भी लगाई, अपना सर्वस्व त्यागन करने में संकोच नहीं किया उसी पर उनके सुशिक्षित सभ्य पुत्र ही कुठार घात करने नहीं हिचकिचाते ।

है काम जितनों का यहां, पहले वहां मिस्टर बने ।
इंगलैंड जाकर फिर यहां वापीर बारिस्टर बने ॥

वे वीर हाय स्वदेश का करते नहीं उपकार हैं ।
दो भाइयों के युद्ध में होते यही आधार हैं ॥

उनके भरोसे पर यहां अभियोग चलते हैं बड़े ।
हारें कि जीतें आप, उनके किन्तु पौबारह पड़े ॥

में विस्तृत अनार्यत्व का मूलोच्छेद कर परम्परागत समुज्वल आर्यावर्त नाम को वास्तविक रूप में प्रगटित कर दिग्दिगंत कीर्ती चंद्रिका से अवलोकित करते हुए आत्मा के परम ध्येय निर्वाण पद को प्राप्तकर महापुरुषो के सच्चे अनुयायी कहलानेके हकदार बन सकें ! अधिक कुछ न लिखता हुआ मैं अन्त मे विद्वान् पाठकों से नम्र निवेदन करूंगा कि वे इस अलौकिक ग्रन्थ को अपनी बुद्धि रूपी कसौटी पर भी कसते हुए अपनाने का कष्ट कर माननीय विद्वान् लेखक मुनि-महाराज के अथक परिश्रम को सफल बनाने की चेष्टा करेंगे ।

आत्मावलम्बन ही हमारी मनुजता का कर्म हो,
षट्रिपुसमर के हितसतत चारित्र्यरूपी वर्म्म हो ।
भीतर अलौकिक भाव हो बाहर जगत का कर्म हो,
प्रभु-भक्ति, पर-हित और निश्छल नीतिही ध्रुवधर्म हो ॥

भवदीय —

मुनि शान्ति स्वरूप "रत्न"
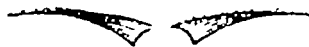
॥ ओ३म् ॥

—: प्राक्कथन :—

(१) इस अनादि संसार में सर्वज्ञ देव ने काल के दो विभाग किये हैं। एक का नाम अवसर्पिणि काल और दूसरे का नाम उत्सर्पिणि काल। अवसर्पिणि काल के छः विभाग किये हैं। जिनको छः आरे भी कहते हैं। प्रथम आरा चार क्रोडाक्रोड सागरोपम का होता है। उस में जो मनुष्य होते हैं वे अकर्म भूमिज युगलिये कहलाते हैं। इस प्रकार के कल्प वृक्षों से ही जिनकी इच्छायें पूर्ण होती हैं। धर्म नीति राजनीति व्यवहारिक कार्य कुछ नहीं होते। भद्र शान्त परम सुख भोगने वाले होते हैं, इस लिये इसका नाम सुखमा सुखमा है।

करते है। जब इस से भी आगे अधिक झगडा बढ गया तो १५ व श्री नामक अपर नाभि नामक कुलकर को विशेष अधिकार दिये गये। इस लिये इनका नाम कुलकर है और (मनु) भी इनको कहते है। इन में १५ वें हमे कुलकर को नाभिराजा भी कहते हैं। नाभिराजा की स्त्री मरुदेवीजी ने एक श्रेष्ट और अति उत्तम पुत्र को जन्म दिया। जिनका नाम श्री आदिनाथ रखा गया। जब ये बडे हुए तब इन के पिता ने इन की शादी दो सुन्दर कन्याओ से की। एक का नाम सुमगला और दूसरी का नाम सुनन्दा। श्री सुमंगला के बडे पुत्र का नाम भरत था और पुत्री का नाम ब्रह्मी, दूसरी सुनन्दाजी ने एक पुत्र को दिया उनका नाम बाहुबली था और कन्या का नाम सुन्दरी था। वैसे तो अकर्म भूमि से कर्म भूमि पन्द्रहवें कुलकर से ही प्रारम्भ हो गई थी, परन्तु श्री आदिनाथजी ने जनता को अनाजबोना बर्तन बनाना, खाना पकाना मकानादि बनाना, वस्त्रादि बनाना, आवश्यक शिल्प कला व्यवहार आदि की शिक्षा दी। इस तरह सर्व प्रकार के सुधारो का प्रादुर्भाव श्री ऋषभदेवजी ने किया। इसी कारण इस काल के आदिनाथ कहलाये। प्रजा ने आदिनाथ को अपना राजा बना लिया। आदिनाथ ने राजनीति चलाने के बाद धर्म नीति की स्थापना की, धर्म दान से होता है। इस कारण एक वर्ष तक ऋषभदेवजी ने निरंतर दान दिया, स्वय आदर्श दानी बनने के पश्चात अपने पुत्रो को राजपाट बाट कर ससार का त्याग कर मुनिपद को धारण किया। बहुत काल भ्रमण के बाद चार घातिक कर्मो का नाश कर केवल ज्ञान को प्राप्त किया। और चार तीर्थ की स्थापना करके मुनि और गृहस्थ दो प्रकार का धर्म संसार रूपी समुद्र से तरने को बतलाया। तीसरा आरा कुछ शेष रहने पर सर्व कर्मो को काट कर मोक्ष को प्राप्त हुए। सिद्ध बुद्ध सच्चिदानन्द हुए।

आदिनाथजी के पुत्र भरतजी इस काल के प्रथम चक्रवर्ती हुए। भरत जी ने छः खण्डों का राज किया। इन्होंने भी अपने पुत्र सूर्य कुमार को अपना उत्तराधिकारी बनाके राज का छोड़ कर केवलज्ञान को प्राप्त किया और मोक्ष में पहुंचे। सूर्य कुमार से सूर्य वंश की स्थापना हुई और इस प्रकार तीसरे आरे में एक तीर्थंकर धर्मावतार श्री आदि नाथजी और एक चक्रवर्ती प्रथम भोगावतार भरत हुए।

४ चौथा आरा दुखमा सुखमा कहलाता है। इस में सुख की अपेक्षा दुःख अधिक होता है। इसका समय प्रमाण ४२ हजार वर्ष कम एक क्रोडाक्रोड सागर का होता है। इस आरे में २३ तीर्थंकर धर्मावतार, ११ चक्रवर्ती भोगावतार, ९ बलदेव, ९ वासुदेव ९ प्रतिवासुदेव, यह २७ कर्मावतार हुए हैं और इनके समकालीन ९ नारद, २४ कामदेव अवतार ११ रुद्रावतार (महादेव) होते।

५ पांचवां आरा दुखमा कहलाता है इस में दुःख ही दुःख होता है समय प्रमाण २१ हजार वर्ष का होता है। इसको पंचम काल और कलियुग भी कहते हैं। चौथे आरे के अन्तिम तीर्थंकर धर्मावतार भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण मोक्ष जाने के तीन वर्ष साढ़े आठ मास बीते पश्चात् पंचम आरा कलियुग लगा है और यह वर्तमान चल रहा है।

के आसपास भी प्राणी मात्र को महा कष्ट होता है। सब मिलकर दश क्रोडा क्रोड सागर का अवसर्पणि काल है। इसी तरह दश क्रोडा क्रोड सागर का उत्सर्पणि काल है। वह इस तरह है–

पहिला दुषमा दुषमा अवसर्पणि के छठे आरे की मानिन्द यह भी २१ हजार वर्ष का होता है और प्रलय काल भी रहता है दूसरा आरा दुषमा २१ हजार वर्ष का अवसर्पणि काल के पांचवें आरे के समान विशेषताये होती है उन्नत्ति कर समय है। तीसरा आरा ४२ हजार वर्ष कम एक क्रोडा क्रोड सागर का होता है, अवसर्पिणि काल के चौथे आरे की तरह २३ धर्मावतार ११ चक्रवर्ती ९ बलदेव, ९ वासुदेव आदि होते हैं। चौथा आरा दो क्रोडा क्रोड सागर का होता है। दुखमा सुखमा अवसर्पणि काल के तीसरे आरे की तरह एक धर्मावतार एक चक्रवर्ती होता है। इसके पिछले भागमें अकर्म भूमि युगलिए मनुष्य हो जाते हैं।

पांचवा आरा सुखमा अवसर्पणि के दूसरे आरे की तरह तीन क्रोडा क्रोड सागर का।

छठा आरा—सुखमा सुखमा अवसर्पणि के प्रथम आरे की तरह चार क्रोडा क्रोड सागरोपम का होता है।

दश क्रोडा क्रोड सागर का अवसर्पिणि काल और दश क्रोडा क्रोड सागर का उत्सर्पणि काल २० क्रोडा क्रोड सागर का एक काल चक्र होता है। ऐसे अनन्त काल चक्र बीत गये और अनत बीतेंगे। अनादि अनन्त यही नियम है।

❀ चौबीस तीर्थकरों (धर्मावतार) का परिचय ❀

भगवान् ऋषभदेवजी तीसरे आरे के अंत मे हुए इन के सौ पुत्र थे, जिन मे बड़े भरत महाराज प्रथम चक्रवर्ती हुए। भरत

महाराज के बड़े पुत्र सूर्य कुमार राज्य के अधिकारी हुए, इन से सूर्य वंश चला है। रामचन्द्रजी भी इसी वंश के थे।

भगवान ऋषभदेवजी के निर्वाण पद को प्राप्त करने के पश्चात पचास लाख करोड़ सागरोपम के पश्चात दुषम सुषमा नामक चौथे आरे में स्वर्ग से चयकर दूसरे तीर्थंकर पद के भावी अधिकारी श्री अजितनाथ अयोध्या नगरी के राजा जितशत्रु की रानी विजया की कोख में पधारे। इन का जन्म माघ शुक्ला ८ को हुआ। यहां उन्होंने पचहत्तर लाख पूर्व तक गृहस्थी राज सुख का उपभोग किया। तदुपरान्त माघ शुक्ल ९ को अपनी राजधानी ही के उपवन में संसार के प्रति उदासीन हो जाने पर इन्होंने दीक्षा व्रत ग्रहण किया। दीक्षा व्रत के बारह वर्ष बाद पौष कृष्ण ११ को इन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। तदनन्तर एक लाख पूर्व तक चारित्र का पालन करते रहे और जब सम्पूर्ण कर्मों का नाश कर चुके तब चैत्र शुक्ल ५ को मोक्ष पधारे। गुण स्वरूप नाम इन का रखा गया कि जब यह गर्भ में थे तो इनकी माता उसका इनके पिता के साथ चौसर पासों का खेल खेला करती थीं उसमें वह कभी भी पराजित नहीं हुईं और यही कारण है कि इनका नाम अजितनाथ नाम रखा गया। इन्हीं के समय में इनके चचा सुमित्र का पुत्र सगर दूसरा चक्रवर्ती राजा हुआ।

अपनी जन्म भूमि ही के उपवन में जाकर दीक्षा ग्रहण की । यो जब दीक्षित होने को पुरे चौदह वर्ष हो गये । कार्तिक कृष्ण ५ को इन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ इस के पश्चात् एक लक्ष पूर्व तक आपने चारित्र का पालन किया और जब सारे कर्म क्षय हो गये तब वह चैत्र शुक्ल ५ को मुक्ति मे पधारे । जब आप गर्भ में आये थे, उस समय चारो ओर सुकाल सुख और शान्ति की संभावना होने लगी । बस इसी तत्कालीन परिस्थिति को देखकर इनका नाम संभवनाथजी दिया गया ।

इन तीसरे तीर्थंकर के निर्वाण पद को प्राप्त करने के बाद दश-लाख करोड सागरोपम का समय बीत जाने के बाद माघ शुक्ल १ एकम् को अयोध्या मे राजा संवर की सिद्धार्थ रानी की कोख से श्री अभिनंदनजी चौथे तीर्थंकर का जन्म हुआ । कहते है कि इनके गर्भ में पधारने और जन्म ग्रहण करने के बीच वाले अवसर में राजा संवर की शासन नीति से अति ही प्रसन्न होकर चारों ओर के आश्रित माण्डलिक राजाओं ने उन्हों को अभिनन्दन पत्र भेंटकर उनके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट की । इस के लिये उनकी प्रजाने उन दिनो बडा ही आनन्द मनाया और उसी उमडे हुए चहुं ओर के आनंद का अनुमानकर माता पिता ने नवजात राज कुमार का नाम अभिनंदन रख दिया । एक दिन माघ शुक्ला १२ को अपनी पैतृक सम्पत्ति का उनचास लाख पूर्वतक राजोचित सुख भोगने के पश्चात् इन्होने अयोध्या के निकटवर्ती उपवन मे दीक्षा ग्रहण की । इस के अठाईस वर्ष बाद पौष कृष्ण १४ को केवल ज्ञान की इन्हे प्राप्ति हुई । यो एक लाख पूर्व के अपने दीक्षा व्रत से सम्पूर्ण कर्मों का क्षयकर वैशाख शुक्ल ८ को मोक्ष पधारे ।

चौथे तीर्थंकर को मुक्तिमें पधार जाने के नौलाख कराड सागरोपम के पीछे एक दिन वैशाख शुक्ल ८ को अयोध्या के तत्कालीन राजा

पश्चात् जो भाग जिसको स्वीकार हो वह ले ले। यह वात सुनकर जो उपमाता होगी वह चुप रह जायगी। परन्तु जो बालक की माता होगी वह शीघ्र कह देगी कि मुझको तो सम्पति भी चाहे न दी जाय परन्तु मेरे बालक को किसी भी प्रकार सुरक्षित रखा जाय। उसके दो विभाग किसी हालत में न किये जांय। चाहे फिर उसे भी उसकी उपमाता को ही सौंप दिया जाय। उसके जीवित रहने से किसी समय देख तो लूंगी। इस प्रकार से माता एव उपमाता दोनो का पत्ता लग जायगा। रानी की यह सम्मति राजाने भी स्वीकार कर ली। उसने जाकर वेसा ही फैसला किया। रानी के कथनानुसार फैसला सुनाते ही बालक की माता और उपमाता का पता लग गया। तब तो राजा एव राजसभा ने एक स्वर से रानी की बुद्धि की प्रशंसा की। उसी दिन से राजा और उसके दरबारियों के द्वारा रानी के भावी पुत्र का नाम सुमति रखनेका निश्चय हुआ।

पांचवे तीर्थंकर सुमति नाथजी के निर्वाण के नव्वे हजार करोड सागरोपम के पश्चात् कार्तिक कृष्णा १२ को कौशम्बी नगरी के राजा, श्रीधर की रानी सुसीमा की कोख से भगवान् पद्म प्रभु छट्ठे तीर्थंकर का जन्म हुआ आप उन तीस लाख पूर्व तक गृहस्थाश्रम में रहे फिर आपने कौशम्बी के उपवन में जाकर कार्तिक कृष्णा १३ को दीक्षा ग्रहण की, चैत्र शुक्ल १५ को अनुमान छः मास बाद आपको केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई एक लाख पूर्व चरित्र पाला और अपने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर मार्गशीर्ष कृष्ण ११ के दिन मुक्ति को प्राप्त किया।

नो हजार करोड सागरोपम जब छट्ठे तीर्थंकर के निर्वाण का काल बीत चुका उस समय ज्येष्ट शुक्ला १२ को वाणारसी नगरी•

दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथजी थे इनका जन्म नौवें तीर्थंकर के परमपद प्राप्त करने के करोड सागरोपम के पीछेका है उस दिन माघ कृष्ण १२ का दिन था। इनके पिता दृढरथ और माता नन्दादेवी थी। गृहस्थाश्रम में रह कर इन्होने पचहत्तर हजार पूर्व विताये। तब संसार से चित्त की उपराम अवस्थामें अपनी राजधानी ही के उपवनमें माघ कृष्ण १२ को दीक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् दूसरे वर्ष के पौष कृष्ण १४ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई और पचीस हजार पूर्व चारित्र पाला फिर यह अपने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके वैशाख कृष्ण २ को मुक्तिमें पधारे।

ग्यारहवें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथजी थे, इनका जन्म फाल्गुन कृष्ण १२ को दशवें तीर्थंकर के निर्वाण कालके सौ सागर छियासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष न्यून एक करोड सागरोपम के पश्चात् सिंह- पुरी नगरीमे हुआ। इनके पिता विष्णुजी एव माता श्रीमती विष्णुदेवी थे। ६३ लाख पूर्व तक ससार मे रहे। फाल्गुन कृष्ण ३ को केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई और इक्कीस लाख पूर्व चारित्र पाला। फिर अपने संपूर्ण कर्मोंका नाश करके मोक्ष पद को प्राप्त किया। इनके समय में त्रिपृष्ठ नामके वासुदेव हुए। जिनके भाईका नाम अचल था। उसी कालमें रत्नपुरमें अश्वग्रीव नामक प्रतिवासुदेव राज्य करते थे। त्रिपृष्टने अश्वग्रीव को पराजित कर उसके सारे राज्यको अपने राज्यमे मिला लिया था। इस बात का विशेष उल्लेख श्री वीरचरित्र भगवान् महावीर के पूर्वभवो का परिचयमें पाठको को मिलेगा।

ग्यारहवें तीर्थंकर के निर्वाणपद प्राप्त कर लेने के चौपन सागरोपम के पश्चात् फाल्गुन कृष्ण १४ के दिन चम्पापुरी नाम की नगरीमे बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्यजी का जन्म हुआ। इनके वसुदेव पिता और जयदेवी माता थी और यह उसी के राजा रानी

भांति रूप बनाकर उस के पति के पास आकर बोली-चलो -यहां ठहरने की जगह नहीं है। इस ठौर व्यन्तरियो का भयंकर प्रचार है। तब तो वह पुरुष और व्यन्तरी शीघ्र ही वहां से चले। इतने में ही उस पुरुष की वह असली स्त्री जो दूर ही से इस सारी बात को देख रही थी, हांपते कांपते उनके पास आई और बोली, अजी मुझ अनाथिनी को इस निर्जन वन में आप कहां छोड रहे हो। आपके साथ जो स्त्री लग गई है वह आपकी स्त्री नहीं है। अब तो व्यंतरी ने अपने वचनों को सत्य सिद्ध करने के लिये समय विचारा और तत्काल ही उस पुरुष के प्रति बोली-मैंने जो कहा था वही हुआ ना अब भी यहां से जल्दी निकल भागो नहीं तो जीना भी कठिन हो जायगा। इस आश्चर्य वाली बात को देखकर बहु बडा भयभीत हो गया एवं असमंजस में भी पड गया। वह वहां से चलने की तयारी ही मे था कि इतने में उसकी असली स्त्री ने उस व्यंतरी का हाथ पकड लिया तब तो दोनो परस्पर वाद विवाद करने लग पडी कि मैं हूं मुख्य स्त्री और दूसरी कहती है कि मैं हूं मुख्य स्त्री। ऐसा कहकर हाथा पाई करने लगी, अंत में वह पुरुष न्याय की याचना करने के लिये उन दोनों को राजा के पास ले गया और सारा वृत्तान्त कह सुनाया, उन का रंग ढंग बोलचाल एक सा देखकर राजा भी आश्चर्य मे पड गया कि न्याय क्या किया जाय। अन्त में राजा ने रानी को यह बात कही दूसरे दिन रानी ने उसका ठीक न्याय कर दिया।

भद्र नाम का बलदेव इन्हीं का समकालीन था। द्वारावती के राजा रुद्र और उनकी रानी सुभद्रा उनके माता पिता थे। स्वयंभू नामक वासुदेव का जन्म इसी राजा की दूसरी रानी पृथ्वी के गर्भ से हुआ था। मेरक नामक प्रतिवासुदेव भी पूर्व ज्ञात उसी समय

भांति रूप बनाकर उस के पति के पास आकर बोली-चलो -यहां ठहरने की जगह नहीं है। इस ठौर व्यन्तरियों का भयंकर प्रचार है। तब तो वह पुरुष और व्यन्तरी शीघ ही वहां से चले। इतने में ही उस पुरुष की वह असली स्त्री जो दूर ही से इस सारी बात को देख रही थी, हांपते कांपते उनके पास आई और बोली, अजी मुझ अनाथिनी को इस निर्जन वन में आप कहां छोड रहे हो। आपके साथ जो स्त्री लग गई है वह आपकी स्त्री नहीं है। अब तो व्यंतरी ने अपने वचनों को सत्य सिद्ध करने के लिये समय विचारा और तत्काल ही उस पुरुष के प्रति बोली-मैंने जो कहा था वही हुआ ना अब भी यहां से जल्दी निकल भागो नहीं तो जीना भी कठिन हो जायगा। इस आश्चर्य वाली बात को देखकर वह बड़ा भयभीत हो गया एवं असमंजस में भी पड गया। वह वहां से चलने की तैयारी ही में था कि इतने में उसकी असली स्त्री ने उस व्यंतरी का हाथ पकड लिया तब तो दोनो परस्पर वाद विवाद करने लग पडी कि मैं हूं मुख्य स्त्री और दूसरी कहती है कि मैं हूं मुख्य स्त्री। ऐसा कहकर हाथा पाई करने लगी, अंत में वह पुरुष न्याय की याचना करने के लिये उन दोनों को राजा के पास ले गया और सारा वृत्तान्त कह सुनाया, उन का रंग ढंग बोलचाल एक सा देखकर राजा भी आश्चर्य में पड गया कि न्याय क्या किया जाय। अंत में राजा ने रानी को यह बात कही दूसरे दिन रानी ने उसका ठीक न्याय कर दिया।

भद्र नाम का बलदेव इन्हीं का समकालीन था। द्वारावती के राजा रुद्र और उनकी रानी सुभद्रा उनके माता पिता थे। स्वयंभू नामक वासुदेव का जन्म इसी राजा की दूसरी रानी पृथ्वी के गर्भ से हुआ था। मेरक नामक प्रतिवासुदेव भी पूर्व ज्ञात उसी समय

चारित्र का पालन किया अंत में कर्म क्षय करके ज्येष्ट शुक्ल ५ को मोक्ष पधारे। इन्हीं के समय अम्बपुर के राजा शिव के दो रानियों से दो पुत्र पैदा हुए। विजिया के गर्भ से सुदर्शन बलदेव और अम्बिका के गर्भ से पुरुषसिंह नामक पांचवे वासुदेव हुए। और हरिपुर में निशुम्म प्रति वासुदेव हुआ। पुरुष सिंहने निशुम्भ को मार के तीन खंड का राज किया।

पंदरहवें तीर्थंकर के पश्चात् और सोलहवें तीर्थंकर के पहले श्रावस्ती नगरीमें राजा समुद्र विजय की भद्रा रानीके गर्भसे माधवा नामक तीसरे चक्रवर्ती का जन्म हुवा। इनके मोक्षमें जाने के कुछ समय वाद हस्तिनापुर में अश्वसेन राजा सहदेवी रानीके संतकुमार सम्राट ४ चौथे चक्रवर्ती हुऐ।

पंदरहवें तीर्थंकर के मोक्षमें जाने के पौन पल्योपम न्यून तीन सागरोपम के पश्चात् ज्येष्ठ कृष्ण १३ को शांतिनाथजीने गजपुर में विश्वसेन राजा पिता और अचिरादेवी रानी माता के यहा जन्म लिया। आप पांचवें चक्रवर्ती हुए। ७५ हजार वर्ष गृहस्थमें रहे फिर एक वर्ष दान देकर नगरी के उपवन में ज्येष्ठ कृष्ण ४ को दीक्षा ली। अनुमान १ वर्ष के वाद पौप शुक्ल ९ को केवल ज्ञान हुआ। आप १६ वें तीर्थंकर हुए। २५ हजार वर्ष तक दीक्षा पाली। अन्तमें सर्व कर्म क्षय करके ज्येष्ठ कृष्ण १२ को मोक्षमें गये।

श्री शान्तिनाथजी सोलहवें तीर्थंकर के निर्वाणकाल के आधा पल्योपम का समय बीत जाने के पश्चात् गजपुर में सूर राजा और श्री नामकी रानी से वैशाख कृष्ण १४ को सतरहवें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथजी का जन्म हुआ। आप इकहतर हजार डोसो पचास वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे। पश्चात् गजपुर के उपवन में चैत्र कृष्ण ५ को दीक्षा गृहण की।

दीक्षा से १६ वर्ष बाद चैत्र शुक्ल ३ को केवल ज्ञान हुआ । २३ हजार सात सौ पचास वर्ष तक दीक्षा पाली फिर वैशाख वदी १ को मोक्ष प्राप्त किया । आप तीर्थंकर पद से पहिले ६ छठे चक्रवर्ती थे भारत वर्ष के सम्पूर्ण छः खंडों का राज किया ।

१७ वें तीर्थंकर को निर्वाण पद प्राप्त किये जब एक करोड़ एक हजार वर्ष न्यून पाव पल्योपम का समय बीत गया तब मगसर शुक्ल १० को गजपुरी में राजा सुदर्शन की रानी देवी देवकी से १८ वें तीर्थंकर श्री अरहनाथजी का जन्म हुआ । आप ६३ हजार वर्ष गृहस्थ में रह सातवें चक्रवर्ती बनकर छः खंडों का राज किया । पश्चात् मगसर शुक्ल ११ को गजपुर के उपवन में दीक्षा ली । दीक्षा से ३०० वर्ष पीछे कार्तिक शुक्ला १२ को केवल ज्ञान हुआ । इक्कीस हजार वर्ष तक चारित्र का पालन किया । मगसर शुक्ला १० को मोक्ष पधारे इनके निर्वाण होने के पश्चात् और उन्नीसवें तीर्थंकर के जन्म से पहिले कीर्तिवीर्य राजा तारा रानी माता के सुभौम नामा चक्रवर्ती हुआ ।

हुआ । सौ बर्ष तक गृहस्थ में रहे । मिथिला के उपवनमे अगहन शुक्ला ११ को दीक्षा ली । उसी दिन केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई तबसे पूरे ५३ हजार ९ सौ बर्ष तक दीक्षा पाली । फाल्गुन शुक्ल १२ को मोक्ष प्राप्त किया ।

चौपन लाख बर्ष समय जब उन्नीसवें तीर्थंकर को मोक्ष पधारे बीत गया तब राजग्रही नगरी में सुमित्र राजा के पद्मावती रानी से वीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी ज्येष्ठ कृष्णा ८ को जन्में । यह साडे बाईस हजार वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे पश्चात् फाल्गुण शुक्ला १२ को अपनी राजधानी के उपवन में दीक्षा ली । अनुमान ११ महिनो के पश्चात् केवल ज्ञान प्राप्त किया । साडे सातसो वर्ष तक दीक्षा पाली । सर्वकर्म क्षय कर के ज्येष्ठ कृष्ण ९ को मोक्ष में पधारे ।

इन्हीं के समकालीन ९ नौवे चक्रवर्ती महापद्म हुवे । हस्तिनापुर नगर पद्मोत्तर राजा ज्वाला रानी माता थी । अन्त मे दीक्षा धारन कर के मोक्ष में गये । महापद्म चक्रवर्ती के कुछ ही काल के पश्चात् अयुध्या के राजा दशरथ पिता अपराजिता रानी की कुख से आठवे बलदेव श्री रामचन्द्रजी पैदा हुए । दूसरी रानी सुमित्रा इस का वास्तव में कैकेयी नाम था । परन्तु जब कैकेयी रानी भरत की माता का विवाह राजा दशरथ से स्वयंवर मंडप करके हुआ उस समय दो कैकेयी होने के कारण प्रथम का सुमित्रा रख दिया । इस लिये यह सुमित्रा के नाम से प्रसिद्ध हुई । सुमित्रा के अष्टम वासुदेव श्री लक्ष्मनजी हुवे । (इन को नारायण भी कहते हैं) तीसरी रानी केकैयी के भरत राजकुमार हुआ । चौथी सुप्रभा रानी से शत्रुघ्नजी हुवे उस समय इन से पूर्व-जात लंका पुरीमें राजा रत्नश्रवा पिता और केकसी माता से पैदा हुवा दशकन्धर राजा प्रतिवासुदेव लंका का क्या तीन खंड का अधिपति था । लक्ष्मणजी रावण को मार और तीन खंड के अधिपति बनें ।

बीसवें तीर्थंकर को मोक्ष में गये छ लाख वर्ष हुवे थे कि श्रावण कृष्ण अष्टमी को मथुरापुरी में विजय राजा और विप्रा देवी माता के इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी का जन्म हुआ। ९ हजार वर्ष तक गृहस्थ में रहे। फिर आषाढ कृष्ण ६ को मथुरा नगरी के उपवन में दीक्षा ग्रहण की। नौ महिने बाद अगहन शुक्ला ११ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। एक हजार वर्ष तक चारित्र पाला। पश्चात् वैशाख कृष्ण १० को मोक्ष में पधारे।

इक्कीसवें श्री नमिनाथ तीर्थंकर के ही समय कम्पिला नगर में महा हरी राजा मेरा देवी माता के हरिषेण नामक १० वें चक्रवर्ती हुवे। दीक्षा ले कर भी मोक्ष में गये।

इनके कुछ समय बाद राजग्रही नगरी में विजय राजा वप्रारानी रानी के जय सेन नामक राज कुमार हुआ और यही चल कर ग्यारवें चक्रवर्ती जय सेन हुआ। यह भी राज छोड दीक्षा लेकर मोक्ष पहुंचे।

हुआ । सौ बर्ष तक गृहस्थ में रहे । मिथिला के उपवनमें अगहन शुक्ला ११ को दीक्षा ली । उसी दिन केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई तबसे पूरे ५३ हजार ९ सौ बर्ष तक दीक्षा पाली । फाल्गुन शुक्ल १२ को मोक्ष प्राप्त किया ।

चौपन लाख बर्ष समय जब उन्नीसवें तीर्थंकर को मोक्ष पधारे वीत गया तब राजग्रही नगरी में सुमित्र राजा के पद्मावती रानी से वीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी ज्येष्ठ कृष्णा ८ को जन्में । यह साडे बाईस हजार वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे पश्चात् फाल्गुण शुक्ला १२ को अपनी राजधानी के उपवन मे दीक्षा ली । अनुमान ११ महिनों के पश्चात् केवल ज्ञान प्राप्त किया । साडे सातसो वर्ष तक दीक्षा पाली । सर्वकर्म क्षय कर के ज्येष्ठ कृष्ण ९ को मोक्ष में पधारे ।

इन्हीं के समकालीन ९ नौवे चक्रवर्ती महापद्म हुवे । हस्तिनापुर नगर पद्मोत्तर राजा ज्वाला रानी माता थी । अन्त में दीक्षा धारन कर के मोक्ष मे गये । महापद्म चक्रवर्ती के कुछ ही काल के पश्चात् अयुध्या के राजा दशरथ पिता अपराजिता रानी की कुख से आठवे बलदेव श्री रामचन्द्रजी पैदा हुए । दूसरी रानी सुमित्रा इस का वास्तव में कैकेयी नाम था । परन्तु जब कैकेयी रानी भरत की माता का विवाह राजा दशरथ से स्वयंवर मंडप करके हुआ उस समय दो कैकेयी होने के कारण प्रथम का सुमित्रा रख दिया । इस लिये यह सुमित्रा के नाम से प्रसिद्ध हुई । सुमित्रा के अष्टम वासुदेव श्री लक्ष्मनजी हुवे । (इन को नारायण भी कहते हैं) तीसरी रानी कैकेयी के भरत राजकुमार हुआ । चौथी सुप्रभा रानी से शत्रुघ्नजी हुवे उस समय इन से पूर्व-जात लंका पुरीमें राजा रत्नश्रवा पिता और केकसी माता से पैदा हुआ दशकन्धर राजा प्रतिवासुदेव लंका का क्या तीन खंड का अधिपति था । लक्ष्मणजी रावण को मार और तीन खंड के अधिपति बनें ।

बीसवें तीर्थंकर को मोक्ष में गये छ लाख वर्ष हुवे ही थे कि श्रावण कृष्ण अष्टमी को मथुरापुरी में विजय राजा और विप्रा देवी माता के इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी का जन्म हुवा। ६ हजार वर्ष तक गृहस्थ में रहे। फिर आषाढ कृष्ण ६ को मथुरा नगरी के उपवन में दीक्षा ग्रहण की। नौ महिने बाद अगहन शुक्ला ११ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। एक हजार वर्ष तक चारित्र पाला। पश्चात वैशाख कृष्ण १० को मोक्ष में पधारे।

इक्कीसवें श्री नमिनाथ तीर्थंकर के ही समय कपिल नगर में महा हरी राजा मेरा देवी माता के हरीषेण नामक १० वें चक्रवर्ती हुवे। दीक्षा ले यह भी मोक्ष में गये।

इनके कुछ समय बाद राजग्रही नगरी में विजय राजा वप्रावती रानी के जय सेन नामक राज कुमार हुआ और आगे चल कर ग्यारवें चक्रवर्ती जय सेन हुआ। यह भी राज छोड दीक्षा लेकर मोक्ष पहुंचे।

पुत्र हुए। जो शास्त्र में दशोदशार के नाम से प्रसिद्ध है। इन दशो मे से छोटे एक भाई का नाम वसुदेव था। वसुदेव की रोहिणी नाम की रानी से नौंवे बलदेव बलभद्रजी हुआ। और दूसरी देवकी राणी से नवमें वासुदेव श्री कृष्ण महाराज हुए। दूसरे सुवीर के पुत्रका नाम भोज विष्णु था। उसके उग्र सेन और देवक दो पुत्र थें। उग्र सेन के एक पुत्र कस, और दूसरी पुत्री राजुलमति नाम की हुई। उधर देवक के देवकी नाम की पुत्री हुई। इसी देवकी का विवाह वसुदेव जी से हुवा था। कृष्ण ने कंस को मारा मथुरा पर अधिकार जमाया ही था कि जरासिंघ के भय से, समुद्र विजय आदि सब दौड भागकर समुद्र के किनारे आये। वहां द्वारिका नगरी बसाई। दशो दशोरा में बडे भाई समुद्र विजय थे। कृष्ण महाराज के चाचा और यही राजा थे। समुद्र विजय की शिवादेवी रानी से बाइसवें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमिजी जन्में। अरिष्टनेमि भगवान् के पास कृष्ण महाराज के छोटे भाई गजसुकुमाल ने दीक्षा ली और जल्दीही कर्म काट के मोक्ष में पधार गये।

जरासिंघ प्रतिवासुदेव से कृष्ण महाराज का युद्ध हुवा। जरासिंघ को मारकर कृष्ण वासुदेव तीन खड के राजा बने।

अरिष्ट नेमिके मोक्ष में पधारने के कुछ समय ही पीछे ब्रह्म नामक राजा चुलनी रानी माता के ब्रह्मदत्त का जन्म हुवा। समय पाकर ब्रह्मदत्त बारहवें चक्रवर्ती हुवे। और भोगो से आसक्त बनकर अन्त मृत्यु पाकर सातमी नर्क में गये। जहा उत्कृष्टी तेतीस सागर की उमर है।

बाइसवें तीर्थंकर के मोक्ष में पधार जाने के पौने चौरासी हजार वर्ष के पश्चात् बनारसी नगरी मे अश्वसेन राजा रानी वामा

देवी के तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजी पौष कृष्ण १० को हुए। ३० वर्ष पर्यन्त गृहस्थाश्रम मे रहे। बाद मे पौष कृष्ण एकादशी को बनारसी के पास उपवन मे दीक्षा ली। दीक्षा के चौरासी दिन बाद केवल ज्ञान हुआ। चैत्र कृष्ण ४ को। और सत्तर वर्ष तक संयम पाला। सब कर्म क्षय करके श्रावण शुक्ला अष्टमी को मोक्ष पधारे दीक्षा धारण के बाद देवता द्वारा पार्श्वनाथ भगवान को उपसर्ग हुवा था।

ईसा से ८०० वर्ष पूर्व का अनुमान लगाया जाता है कि ऐतिहासिक लोग गहरी छान बीन के बाद पार्श्व संवत तक पहुचते है।

तेइस २३ वें श्री पार्श्वनाथ भगवान के मोक्ष प्राप्त करने के अनुमान २५० वर्ष के बाद श्री महावीर स्वामी मोक्ष में पधारे। क्षत्री कुंड नगर में सिद्धार्थ भूप एवं त्रिशला देवीजी के कुक्ष से महावीर का जन्म हुवा। तीस वर्ष पर्यंत गृहस्थाश्रम मे रहे। बाद मे संयम लेकर साढे बारह वर्ष तक घोर तपस्या करके कर्म नाश किये। केवल ज्ञान को प्राप्त किया। बहत्तर वर्ष की आयु भोगकर मोक्षपद को प्राप्त किया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के रोज आपका जन्म एवं कार्तिक अमावस्या को मोक्षपद प्राप्त हुवा।

भरत क्षेत्र के वर्तमान प्रसिद्ध......१२ चक्रवर्ती।

इस भरत क्षेत्र के छः विभाग है, दक्षिण मध्य भागको आर्य खण्ड व शेष ५ को म्लेच्छ खण्ड कहते हैं। कालका परिवर्तन आर्य खण्ड में ही होता है। म्लेच्छ खण्डो में दुखमा सुखमा कालकी कभी उत्कृष्ट और कभी जघन्य रीति रहती है। जो इन छः खण्डो के स्वामी होते है उनको चक्रवर्ती राजा कहते हैं। चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते हैं। जिस में सात एकेन्द्रिय रत्न अचेतन होते है। १ सुदर्शन चक्र, २ छत्र, ३ दण्ड, ४ खंग, ५ मणि, ६ चर्म, ७ काकिनी, सात पचेन्द्रिय चेतन रत्न होते हैं १ सेनापति, २ गृहपति, ३ शिल्पी, ४ पुरोहित, ५ पटरानी, ६ हाथी, ७ अश्व नौ निधान होते हैं १ काल, २ महाकाल, ३ नैसर्व, ४ पाण्डुक, ५ पद्म, ६ माणव, ७ पिंगल, ८ शख, ९ सर्वरत्न। जो क्रम से पुस्तक असिमसी साधन, भाज्जन, धान्य, वस्त्र, आयुध, आभूषण वादित्र वस्तो के भण्डार होते हैं। इन सब के रक्षक देवता है। बतीस हजार देश और बतीस हजार मुकुटवध राजा इन्हो के आधीन होते है। बतीस हजार देवता आधीन होते है, बतीस हजार रानियां, बतीस हजार दासियां यह वास्तव में रानियां ही होती है प्रथम बतीस हजार रानियो से इन का दर्जा कुछ मध्यम होता है। इस लिये ६४००० रानियां होती है। बतीस प्रकार के नाटक तान सौ साठ रस हुए। अठारह श्रेणि प्रश्रेणि आदि राजे, चौरासी लाख अश्व, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख सग्रामी रथ, चौरासी लाख विकट गाडिया, विमानादि का समावेश है। छियानवे करोड पदाति सेना, बहत्तर हजार राजधानी, छियानवे करोड ग्राम, निन्यानवे हजार द्रोणमुख जैसे, बम्बई, कराची आदि आजकल हैं ऐसे नगर, अडतालीस हजार पट्टन तिजारती नगर जैसे देहली, अमृतसर की तरह, चौबीस हजार

कर्वट सेना स्थान (छावनी), चौवीस हजार मडल, बीस हजार सोना चान्दी रत्न लोहादि की खानें, सोलह हजार खेडे, चौदह हजार सवाट, छप्पन हजार अन्तरोदक अखण्ड भरतक्षेत्र का ऐश्वर्य भोगनेवाले को चक्रवर्ती कहते है। छ खण्डों के राजाओ को दिग्विजय के द्वारा अपने आधीन करते हैं और न्याय से प्रजा को सुखी करते हुए राज्य करते है. ऐसे १२ चक्रवर्ती २४ तीर्थंकरो के समय में निचे लिखी रीति से हुए हैं।

(१) भरत–ऋषभदेवजी के पुत्र थे बडे धर्मात्मा थे। एक समय इन को तीन समाचार एक साथ मिले। ऋषभदेव का केवल ज्ञानी होना आयुधशाला में सुदर्शन चक्र का प्रकट होना, अपने पुत्र का जन्म होना। अपने धर्म को श्रेष्ट समझकर पहिले ऋषभदेव के दर्शन किये फिर लौटकर दोनों लौकिक काम किये भरत ने दिग्विजय कर के भरत खण्ड को वश किया, मुख्य सेनापति हस्तिनापुर का राजा जयकुमार था, छोटे भाई बाहुबली ने इन को सम्राट नहीं माना, तब इन से युद्ध ठहरा। मंत्रियों की सम्मति से सेना की व्यर्थ में जिससे किसी भी प्रकार की क्षति न हो, इस कारण परस्पर तीन प्रकार के युद्ध ठहरे। दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध एव मल्लयुद्ध तीनो युद्धो में भरत ने बाहुबली से हारकर क्रोधित हो बाहुबली का कुछ बिगाड न सका तो भरत बहुत लज्जित हुए। उधर बाहुबली अपने बडे भाई भरत का राज्य लक्ष्मी की निन्दा कर तुरन्त वैरागी साधु हो गया और बहुत कठिन तपश्चरण करने लगे। एक वर्ष तक लगातार ध्यान में खडे रहने से इनके शरीर पर बेलें चढ गई। अन्त में केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पधार गये।

भरत बडे न्यायी थे, इनका बडा पुत्र अर्ककीर्ति (सूर्यकुमार) जिससे सूर्य वंश चला है। काशी के राजा अकम्पन ने अपनी पुत्री सुलोचना के सम्बन्ध के लिये स्वयंवर मण्डप रचा। जब सुलोचना ने

भरत के सेनापति जय कुमार के गले मे वरमाला डाली। इसपर अर्ककीर्ति ने रुष्ट होकर युद्ध किया और युद्ध में हार गया। चक्रवर्ती भरतने अपने पुत्रकी अन्याय प्रवृत्ति पर बहुत खेद किया और उसको किसी प्रकार की सहायता नहीं दी। भरत बडे आत्मज्ञानी व राज्य करते हुए भी वैरागी थे।

एकबार एक धार्मिक वक्ताने कहा कि भरत महाराज छ खण्ड जैसे राज्य में महान् आरम्भ करता है और महा आरम्भ करनेवाले की गति नरक होती है। इस बात को भरतजीने भी सुना और उसको समझाने के लिये आपने उसे एक तेल का कटोरा दिया और कहा तू मेरे कटक मे घूम आओ किन्तु इस कटोरे में से यदि एक बूंद भी गिरी तो तुझे दण्ड मिलेगा। वह कटोरे को ही देखता हुआ लौट आया महाराजने पूछा कि क्या देखा? उसने कहा कि कुछ नहीं कह सकता क्यो कि मेरा ध्यान कटोरे मे था। यह सुनकर भरतने कहा कि इसी तरह मेरा चित्त आत्मापर रहता है। मैं सब कुछ करते हुए भी अलिप्त रहता हूँ। एक दिन प्रात काल स्नान करके एवं वस्त्राभूपण धारण करके महाराजा भरत अरिसा भवनमे गये वहा एक उगली में से अंगूठी गिर गई। विना अंगूठी के उंगली भद्दी लगने लगी तब आपने विचार किया कि यह सब शोभा शरीर की नहीं किन्तु आभूपणो की है। मिथ्या मोह में मुझे क्यों मुग्ध होना चाहिये, ऐसा सोचकर आपने अन्य उंगलियो से अगूठियां निकालना प्रारम्भ किया। इस से हाथ विशेप भद्दा हो गया। फिर आपने सब वस्त्र और आभूपण उतार दिये। इस से आपको ज्ञान हुआ कि सब शोभा वस्त्रों और अभूपणो की है। शरीर तो असार है ऐसा विचार करते २ आप शरीर की अनित्यता का चिन्तवन करने लगे और शुक्ल ध्यान की श्रेणी तक चढ गये, उसी समय आप के घनघाती

कर्मो का क्षय हो गया । तथा आप केवल ज्ञानी मुनि बन गये । आप के साथ और बहुत भव्य प्राणियों ने दीक्षा ली और सब ने आत्म कल्याण किया ।

(२) सगर—यह अजितनाथजी के समय मे हुए । इच्वाकु वंशी पिता समुद्र विजय माता सुबाला थी, सगर के ६०००० पुत्र थे । एक बार इन पुत्रोंने सगर से कहा कि हमें कोई कठिन काम बताइये, तब सगर ने कैलाश के चारों ओर खाई खोदकर गगा नदी बहाने की आज्ञा दी । वे गये । खाई खोदी तब सगर के पूर्व जन्म के मत्री मुनि केतु देव ने अपने वचन के अनुसार सगर को वैराग उत्पन्न कराने के लिये उन सर्व कुमारो को अचेत करके सगर के पास आकर यह समाचार कहे कि आपके सब पुत्र मर गये । यह सुन कर सगर को वैराग्य हो गया और भगीरथ को राज्य दे आप साधु हो गये । पुत्र जब सचेत हुए और पिता का साधु होना सुना तो यह भी सर्व त्यागी बन गये ।

(३) –मघवा यह चक्रवर्ती सगर से बहुत काल पीछे श्री धर्मनाथ जी को मोक्ष हो जाने के बाद हुए । इच्वाकुवंशीय राजा सुमित्र और सुभद्रा के पुत्र थे अयोध्या राजधानी थी, बहुत काल राज्य कर प्रिय-मित्र पुत्रको राज देकर साधु हो तप कर मोक्ष पधारे ।

(४) सनत्कुमार–कुछ काल बीतने के बाद चौथे चक्रवर्ती अयोध्या मे इच्वाकु वंशीय राजा अनन्त वीर्य और रानी सहदेवी के पुत्र आप बड़े न्यायी सम्राट् थे, तथा बड़े रूपवान थे । एक दिन आपके रूप की प्रशंसा इन्द्र के मुख से सुनकर एक देव देखने को आया, और देखकर बहुत प्रसन्न हुआ । फिर राजसभा में प्रगट होकर मिलने को गया । उस समय चक्रवर्ती सुन्दरता मे [illegible] देखकर [illegible] [illegible]-द ललाट् मे [illegible] [illegible] का कारण पूछा [illegible] मे [illegible] [illegible]

अपने रूप की क्षण मात्र में ही कम हो जाने की बात सुनकर चक्री को संसार की अनित्यता देख कर वैराग्य हो गया, उसी समय पुत्र देवकुमार को राज्य दे के शिव गुप्त मुनिसे दीक्षा ले तप करके मोक्ष पधारे। तपके समय एक बार कर्म के उदय से कुष्टादि भयंकर रोग हो गये एक देव परीक्षार्थ वैद्य के रूपमें आया और कहा कि औषधि लें। मुनिने उत्तर दिया कि आत्मा के जो जन्म मरणादि रोग हैं यदि उन्हें आप दूर कर सकते हैं तो दूर करें। मैं आपकी दी हुई अन्य वस्तुएँ लेकर क्या करूंगा? देवने मुनिको चारित्र में दृढ़ देखकर उनको स्तुति की और अपने स्थान को वापिस चला गया।

(५) १६ वें तीर्थंकर श्री शान्ति नाथजी यह एक दिन दर्पण में अपने दो मुह देख ससार को अनित्य विचार अपने नारायण पुत्र को राज्य दे साधु हो गये। आठ वर्ष पीछे ही केवली हो अन्त में मोक्ष पधारे।

(६) १७ वें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथजी एक दिन वनमें क्रीडा गये थे। लौटते समय एक साधु को देखकर वैरागी हो गये। १६ वर्ष तक तप करके केवल ज्ञानी होकर मोक्ष पधारे।

(७) १८ वें तीर्थंकर श्री अरहनाथजी राज्यावस्था में एक दिन शरदृऋतु में मेघो का आकाश में नष्ट होना देख आप वैरागी हो गये। १६ वर्ष तप कर आरिहन्त होकर उपदेश दे अन्त में मोक्ष पधारे।

(८) संभौम-श्री अरहनाथजी तीर्थंकर के मोक्ष के बाद में हुए। अयोध्या के इक्ष्वाकु वंशीय राजा सहस्त्रबाहु और रानी चित्रमती के पुत्र थे। आप का जन्म एक वन में हुआ था। इन के पिता सहस्त्र-बाहु के समय में इन के बडे भाई कृतवीर्य ने एक बार किसी कारण

ने राजा जमदग्नि को मार डाला। तब जमदग्नि के पुत्र परशुराम और श्वेतराम ने यह बात जान बहुत क्रोध किया। और सहस्रबाहु तथा कृतवीर्य को मार डाला, तब सहस्रबाहु के बड़े भाई शाण्डिल्य ने गर्भवती रानी चित्रमती को वन में रखा वहां सभौम उत्पन्न हुए। वह १६ वें वर्ष में चक्रवर्ती हुए। एक दिन परशुराम को निमित्त ज्ञानी से मालूम हुआ कि मेरा मरण जिस से होगा वह पैदा हो गया है। निमित्त ज्ञानी ने उसकी परीक्षा भी बताई कि जिस के आगे मरे हुए राजाओं के दान्त भोजन के लिये रखे जावें और वह सुगन्धित चावल हो जावें वही शत्रु है। इस लिये परशुराम ने अनेक राजाओं को सभौम के साथ बुलाया। सभौम के सामने दांत चावल हो गये सभौम को ही शत्रु समझ परशुराम ने सभौम को पकड़ा। परन्तु उसी समय सभौम को चक्र रत्न की प्राप्ति हुई। इस चक्र से ही युद्ध कर सभौम ने परशुराम को मार डाला। परशुराम सातवीं पृथ्वी के पाथड़े में जाकर पैदा हुआ। दिग्विजय कर सभौम ने बहुत काल राज्य किया यह बहुत ही विषय लंपटी था। एक बार इस को एक शत्रु देव ने व्यापारी के रूप में बड़े स्वादिष्ट आम्र फल खाने को दिये। जब वह फल न रहे तब चक्री ने और मांगे। व्यापारी ने कहा कि यह फल एक द्वीप में मिल सकेंगे। आप जहाज पर मेरे साथ चलिये वह लोलुपी चल दिया। रास्ते में उस देव ने जहाज को डुबो दिया और चक्रवर्ती मोह भाव से मर कर सातवें नरक में गया।

(१०) दशवें चक्री श्री हरिसेण भगवान् नमिनाथ के काल मे भोग पुर के राजा इक्ष्वाकु वंशी पद्म और मेरा देवी के सुपुत्र थे। एक दिन आकाश में चंद्र ग्रहण देख आप साधु हो गये तथा अंत में मोक्ष पधारे।

(११) ग्यारहवें चक्रवर्ती जय सेन श्री नमिनाथ भगवान के पीछे और अरिष्ट नेमि के पहिले में कौशाम्बी नगर के इक्ष्वाकु वंशी राजा विजय और रानी वप्रावती के पुत्र थे। एक दिन आकाश में उल्कापात देखकर वैराग्य हो साधु हो गये। तप करते हुए अंत में श्रीसम्मेदशिखर पर पहुंचे। वहा चारण नाम की चोटी पर समाधि मरण कर सिद्धि को प्राप्त हुए।

(१२) श्री अरिष्ट नेमिजी के पीछे और श्री पार्श्वनाथजी के पहले अंतर में चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त हुआ। यह ब्रह्म राजा व रानी चूल देवी का पुत्र था। यह विषय भोगो में फंसा रहा। अंत मे मर कर सातवें नरक में गया।

कर्मावतार अर्धचक्री नारायण वासुदेव पद की प्राप्ति होने पर इन्हें सात रत्न प्राप्त होते हैं। वे निम्न हैं।

१ सुदर्शन चक्र
२ अमोघ शंख
३ कौमुदी गदा
४ पुष्प माला
५ धनुष्य अमोघ बाण
६ कौस्तुभमणि
७ महारथ

ये फलवान और महा सुन्दर होते हैं। इनकी ऋद्धि व सिद्धि चक्रवर्ती से आधी होती है। इतिशम्

मंगल-प्रार्थना

—×(०)×—

(तर्ज-बालम आय बसो मोरे मन में—
प्रथम नमो देव अरिहन्ता ।— स्थायी

सुरनरमुनि जन ध्यान धरत है ।
प्रेमीजन नित नाम रटत है ॥
कलकलेश छिन माहि कटत है ।
ऐसो नाम भगवता ॥ १ ॥

संकट हारी मंगल कारी ।
सर्वाधार सर्व हितकारी ॥
किम वरणूं मैं महिमा तिहारी ।
गाय थके श्रुति सन्ता ॥ २ ॥

दीन दयाल दया के सागर ।
त्रयी गुणधारी जगत उजागर ॥
करहो कृपा प्रभु निज भगतन पर ।
सिद्धरूप गुणवन्ता ॥ ३ ॥

'शुक्ल' प्रभु हम शरणागत हैं ।
विद्या बुद्धिवर मागत हैं ॥

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

॥ ॐ असिआउसाय नमः ॥ ॥ परमेष्ठिभ्योनमः ॥

॥ श्री गुरवे नमः ॥

॥ अथरामायणम् ॥

दोनौ - जिनवाणी नितदाहिने, अरिहन्तसिद्ध जगदीश

परमेष्टी रक्षा करें, त्रिपद धार मुनीश ॥ १ ॥

श्री जिनवाणी शारदा, नमू प्रथमहिय ध्याय ।

मनो कामना सिद्ध हो, विघ्नसमूह नस जाय ॥ २ ॥

चौनौ - विघ्नसमूह नस जाय ध्यान, धरते ही जगदम्बाका ।

केवल है आधार श्री, त्रिशला दे सुतनन्दाका ॥

स्वपुरुषार्थ कहां शस्त्र, छेदना कर्म फन्दा का ।

सम्यक् ज्ञान निमित्त, राह दर्शक होता अन्धाका ॥

दौड— गुरुचरण सिरनाके, सिद्ध ईश्वर को ध्याके ।

बात कुछकहू पुरानी, क्या गौरव था भारत का

अब कथा सुनो सुखदानी ॥

दोहा— प्रथम शिष्य प्रभुवीरके, इन्द्र भूति शुभ नाम ।

पाठी चौदह पूर्व के, आत्म गुण के धाम ॥

प्रसिद्ध थे गोतम गौत्रसे, श्रुतज्ञानमें ऊचा आसन था ।

हितकारी प्राणीमात्रको, श्री महावीर का शासन था ॥

थे सर्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी, और तीन कालके ज्ञाता थे ।

सिद्धार्थ भूपके राजकुमर, नन्दी वर्धन के भ्राता थे ॥

विशेष ज्ञान के लिये पढो, तुम इनके जीवन चरित्र को।
शान्तवीर रस धरताके, देखो ज्ञान पवित्र को ॥
कुछ प्रश्न पूछने के हेतु, एक रोज श्री गोतम स्वामी।
नमस्कार कर यों बोले, जहां बैठे थे अन्तर्यामी ॥

दोहा— भगवन्! इस संसार में, कौन है पद प्रधान।
किस पद से निश्चय मिटे, आवागमन तमाम ॥
अवतार कौन कहलाते है और क्या क्रम इनके होने का।
क्या सभी परस्पर एकरग, या फरक है सोने सोने का ॥
वर्तमान में कौन कौन है, कर्ममेल धोने वाले।
औरभूतकाल में कौन भविष्य में, कौन कौन होने वाले ॥
कितने कितने अन्तर से, इस काल के सब अवतार हुए।
कितने है भवधारी इसमें, कितने भव निधि पार हुए ॥
और काल का भी कुछ भाग पृथक् करके स्वामी दर्शावेगें।
मम इच्छा पूरण करने को, कृपया अमृत वर्षावेगें ॥

दोहा— नम्र निवेदन शिष्य का, सुन करके भगवान्।
कृपा सिन्धु फिर इस तरह, वोले मधुर जवान ॥
तीर्थंकर पदको कहा, सबहीने प्रधान।
पाकर यहां विशेषता, पहुचे पद निर्वाण ॥

अव सुनो एकाग्र चित्त करके, कुछ काल-विभाग बताते है।
जिस जिस क्रमसे जिस जिस गुणसे, जैसे अवतार कहाते है ॥
दश कोडाकोड सागर का, अवकाल यह अवसर्पणि है।
उतसर्पणि दसका वीतगया, आगे भी उतसर्पणि है ॥

दोहा— प्रति सर्पणि मे हुए, होगें है अवतार।
त्रिषष्ठी प्रतिकाल में समझो गणितानुसार ॥

धर्मावतार हुवे चौवीस, अब है आगे को होवेगें ।
सब तारन तरण जहाज आगामी कर्ममैल को धोवेगें ॥
बारा भोगावतार हुवे, इस में आगे होगें बारा ।
निग्रन्थ बने सो मोक्ष लहें नही बास अधोगति मंझारा ॥

दोहा— कर्मावतार होते सभी सन्मुख बचे जो शेष ।
वरणन करते है सभी, जो जो फरक विशेष ॥
उक्त कालके हिस्सों में, नौनौ बलदेव कहाते है ।
यह उत्तम प्राणी त्यागशीलसे, स्वर्ग अपवर्ग में जाते है ॥
अनुजभ्रात इन के ही क्रमसे, वासुदेव कहलाते है ।
अपर नाम नारायण जो, दुनियां से नही दहलाते है ॥
संग्राम में इनसे बढ करके, दुनियां में ना कोई शूरा है ।
क्योंकि इनका पिछला बाधा, होता नही पुण्य अधूरा है ॥
पूर्व पुण्य शुभ भोग यहा, यहा का आगे जा पाते हैं ।
वलिके द्वारे के अतिरिक्त, ना और कही पर जाते है ॥
इन अष्टादश के पूर्व जात, नौ नौ नारायण होते है ।
प्रति वासुदेव, कह दो चाहे, अवसान में सर्वस्व खोते है ।
वासुदेव के हाथों से ही, क्रम से इनका मरना है ।
वलके द्वारे विना इन्हें भी, और नही कही शरणा है ॥

दोहा— इन नौ नौ के ही समय, नौ नौ नारद जान ।
भूमड़ल के भूपति, करते सब सन्मान् ॥
अद्वितीय कलह प्रिय होते, पर होते है शुद्ध ब्रह्मचारी ।
इनसे जो कोई प्रतिकूल चले, उसकी होती मिट्टी ख्वारी ॥
विग्रह करके उपशान्त वनाता, वामे करका खेल सभी ।
भ्रात भले जामात बुरे के, वदसे भला ना करें कभी ॥

घर घर क्या सब रणवासो तक, ना रोक इन्हें कोई होती है।
और जिसने कुछ विपरीत किया, तो उसकी किस्मत सोती है॥
अन्त्यम् होता है स्वर्गगमन, ब्रह्मचर्य गुण के कारण से।
और वासुदेव संगप्रेम इन्हों का, होता असाधारण से॥

दोहा— जिसने पूर्व जन्म में, किया धर्म हितकार।
रूप ऋद्धि उनको यहां, मिलती अपरम्पार॥
अतुल रूप धारी चौवीस ही, कामदेव अवतार हुवे।
सब कामदेव को जीत जीत, बहुते भव सिन्धुपार हुवे॥
नरनारी क्या शुभ रूप देख, सुर इन्द्राणी मुर्झाती है।
किन्तु विषयों में खुचें नही, चाहे सुरललना तक चाहती है॥

दोहा— एकादशरुद्र हुवे महाक्रूर अवतार।
जाते आप अधोगति फैलाकर व्यभिचार॥
यह तप जपसे हो भृष्ट सभी, खोटे कर्मो में लगते है।
फिर अशुभ कर्म भोगन कारण, जाकुम्भिपाकमें गलते है॥
शुभ पुण्यरूप नरतन पाकर, सबक्रूर कर्म में चलते है।
अनमोल समय चिन्तामणि तन, खोकर अपने कर मलते है॥

दोहा— धर्म ध्यान शुभ शुक्ल दो प्राणी को सुखदाय।
नाम स्थानादिक, सभी देखो यत्र माय॥

---

२४ तीर्थकर देवो का नाम और लक्षण

१	श्री ऋषभदेवजी	बैलका
२	,, अजितनाथजी	हस्तीका
३	,, सभवनाथजी	अश्वका
४	,, अभिनन्दनजी	कपिका

दोहा— कथन आपका है प्रभु प्रश्न व्याकरण मांय।
सीता कारण क्षय हुवा महान् जन समुदाय ॥
अष्टम वासुदेव लखन श्री, रामचन्द्र और रावण का।
हनुमान और सुग्रीव आघ सीता का हाल चुरावन का ॥

५	,, सुमतिनाथजी	चक्रवाक् का
६	,, पद्मप्रभुजी	कमल का
७	,, सुपार्श्वनाथजी	साथिये का
८	,, चन्द्रप्रभुजी	चन्द्रमा का
९	,, सुविधिनाथजी	नाकु का
१०	, शीतलनाथजी	कल्पवृक्ष का
११	,, श्रेयासनाथजी	गैंडे का
१२	,, वासुपुज्यजी	भैंसे का
१३	,, विमलनाथजी	वराह का
१४	,, अनन्तनाथजी	सेही का
१५	,, धर्मनाथजी	वज्र दण्ड का
१६	,, शान्तिनाथजी	हिरण का
१७	,, कुन्थुनाथजी	अज का
१८	,, अरहनाथजी	मत्स का
१९	,, मल्लिनाथजी	कलश का
२०	,, मुनिसुव्रतजी	कछुए का
२१	,, नेमिनाथजी	कमल का
२२	,, अरिष्टनेमीजी	शंख का
२३	,, पार्श्वनाथजी	सर्प का
२४	,, महावीर स्वामीजी	सिंह का

स्वामिन् है इच्छा सुनने की, वह भी कृपा हम पर होगी।
कौन कौन गये शुभ गतिमे, गतिको को हुए विषम भोगी॥

द्वादश भोगावतार चक्रवर्तियों के नाम

१ भरत चक्री
२ सगर चक्री
३ माधव चक्री
४ सनत कुमार चक्री
५ शान्तिनाथ (तीर्थंकर) चक्री
६ कुंथुनाथ चक्री
७ अरहनाथ चक्री
८ सम्भूम चक्री
९ महापद्म चक्री
१० हरिषेण चक्री
११ जयनाम चक्री
१२ ब्रह्मदत्त चक्री

कर्मावतार नौ वासुदेव नारायण

१ त्रिपिष्ट
२ द्विपिष्ट
३ स्वयम्भू
४ पुरुषोत्तम
५ पुरुषसिंह
६ पुण्डरीक
७ दत्त
८ विलक्षण—लक्ष्मण
९ कृष्ण महाराज

कर्मावतार नौ प्रति वासुदेव प्रति नारायण

१ [illegible]ग्रीव
२ तारक
३ मेरक
४ मधु कैटभ
५ निशुम्भ
६ बलि
७ प्रह्लाद
८ रावण
९ जरासिन्धु

नव बलदेव

१ [illegible]
२ [illegible]
३ भद्र
४ सुप्रभ

भाइयों में कैसा प्रेम और, मित्रों मे क्या मित्रता थी।
पुत्रों में कैसी विनय और, चरित्र में क्या विचित्रता थी॥

५	सुदर्शन	८	पद्म (राम)
६	आनन्द	९	बलभद्र
७	नन्दन		

नव नारद

१	भीम	६	महाकाल
२	महाभीम	७	दुर्मुख
३	रुद्र	८	नर्क मुख
४	महारुद्र	९	अधोमुख
५	काल		

एकादश रुद्र

१	भीमबली	७	पुण्डरीक
२	जीत शत्रु	८	अजित धर
३	रुद्र	९	जितनामी
४	विश्वनाथ	१०	पीठ
५	सुप्रतिष्ट	११	सात्यकि
६	अन्तल		

चौबीस काम देवावतार

१	बाहुबली	५	प्रसेनजीत
२	अमिततेज	६	चन्द्र वर्ण
३	श्रीधर	७	अग्नि मुक्ति
४	दशभद्र	८	सनत कुमार (चक्री)

क्या प्रेम था सासु वधु का और पतिव्रता कैसी थी नारी
सत्यपथपर कैसे मरते थे, कैसे थे दृढ धर्म धारी ॥

---

९ वत्सराज
१० कनक प्रभ
११ मेघवर्ण
१२ शान्तिनाथ (१६ जिन)
१३ कुन्थुनाथ
१४ विजयराज
१५ श्रीचन्द्र
१६ राजा नल
१७ हनुमानजी
१८ बल राजा
१९ वसुदेव
२० प्रद्युम्न
२१ नाग कुमार
२२ श्री पालनृप
२३ जम्बू स्वामी
२४ सुदर्शन

चतुर्दश कुलकर (मनु)

१ प्रतिश्रुति
२ सम्मति
३ क्षेमकर
४ क्षेमंधर
५ सीमंकर
६ सीमंधर
७ विमलवाहन
८ चक्षुष्मान
९ यशस्वी
१० अभिचन्द्र
११ चंद्राभ
१२ मरुदेव
१३ प्रसेनजीत
१४ नाभिराजा

द्वादश प्रसिद्ध पुरुष हुए

१ नाभिराजा
२ श्रेयांस
३ बाहुबली
४ रामचन्द्र
५ हनुमान
६ सीता
७ रावण
८ कृष्णजी
९ महादेव
१० भीम
११ श्री पार्श्वनाथ
१२ भरतेश्वर

दोहा— अष्टमत्रक् अवतारों का जो जो विवरस् खास ।
क्रम क्रम से होगा सभी, गति कर्म और वास ॥

भूतकाल के तीर्थकरों (अवतारो) के नाम

१	श्री निर्वाणजी	१३	,, शिव गणजी
२	,, सागरजी	१४	,, उत्साहजी
३	,, महासिन्धुजी	१५	,, सानेश्वरजी
४	,, विमल प्रभुजी	१६	,, परमेश्वरजी
५	,, श्रीधरजी	१७	,, विमलेश्वरजी
६	,, दत्तजी	१८	,, यशोधरजी
७	,, अमल प्रभुजी	१९	,, कृष्णमतिजी
८	,, उद्धारजी	२०	,, ज्ञानमतिजी
९	,, अगीरजी	२१	,, शुद्धमतिजी
१०	,, सनमतिजी	२२	,, भद्रजी
११	,, सिन्धुनाथजी	२३	,, अतिकान्तजी
१२	,, कुसुमांजलीजी	२४	,, शान्त स्वामीजी

भविष्यकाल के चौवीस अवतारों के नाम

तीर्थकर के नाम		जिन्होने तीर्थकर गोत्र उपार्जन किया	
१	श्री महापद्मजी	१	श्रेणिक राजा
२	,, सुर्यदेव	२	सुपार्श्व
३	,, सुपार्श्व	३	उदय
४	,, स्वय प्रभ	४	पोटिल अनगार
५	,, सर्वानुभूति	५	दृढायु
६	,, देवश्रुत	६	कार्तिक सेठ
७	,, उदय	७	शख श्रावक
८	,, पेढालपुत्र	८	आनन्द

भारत का गौरव दर्शाने को, यह भी एक महाचरित्र है।
कर्तव्य जिसे कहती दुनिया, इस में भी महा पवित्र है॥
शिक्षा प्रद है इतिहास सभी, हर प्राणी को नरनारि क्या।
यदि चातक को ना बुन्द मिले, क्या करे विचारा वारिवाह॥

दोहा— आप्त के उपदेश मे, दोष नही लवलेप।
आगे मति श्रुति ज्ञानि का, होगा कथन विशेष॥
ग्यारह लाख छियासी सहस्त्र और साढेसौ सात।
वर्ष पूर्व थे विचरते, मुनि सुव्रत जगनाथ॥

---

६ ,, पोटिला	६ सुनंद
१० ,, शतकीर्ति	१० सत्तक
११ , मुनिसुव्रत	११ देवकी
१२ ,, सत्यभाववित	१२ सत्याकी
१३ ,, निषकषाय	१३ कृष्णवासुदेव
१४ ,, निष्पलाक	१४ बलभद्र
१५ ,, निर्मम	१५ रोहिणी
१६ ,, चित्रगुप्ति	१६ सुलसा
१७ ,, समाधि	१७ रेवती
१८ ,, सम्बर	१८ सथाल
१६ ,, यशोधर	१६ भयाल
२० ,, अनर्धिक	२० द्विपायन
२१ ,, विजय (माली)	२१ नारद
२२ ,, विमल	२२ अम्बड
२३ ,, देवोपपात्त	२३ दासभूत–अमरजीव
२४ ,, अनन्तविजय	२४ स्वातिबुद्ध

साढे बाइस सहस्र वर्ष, वीते थे गृहस्थाश्रम में ।
फिर साढे सात हजार वर्ष, भोगे थे सन्यासाश्रम में ॥
निर्वाण वाद इस भारत में था, विद्यमान इन का शासन ।
सत्य भूति कुल भूषण आदि, मुनियों का था ऊचा आसन ।

दोहा— पंच परमेष्ठी नमन से, पडे अरि के त्रास ।
बदला ले अरु सुख मिले, फल निर्वाण निवास ॥

गाना नं. १

शोरोगुल को वंद करके, लो मजा अब इस कहानी का ।
नेकों की नेक नामी और वदों की भी नादानी का ॥ स्थायी
थे भाईराम और लक्ष्मण, प्रेम दोनों प्राणी का ।
जमाना गौर कर देखा, मिला नही कोई शानी का ॥
पिता के ऋणको तारा था, जो था कैकयी महारानी का ।
आप वनवास को धाये, तजा सुख राज धानी का ॥
पर कारण ही तन मन धन, से था प्रयोग वाणीका ।
सार यह ही समझ रक्खा था, अपनी जिंदगानी का ॥

चौपाई— जम्बूद्वीप छोटासब माही । भरत क्षेत्र स्थानक सुखदायी ।
चौथा आरा लम्बी आयु । उसका किंचित् हाल सुनाऊ ॥

दोहा नौ- आप्त प्रणीत शास्त्रों में, गिनती का शुम्मार ।
सख्या संख्या पल सागर, सब लेवो गुरु से धार ॥

चौ नौ.- वीस क्रोड़ क्रोड़ सागर का, एक काल चक्र होता है ।
जिसके आधे छ हिस्सों में, यह समय नाम चौथा है ॥
बैतालीस सहस्र कम एक क्रोड, का यह आरा होता है ।
हो सर्वज्ञ जीव करनी कर, कर्म मैल धोता है ॥

दौड— वडा होता सुख दाई, नही किसी को दुःखदायी ।
भेद इतना होता है वैसा ही फल मिलेजीव को ॥
जैसा कोई बोता है ।

दो नौ - यथा काल के क्रम से होते है अवतार ।
त्रिपष्ठि के पुरुष सब, पाते भव दधिपार ॥

चौ. नौ–तीर्थंकर चौवीस चक्रवर्ति, बारा ही पहिचानो ।
नौ बलदेव नौ वासुदेव, नौ नौ प्रति नारद जानो ॥
लब्धि धारक मनपर्यय और केवल ज्ञानी मानो ।
विद्याधर सुविशाल शूरमा, वहत्र कला सुविधानो ॥

दौड – चौवीस धर्म देव है, बाकी कर्म देव है ।
नही कुछ पुण्य में स्वामी, आठो कर्म संहार सभी ॥
होतें है मोक्ष के गामी ॥

चौपाई– मुनि सुव्रत जिन वीसवें स्वामी । लोका लोकके अंतर्यामी ।
नमस्कार करि कलम चलाई । निर्विघ्न ग्रन्थ होवे सुखदायी ॥
अष्टम वासुदेव वलदेव । दिन दिन वढता अधिक स्नेह ।

दो-नो—पुरी अयोध्या में हुवे, दशरथ भूप उदार ।
सूर्य वंश में आ लिया, राम लखन अवतार ॥

चौ नौ – रामचन्द्र लक्ष्मण सीता । रावण का करुं बयाना ।
थे योद्धा बलवान् बडे । शक्ति का नही ठिकाना ॥
वानर वंशी सुग्रीवादिक । का भी सब हाल सुनाना ॥
थे आधीन सब रावण के । पर सत्य पक्ष को जाना ॥

दौढ— तीन खण्ड के मांही, फैली हुई थी प्रभुताई ।
अन्त क्या रहा हाथ में, अच्छे बुरे जो किये कर्म ।
वोही ले गये साथ में ॥

दो-नौ- अष्टम चक का हाल अब, सुनो लगाकर कान।
मुनि सुव्रत अरिहन्त का, शासन था विद्यमान ॥

चौ नौ- वीसवें तीर्थकर के वाद। पैदा का हाल इन्हों का।
आदि अन्ततक जो चरित्र, वतलाना सभी जिन्हो का ॥

घवरावें नही आपत्ति से। हो नाम प्रसिद्ध उन्हों का।
पर कारण सहे कष्ट मिला नही सुख कोई स्वल्प दिनों का ॥

दौड— सुनो जो मन चित लाके। ध्यान एकाग्र जमाके।
यदि होवे चित्त खिलारी। तो सुनने की अभिलापमत
करो सुनो नरनारी ॥

चौपाई- सच्चे मन से धारे सोई। शिक्षा मिले अरु सम्पत्ति होई।
पावन महानाम अभिराम। सिद्ध हुए सुख आठोंयाम ॥

दो-नौ- जो शूर कर्त्तव्य में, वही धर्म मे जान।
पाकर यहां विशेषता, अन्त भेद निर्वाण ॥

चौ. नौ -लक्ष्मण रावण जन्मान्तर में, तीर्थकर पद पावेंगे।
अष्टकर्म दल को क्षय करके, मोक्ष धाम जावेंगें ॥

अभी देर तक कर्म बन्ध, वल द्वारे भुगतावेंगें।
फिर अनुक्रम से मनुष्य जन्म, में 'शुक्ल' ध्यान लावेंगे ॥

दोड— वारवें स्वर्ग संभारी, वैठी है जनक दुलारी।
हुकम सब के ऊपर है, सीनेन्द्र हुवा नाम करी ॥
पूर्व करनी दुष्कर है ॥

दो. नौ -राम कथा अभिराम है, तजो निद्रा घोर।
जो जो कुछ वीतक हुआ, सुनो सभी कर गौर ॥

चौ नौ –सुनो सभी कर गौर, यहां वृतात सभी बतलाना ।
अद्भुत रग दमकता था, जो था उस समय जमाना ॥
शूरवीर वाके दुर्दन्ते, घन गर्जति समाना ।
इस को यहा करु समाप्त, आगे सुनो बयाना ॥

दौड— विपत्ति जो आई है, दृढ बन सभी सही है ।
सुन सुन कर होवोगे गुम, आदि अत पर्यन्त
सभी धर कर के ध्यान सुनो तुम ॥

चौपाई- भरतक्षेत्र मे देश पुरलका, स्वर्णमयी है कोट दुर्वक्का ।
अन्य नाम एक राक्षस द्वीप, अति अनुपमलंक समीप
वर्तमान थे अजित जिनेश, घन वाहन हुए आदि नरेश ॥

दो नौ – राक्षस सुत को राज दे, अजित स्वामी पास ।
सयम ले करणी करी, पहुचे मोक्ष निवास ॥

चौ नौ –पहुचे मोक्ष निवास जिन्होंनें, दुःख ने किया किनारा ।
तप जप दुष्कर करनी कर, किया आत्म ज्ञान उजारा ॥
मानिन्द मिश्री मक्खी के, जिन दोनो लोक सुधारा ।
अवसर प्राप्त देख राक्षस, सुतने संयम धारा ॥

दौड— देव राक्षस अधिकारी, आप गये मोक्ष सिधारी
असंख्य हुवे है राजा, दशवें जिनवर समय
कीर्ति धवल नरेद्र ताजा ॥

दोहा— उसी समय उस कालमें, मे धामिदापुर नाम ।
नगर अति रमणीक था, मानो है स्वर्धाम ॥

चौपाई- भूपअतीन्द्र विद्याधर, श्रीमति राणी अति सुन्दर ।
श्री कण्ठपुत्र सुखदाई, गुणमाला एक सुता कहाई ॥

दो नी.-रत्नपुरी नगरी भली, पुष्पोत्तर तहाँ राय ।
पुष्पोत्तर सुत के लिये, गुण माला की चाह ॥

चौ. नी.-गुणमाला की चाह, जिन्होंने मांगी खगराजा से ।
वने परस्पर प्रेम हमारा, तेरा इस नाता से ॥
समझाया नृपने अपनी, अति बुद्धि वाचाला से ।
सन्तोष जनक नही मिला, उत्तर अतीन्द्र भूपाला से ॥

दौड़— समझ उसको नही आई, लंकपति को व्याही ।
सूल दु'ख की यह दाता, 'पुष्पोत्तर खेचर को
सुनकर दिल में अमर्ष आता ॥

दोहा— पुष्पोत्तर की पुत्री, पद्मावती तसु नाम ।
चली सैर करने लिये, हुई जिस समय श्याम ॥

अपनी मस्तानी चाली से, भानु अस्ताचल जाता था ।
उदयाचल से चन्द्रमा भी, शुभ कदम बढाये आता था ॥
इस ओर मध्य भूमण्डल पर, चेरी जन से परिवरि हुई ।
पद्मा मस्तानी जाती थी, जौहर गौहर से भरी हुई ॥
मुखपर लाली थी सह स्वभाव, कुछ सूर्य ने चौचन्दकरी ।
कुछ शशि स्पर्धा के मारेने, अपनी किरण बुलन्दकरी ॥
पत्ती गण गायन करते थे, फूलों ने हसना शुरु किया ।
यह अवसर देख हवाने भी, अपना वहना तनु किया ॥
पद्मा को स्पर्श करने को, तरुवर भी टान झुकाते थे ।
वह पत्र फूल स्वागत करने को, अपना आप मिटाते थे ॥
एक दूसरे से पहले, वसमार्ग में विछ जाते थे ।
यह सोच अंगना मैला हो, धूली समूह छिप जाते थे ॥

मोर नृत्य कर कूकशब्द से, मीठा वचन सुनाते थे ।
जिसने देखा यह पुण्य तनु, सवशोक समूह मिट जाते थे ॥
चाली गति हंस निराली सम, गिनगिनकर चरण उठाती थी ।
वह चिन्ह कुदरती तनपर थे, सुरललना भी मुर्झाती थी ॥

दो.— इसी मार्ग से आ रहा, था सन्मुख श्री कण्ठ ।
ठहर बाग तटपर जरा, लगा लेन कुछ ठण्ड ॥
शुभ पुण्य रूप वह पद्मा का मुख, श्री कठने जब देखा ।
कुछ सहसा झलक दिखा करके, जा घसी बागमे वह देखा ।
यहां मोह कर्म के उदय भाव से, पराधीन हुआ चोला है ।
फिर मन ही मन मे श्री कण्ठ, अपने मुख से यों बोला है ॥

गाना नं. २

कहां गई वह कामिनी, दिल देख मतवाला हुवा ।
मोहिनी मूर्त वदन, सांचे मे था ढाला हुवा ॥
प्यासा इसी के दर्शका, सूर्य भी अस्ताचल खड़ा ।
आ रहा इन्दु उधर से, करता उजियाला हुआ ॥
देख मुखपर दमकता, दिल में हुआ ऐसा विचार ।
इस पुण्य तन के सामने, दोनों का तन काला हुवा ॥
शील लज्जा भोला पन, क्या गुण सर्व लक्षण अति ।
चमन और संध्या से जिस का, रूप दो वाला हुआ ॥
किस तरह सयोग अब, इस पुण्य तन से हो मेरा ।
पूर्ण हो आशा तो मैं भी, शुभ कर्म वाला हुआ ॥

दोहा— मन ही मन में इस तरह, करता रहा विचार ।
सेवक जन लख आकृति, बोले गिरा उचार ॥

स्वामिन् क्यों सहसा हुआ, चेहरा आज उदास ।
किस कारण लेने लगे, लम्बे लम्बे स्वांस ॥
है प्रकृति अनुकूल सभी के, शोक मोचनी वनी हुई ।
सध्या भी अपना गौरव लेकर, सभी ओर से तनी हुई ॥
वायु कुमार ने मरुत की शोभा, शीतल कैसी रची हुई ।
जिसको लेकर ना चलती पवन, व सुगन्ध कौनसी वची हुई ॥

गाना न ३

मेरे इस मर्ज की, तुम्हें क्या खवर है ।
यह दौरा मुझे सहसा, आया जवर है ॥

यदि घर चला तो, यह दूनी वढेगी ।
मुझे आता निश्चय ही, ऐसा नजर है ॥

इसी राजधानी में, ठहरेंगें कुछ दिन ।
मेरे मर्ज की वस, मुझे ही फिकर है ॥

सिवा एक के वाकी, जावो भिदापुर ।
मिटेंगी यह कुछ दिन, में जो भी कसर है ॥

शुक्ल सत्य जानों, कि दो तीन दिन में ।
चिकित्सा का होवेगा, मुझपर असर है ॥

दोहा—श्री कएठने इस तरह, किया वहा विश्राम ।
ढंग वही करने लगा, वने किस तरह काम ॥

मन ही मन में सोच के, भिदापुर के नाथ ।
कुशल पूछ दर्वान से, मिले प्रेम के साथ ॥

प्रेम देख श्री कएठ का, चकित हुवा दर्वान ।
वोला श्री महाराज मैं, हूं निर्धन अनजान ॥

श्रीमान् करना क्षमा, मैंने, श्रीमान् को पहिचाना ही नहीं।
एक निर्धन ने ऐसे प्रेमी, धनवान् को पहिचाना ही नहीं॥

जो रावरंक का मान करे, गुणवान को पहिचाना ही नही।
हैं कौन देश के आप रत्न, भगवान् को पहिचाना ही नही॥

बोले श्री कण्ठ मैं परदेशी, यहा भूला भटका आया हू।
विश्राम के कारण ठहर गया, और भूख का अधिक सताया हू॥

एक श्रमित बटोही परदेशी पर, इतना तुम उपकार करो।
भूखे की भूख मिटा कर तुम, एक अतिथि का सत्कार करो॥

कर भला भला होगा तेरा, मन में ना जरा विचार करो।
उपकार के बदले में भाई, यह पुरस्कार स्वीकार करो॥

दोहा— मोहरें लेकर हाथ में, भूल गया सब ज्ञान।
शीश नवा कर चल दिया, खुशी खुशी दर्वान॥
मोहरें लेकर चल दिया, जब वह पहिरेदार।
प्रेम पत्र लिखने लगे, श्री कण्ठ सुकुमार॥

गाना नं ४

मन नही बस में रहा, जब सुन्दर सूरत देखली।
मोहिनी जादू भरी, एक चंद्र मूरत देखली॥

प्रेम की वीणा लिये, प्रेमी गुणों को गा रहा।
राग की झनकर ने भी, प्रेम की गत देखली॥

चूमते उपवन की चौखट, हैं खडे दर्वान बन।
क्या क्या अनुचित कर्म, करवाती है चाहत देखली॥

वैद्य के आगे न रोगी, रोय तो रोये कहां।
प्रेमप्राणी मात्र की, करता है जो गत देखली॥

प्रेम के सागर में, आशाओं की लहरें उठ रही ।
प्रेम वस बुद्धि हुई, कैसी है मदमत्त देखली ॥

प्रेम वस अनुचित, उचित का ज्ञान कुछ रहता नहीं ।
प्रेम के रंग में रंगे, शब्दों की रंगत देखली ॥

देख तेरे दर्शनों की, भीख आये मागने ।
दिव्य दृष्टि से जभी, दाता की आदत देखली ॥

दोहा— जहां सम्पति तहां पराहुणें, और याचक गणजाय ।
मेघ वहा श्रावण जहां, बर्सन को तहा आय ॥

सास जहां तक जीती है, तब तक सासरा कहाता है ।
तीनों का जहां अभाव वहांपर, कौन कहा कोई जाता है ॥

विद्या वचन वपु वस्त्र, अरु विभव पाच वकार जहा ।
शुक्ल वहां जाना चाहिये, सुन्दर हो पांच वकार जहां ॥

जल रसना दोनो मीठे, दुखियों का दुःख जानते हों ।
शुभ विद्या और मति शोभन, गुण अवगुण को
पहिचानते हों ॥

अपने गौरव जैसा प्राणी, वस ओरों का गौरव माने ।
सब काम सरलता का अच्छा, चाहे कोई बुरा भला जाने ॥

कल से यहा बाग तेरे की, आकर घूमन घेरी लाने है ।
बस सौ बातों की बात यही, अतितर हम तुम को चाहते है ॥

अनुकूल चाहे प्रतिकूल कहो, लिखना यह खास हमारा है ।
इस का ना समझें दोष कोई, जो पहिरेदार तुम्हारा है ॥

यदि उत्तर हाँ में है तो फिर कहना सुनना कुछ और नही ।
गर उत्तर नामें तो होनी आगे, कुछ चलता जोर नहीं ॥

दो.— पत्र लिख ऐसा दिया, कर चौतरफी बंद ।
पद्मा का ऊपर लिखा, नाम आप सानन्द ॥

आगे बढकर दिया फैंक, जहापर वह आती जाती थी।
और संध्या भी अपना सौन्दर्य्य, लेकर सन्मुख आती थी॥

धमकल पहिरेदार उधर से, खाद्यपदार्थ लाया है ।
आगे धरकर मिष्टान्न सभी, श्री कण्ठ को वचन सुनाया है॥

दो.— पांच मोहर से अधिक, यह लीजे सब मिष्टान्न ।
बैठ आप यहा कीजिये, भोजन और जलपान ॥

मेरा श्रृंगार मुझे दीजे, अपने पहिरे पर डटता हूं।
सब कारण आप जानते है, संग खाने से जो नटता हूं॥

राजकुमारी की सध्या अब, स्वागत करने आई है ।
फिर हमतो उनके सेवक है, आजीविका जिन से पाई है॥

पराधीन स्वपने सुख नही, सत्य किसीने कह डाला ।
कारण यह पूर्व जन्म में नही, हमने कुछ शुद्ध धर्म पाला॥

ना किसी मित्र या सज्जन का, स्वागत पूरा कर सकते है।
यदि परतंत्रता तजें कहीं, तो पेट नही भर सकते है ॥

दोहा— श्रीकण्ठ-मित्र क्या कहने लगे, भोली भोली बात ।
कभी श्याम दिन रात्री, कभी होय प्रभात ॥

जो भेद नजर आता यहां बेशक, कर्त्तव्य पूर्व जन्म कैसे।
स्वतत्र और परतंत्र बने, जैसा कोई कर्म करे वैसे ॥

परतन्त्र होकर भी तुमने, सेवा की है चित्त लाकर के।
स्वतत्र कौन कर सकता है, स्वार्थ में मन फंसा करके॥
यदि कर्म तेरे सीधे होगें, कल स्वतंत्र बन जावेगा ।

क्यों पहिरेदार रहेगा यहां, निज घर में मौज उडावेगा ॥
मित्र जो कह चुके तुम्हें, मित्र का अग पुगावेंगे ।
अपना चाहे काम बने ना वने, पर बना तुम्हारा जावेंगे ॥

जो पांच मोहर वापिस लेलू, क्या तुम पर अविश्वासी हूं ।
विश्राम यहां करने से मैं, बन चुका मित्र सगवासी हू ॥

तुझमें मुझमें ना भेद कोई, यदि है तो मन से दूर करो ।
स्वावलम्बन हो वस अपने पर, इस निर्बलता को दूर करो ॥

दो— पद्मा के रथ का सुना, जव सुदूर झकार ।
धमकल झटपट जा, हुवा पहिरे पर असवार ॥

श्री कण्ठने भी पद्मा के, सन्मुख ही प्रस्थान किया ।
और पैदल चलने की सीमा पर, पद्माने तज यान दिया ॥

आ मेल परस्पर हुवा वहां, कुछ सध्याने रंग वर्साया ।
कुछ वाग दुतर्फी फल फूलों, ने भी अपना रंग दर्शाया ॥

कुछ श्री कण्ठ के चेहरे का, पहिले ही रग गुलावी था ।
कुछ संध्यारग से और खिल गया. सन्मुख अर्चीमाली था ॥

लक्षण व्यञ्जन गुण अवगुण, विद्या के दोनों ज्ञाता थे ।
संयोग मिलाने वन वैठे, मानों शुभ कर्म विधाता थे ॥

दो— आकार और आभ्यन्तर में, जैसी चेष्टा होय ।
भाषा नेत्र विकार से, जाने वुद्धि जन कोय ॥

वस एक दूसरे के अन्तर्गत, मन भावो को भाम गये ।
कुछ मेरा है अनुराग इसे, उस को मेरा यह याच गये ॥

कुछ पूर्व जन्म का प्रेम, और आयु भी कुछ स्वीकारती है ।
कुछ लक्षण व्यजन आकर्षण, शक्ति भी हाथ पसारती है ॥

चरित्र मोहिनी कर्म उदय, जिस प्राणी का जब आता है।
उस काम से लाख यातन करने पर, भी नही हटना
चाहता है ॥
मन का मन साची होता है, यह उदाहरण भी जाहिर है।
जो मर्ज थी श्री कण्ठ को यहां, पद्माना उस से वाहिर है॥

दो.— दोनो निज रस्ते लगे, भाव हृदय में धार।
राजकुमारी जा धसी, अपने बाग मंझार ॥

गाना न. ९

मनोहर रुप पर मोहित ये, तवियत होई जाती है।
अनोखी देखकर रचना को, उल्फत होई जाती है॥
अगर आज्ञा विना स्वामीके, वस्तु लेना चोरी है।
मनोहर मूर्ती से यों, महोब्वत होई जाती है॥
यदि मांगू मैं राजा से, नही मानेगा हट धर्मी।
हुआ अपमान जिसका उसको, नफरत होई जाती है॥
मेरी शक्ति नही ऐसी, कि मैं बल से उसे जीतू।
शुक्ल निर्वल पुरुप को, छल की आदत होई जाती है॥

दो.— करता करता जा रहा, निज विचार श्रीकण्ठ।
इधर आईये वाग में, लगे जरा कुछ ठण्ड ॥
पद्मा की दृष्टि पडी, उसी पत्र पर जाय।
आज्ञा या चेटी दिया, उसी समय कर लाय ॥
जव पढ़ा पत्र महस्मा विचार, चक्कर मस्तक मे धूम गया।
या यो कहिये कि श्रीकरठ के, सिरसे बुरा मनसूम गया॥
निवास गृह मे जा वैठी, चेरी जन को निज काम लगा।
ले हाथ लेखिनी कागज पर, उत्तर लिखने लगी ध्यान जमा॥

दो — स्वस्ति श्री सर्वोपमा, गुणिजन में प्रवीण ।
आकर्षण गुण लेखने, लिया कलेजा छीन ॥

सम्बन्ध सभी पीछे होगा, पहिले परिचय करानेसे ।
कोई कष्ट पडे उसको सहनेमें, अपना साहस बढ़ाने से ॥

कर्तव्य जो हो अपना उसपर भी, दृष्टि जमा लेनी चाहिये ।
प्रकृति मिले परस्पर परीक्षा, लेनी और देनी चाहिये ॥

क्या नाम आपका धाम सहित, और किसके राज दुलारे हो ।
अर्धाङ्गनी है कौन आपकी, याकि अभी कुवारे हो ॥

आसान सभी कर्तव्य कठिन, होता दिल लेना देना है ।
मन मिले विना क्या कहो आप, कब प्रेमका दरया वहना है ॥
अनमेलसे मेल मिला लेना, वुद्धि मानी से वाहिर है ।
विगडे पय कांजी की छीट पडे, यह भी मिसाल जग जाहिर है ॥
सिक्कसे मेल मिला करके, सोना निज गौरव खोता है ।
उस वीजका नाश निश्चय वने, जो कि कल्लरमें वोता है ॥
विन सोचे जो कोई काम करे, सोही पीछे फिर रोता है ।
जो द्रव्यकाल अनुसार चले, सोही जन विजयी होता है ॥
आशा निश्चय पूरी होगी, अनुमान नजर यह आते हैं ।
पर उद्यम सबका मूल यही, सर्वज्ञ देव वतलाते हैं ॥
यह वात सोचने वाली है, स्वार्थ ना कोई निकल आवे ।
सब रंग भंग हो जाय यदि, कोई समस्या निकल विकट आवे ॥
जो भी कुछ करना वुद्धिमानको प्रथम सोच लेना चाहिये ।
आ स्वार्थ के अंकुरों को, हृदयसे नोच देना चाहिये ॥

दो.— सज्जन ऐसे चाहिये, जैसे रेशम तन्द ।
धागा भाना खण्ड हो कभी ना छोडे वंध ॥

से सज्जन परिहरो, जैसे अर्कज फूल ।
ऊपर लाली चमकती, अन्दर विषका मूल ॥
नीति और व्यवहार की दृष्टि, से कुछ लिखना पड़ता है।
पर प्रेम संस्कारी सबको तज, निश्चय आन जकड़ता है॥
किन्तु फिर भी व्यवहार मुख्य, लिये सबके खास जरूरी है।
खाली निश्चय पर तुल जाना, यह भी तो एक गरूरी है॥
व्यवहार यदि दुनियाँ का साधा, जावे तो क्या हानि है।
क्यों कि फिर मात पिता की भी, इच्छा होवे मन मानी है॥
इस तरह परस्पर दोनों की, व्यवहारिक शादी हो जावे।
प्रतिकूल में ऐसा सशय है, कोई जान मान ना खो जावे॥
वस इत्यल कर के प्रतीक्षा, एक आप के दर्शन की ।
यह ख्याल ना करना इच्छा है, पद्मा को उत्तर प्रश्न की॥

दो.— ऐसा लिखकर लेख बस, किया बंध तत्काल ।
धमकल को बुलवा लिया, समझाने को हाल ॥
धमकल पहिरे दार शीघ्र, पद्मा के पास सिधाया है ।
और विनय सहित अपना मस्तक, भूमि तक आन निमाया है॥
कुछ बनावटी निज मुख मंडल, पद्माने भी मुर्झाया है।
सब बात पूछने के कारण, यो मुखसे वचन सुनाया है॥

दो.— क्या कोई आया यहां, सच सच कहो बयान ।
झूठ ना कहना तनिक भी, समझ मुझे अनजान ॥
सत्य कहने वाले की परीक्षा, सत्य के ही आधारपे है।
और मृषा भाषण वाले के लिये, दण्ड भी इस संसार पे है॥

कोई जाता जाता जैसा भी, देखा हो वैसा बतलावो ।
यह सत्य सभीको अच्छा है तुम भय ना कोई मनमें लावो ॥

दो.— जी हा आया था यहां, मनुष्य अपरिचित आज ।
व्यञ्जन लक्षणों का जिसे, मिला सभी शुभ साज ॥

सुन्दर सभी अवयव और तन था, साचे में ढला हुआ ।
मालूम मुझे होता था जैसे राज, भवन में पला हुआ ॥
रसनामें जिसके आकर्षण, शक्ति थी मानों भरी हुई ।
और क्रोध लोभ मदमाया की, थी शक्ति सारी जरी हुई ॥
परिचित नही होनेसे भी वह, परिचित से ही बन जाते हैं ।
अवकाश मिले नही पूछन का, बस प्रेम बीच सन जाते हैं ॥
आतेही प्रसन्न वदन होकर, मुझको पागल सा कर डाला ।
देखने मे सौम्य मूर्ति उन्नत, मस्तक तनु कमर वाला ॥
पहिरे पर आप खडे होकर, मुझसे कुछ खाद्य मगाया था ।
चल दिये यहा से आपके रथने, जब झंकार सुनाया था ॥
कुछ और मुझे मालूम नहीं, था कहा का कहासे आया था ।
बस उसकी छाया का मुझपर, वेशक जादूसा छाया था ॥

दो.— (पद्मा) यह लो पत्र तुम्हही, रखो अपने पास ।
गर उनको यदि ना मिले, देना मुझको खास ॥
इतना कह कर के गई, पद्मा निज आवास ।
श्रीकण्ठ अगले दिवस, पहुंचा धमकल पास ॥
श्रीकण्ठ आगे कल की, जो थी सो सारी बात कही ।
पत्रिका राजकुमारी की. फिर राज कुमार के हाथ दई ॥

वह पत्र पढते ही भाग, वस हृदय कमल प्रकाश हुवा।
क्योंकि जिस काम की आशा थी, वह काम एकदम पास हुवा॥
पुण्योदय धनक्ल को भी, मिल गया द्रव्य खुश हाल हुवा।
चल दिये वहा से पद्मा के, आने का संध्याकाल हुवा॥

दोहा— अपना लिया सजा तुरत शुभ श्रीकण्ठ विमान।
पहुंची यहा निज वाग मे, पद्मामाभिमान॥

पूछ संतरी से वीतक, वातें अन्दर प्रवेश किया।
मीठी रसना के वने दास, कुछ लालचदे उपदेश दिया॥
प्रतिज्ञा करने से पहिले, श्री कण्ठ वागमे आ पहुंचा।
और मेल परस्पर होनेसे, पहिले निज कर्तव्य को सोचा॥

दो.— देखी जव श्री कण्ठने, पुण्यश्री यह खान।
उपमा मिलती ही नही, कैसे करे व्याख्यान॥

पद्मा थी वेशक चन्द्रमा, श्री कण्ठ न भानु से कम था।
यदि वह थी सुवर्ण की मुद्री, यह भी न नगीने से कम था॥
मानो थी साचे में ढाली, पर यह भी नकशकमे सम था।
प्रेम संस्कारी दोनोका, एक दूजे से विषम ना था॥
जव सहित वीररस के सहसा, उस काम देव तन को देखा।
लज्जासे ग्रीवा झुका लई, और तिरछे चितवन से देखा॥
लक्षण व्यंजन देख फेर, ना पूछन की दरकार रही।
स्वर व्यजन लक्षण के ज्ञाता, कुछ कहते वारम्बार नही॥

दो.— जो मतलव की वात थी, वतलाई तत्काल।
पद्मासे कहने लगा, इस कारण का हाल॥

निश्चय अपना और तेरा, घटा रहा हूँ मान।
इसका भी कारण सुनो, जरा लगाकर कान ॥
मेधाभिदापुर नगर है, अतीन्द्रपिता भूपाल।
श्री कंण्ठ मम नाम है, श्रीमती शुभ मात ॥

वहिन मेरी गुण माला जो कि, पिता तेरे ने मागी थी।
पर तात मेरे ने अति बहुत, कहने पर भी ना मानी थी ॥
उसी दिवस से जनक तेरा, हम से विरुद्ध है बना हुआ।
और शक्ति में भी अपने से, हमने तेजस्वी गिना हुआ ॥
बस कारण केवल एक यही, तुम को ऐसे लेजाने का।
और ऐसा किये बिना निश्चय, दिल को सन्तोषन आने का ॥
अब जानकी साथ न सच्ची होतो, जल्द विमान में चरण धरो।
कैसे होगा क्या बीतेगी, इसका नारचक भर्म करो ॥
दे चुका तुम्हे दिल क्षत्री हू, मुझ से ना शंका शर्म करो।
क्षत्राणी होना तुम भी तो, निर्भय होकर के निज कर्म करो ॥
जब तक ना आप का दिल होगा, तब तक ना कभी ले जाऊगा।
कर चुका संकल्प तन मन धन, अपना तुम को दे जाऊगा ॥
यदि अब ना तो परभव में तुमको अवश्य मानना होवेगा।
तुम पछतावोगे बारबार, परिवार मुझे सब रोवेगा ॥
कुछ जोर जफा ना तुम पर है, ना गिला हमें कुछ होवेगा।
पर नीद हमेशा की बन्दा भी, इसी बाग में सोवेगा ॥

दोहा— पद्मा ने ऐसा लखा, श्री कण्ठ का प्रेम।
और विशेष पिघल गई ग्रीष्म में जिम हेम ॥

वशी करण के मंत्र हैं, दुनियां में यह चार ।
रुप, राग और नम्रता, और सेवा भली प्रकार ॥
पूर्व जन्म का था सम्बन्ध, कुछरुप का पारवार नहीं ।
कुछ रसना मीठी श्री कण्ठ की, नरमी का कोई पार नही ॥
कुछप्रेम तमाचे के समान, दुनियां में लगता सार नही ।
बस समझो सभी नमूने से, ज्यादा करते विस्तार नही ॥
सब कारण समझे पद्माने, व्यवहार नही अवसधने का ।
जो दिल में प्रेम बढ़ा बैठी, वह प्रेम नही अबहटने का ॥
विना मुझे इस रस्ते से कोई, मार्ग आता नजर नही ।
संयोग है पिछले जन्मों का निश्चय, है इस में कसर नही ॥

दोहा— ऊंच नीच सब सोचकर, बैठी तुरत विमान ।
श्री कण्ठ मन सोचता, बना सब तरह काम ॥

दो.— यह पुष्पोत्तर की सुता, पद्मारुप अपार ।
पुण्योदय से मिलगई, इन्द्राणी अवतार ॥

चौ नौ.- इन्द्राणी अवतार की जिसका, मिलना अति कठिन है ।
याचन से देता नही भूपका, हमसे उल्टा मन है ॥
किन्तु इस मानव आगे, यह कौन क्रिया दुष्कर है ।
होगा सो देखा जायेगा, अब करो काम जो दिल है ॥

दौड़— आज अवसर यह पाया, पुण्य सब मेल मिलाया ।
चलूं अब देरी क्या है, पहूँचूं निज स्थान बजेगी
रण भेरी तो क्या है ॥

दोहा— लात धमुत्रके जो सहे, सोपावे जागीर ।
कायर कर सकते ना कुछ, क्षण में होय अधीर ॥

दावी कला विमान की, सहसा गये आकाश ।
तिरछीकला मरोड के, आये निज आवास ॥

दो.— पुष्पोत्तर को जब हुवा, सुता हरण का ज्ञान ।
आज्ञा पाते ही सजे, जंगी महा विमान ॥

चौ.— जगी सजे विमान व्योम में, बादल से छाये है ।
गिरफ्तार वहा शका मे हुवे, नौकर घबराये है ॥
गुप्तचरों से भेद सभी पा, इष्ट दिशा धाये है ।
श्री कण्ठ था सावधान, यहां भेद सभी पाये है ॥

दौड.— तजी रियासत सुख दानी, चली संग पद्मारानी ।
शरण कोई सोच रहा है, कौन बचावे आज हमे बस
ये ही खोज रहा है ॥

दो.— क्रोधातुर लख भूप को, श्री कण्ठ सोचता धाम ।
शरणा दिल मे धार के, लंका किया मुकाम ॥

चौ — लका किया मुकाम, बहनोई को निज बात सुनाई ।
पड़ा कष्ट मुझ पर आकर, अब कीजे आप सहाई ॥
इतनी शक्ति कहा मुझ में, जो नृप से करु लडाई ।
उभय पक्ष की लक पतिने, शुभसम्मिति कराई ॥

दौड— पक्ष के हो आधीना, विवाह पुत्री का कीन्हा ।
किन्तु मन में दु ख पाया, और लाठी जिसकी भैंस
समझ अपना जामात बनाया ॥

दो — लकपति कहने लगा, सुन श्री कण्ठ सुजान ।
वास यहा पर ही करो, जाना ठीक "" जान ॥

चौ— जाना ठीक ना जान, वहां पर शत्रु रहते भारी ।
यह शतरज का खेल, चूक जाते है वड़े खिलाडी ॥
बच्चा तू नादान अभी कच्ची है उमर तुम्हारी ।
शत्रु नीति निपुण तेरी, मिलकर मन्त्र करें ख्वारी ॥

दौड— हृदय विश्वास ना धरना, ध्यान गौरव का करना ।
मुझे है प्रेम तुम्हारा, हितकारी शिक्षा उर धारो,
मानो वचन हमारा ॥

दो— वानर द्वीप सुहावना, योजनशत तीन प्रमाण ।
राज वहाँ का कीजिये वर्तावो निज आन ॥

चौपाई- भगिनी पति का कहना माना । किष्किन्धा शुभ नगर वसना ॥
निर्मल स्थान अति सुखदाई । महल कोट छवि वरनी ना जाई ॥
वाग वगीचे नदी तालाव । भ्रमण करे मन अति सुखपाव ॥
धर्म कर्म करते सुखपाते । सव के अधिपति अधिक सुहाते ॥
देव गुरू और धर्म सेप्यार । धार सिथ्यात्व निवार ॥

दो— वानर द्वीप वानर अति, देखे जव भूपाल ।
खुशी हुआ मारो मति, मत फैको कोई जाल ॥
अपनी जैसी जान है, सवके अन्दर जान ।
भोजन पान भण्डार से, देवो खुल्ला दान ॥

नां चां देवो खुल्लादान, सव जगह वानर चिन्ह कराये ।
इस कारण वहाँके वासीन्दे, वानर नाम कहाये ॥
थे नीति मे निपुण, और विद्याधर अधिक सुहाये ।
जगी चोला शूरवीर, कानो मे कुण्डल पाये ॥

दौड— नृप घर पद्मारानी, पुत्र हुआ अति सुखदानी ।
दान दु खियों को दीना, वज्र सुकण्ठ दिया नाम
रातदिन रहे सुखो मे लीना ॥

दो — सिंहासन पर एक दिन, वैठा भूपति आन ।
ऊपर को दृष्टि गई, देखा देव विमान ॥
अष्ट नदीश्वर द्वीपसुर, महिमा करने जाय ।
पीछे ही भूपालने, दिया विमान चलाय ॥

चौपाई- चलत चलत पर्वत पर आया । अटका विमान ना चले चलाया ॥
चारों ओर फिर ध्यान लगाया । साधु देख चरण न चित्त लाया ॥
समझा यह ससार असारा । वंध मोक्ष का हाल विचारा ॥
रजोहरण मुखपती धारी । पुनर्जन्म की गति निवारी ॥

दोहा— वज्र सुकण्ठादिक हुए, अनुक्रम से राजान ।
वीसवें जिनवर के समय, घन वाहन् वलवान ॥

चौपाई- वानर द्वीप घन वाहन नरेश । लका में हुवा तडित केश ॥
आपस में है प्रेम घनेरा । शत्रु कोई आवे नही नेरा ॥

दो नौ -लकपति गया भ्रमण को, निज नदन वनमांह ।
थी सग में महारानिया, खेले अति उत्साह ॥

चौ. नौ -खेलें अति उत्साह उधर एक, वानर चलकर आया ।
चपल जात चालाक, झपट कर महारानी पर आया ॥
सहमा झपट पछाड तुरत, हृदय पर हाथ चलाया ।
रानी या लिया कुच पकड़, नाखूनी घाव लगाया ॥

दौ.— घबरा रानी चिल्लाई, दौड दासी सब आई ।
मचा कोलाहल भारा, सुन राजाने भेद कपिके
बाण खैंचकर मारा ॥

दो.— कपि बाण खाकर भगा, गिरा मुनि के पास ।
शरण दिया नमोकार का, सधं हुआ सुरवास ॥

चौ. नौ.-उदधि कुमार हुआ देव, जिस समय अवधि ज्ञान में देखा ।
किस कारण हुआ देव आन के, चढी पुण्य की रेखा ॥
देखा पिछला हाल स्वर्ग के, छोडे सुख अनेका ।
उपकारी मुनि समझ आन कर, साधु सेवा विशेषा ॥

दौड— नृप के दिल रोष अपारा, मारो कपि हुकम करारा ।
देव दिल गुस्सा आया, बानर सेना विस्तार वैक्रिय
चारो ओर फैलाया ॥

दो — बानर सेना देखकर, घबराया गया भूपाल ।
शूर मंगा कर युद्ध किया, बानर दल विक्राल ॥

चौ. नौ -बानर दल विक्राल देख, राजा की सामर्थ्य हारी ।
मन में किया विचार, कपि दल ने सब फौज विदारी ॥
क्या आपत्ति बानर दल, चहुं ओर अति भयकारी ।
मारे मरते नही शस्त्र, आदि सब विद्या हारी ॥

दौड— देव कारण दिल धारा, भाव भक्ति सत्कारा ।
ओर करी नम्रता भारी, देव नरेन्द्र ने आकर मुनि
आगे अर्ज गुजारी ॥

चौपाई- कर वन्दना पूछे भूपाल । करुणा निधि कहो पूर्व हाल ॥
पूर्व कृत्य नृप वानर जो जो । ज्ञान वले मुनि भाषे सो सो ॥

दो — मत्रीश्वर का पुत्र तू, सावस्थी मझार ।
दत्त नाम तेरा हुवा, धर्मी चित्त उदार ॥

चौ नौ - धर्मी चित्त उदार, एकदा विरक्त हुवा भोगों से ॥
अनादि काल से पाया दुःख में, जन्म मरण रोगों से ।
श्री जिन धर्म अमूल्य मनुष्य तन, वचूं सभी धोखों से ।
दीक्षा लेकर हुए मुनि, सहे कटुक वचन लोगों से ॥

तोड़ — रहे सुमति ही ध्यान में, आ निकले तप मैदान में ।
जंग कर्मों से लाया, करते उग्र विहार चला चल नगर
वनारस आया ॥

दो.— देव कपि काशी हुवा, लुब्धक अति पापिष्ट ।
आ रस्ते मुनि वरहना, अधर्म लगता इष्ट ॥

चौ. नौ - अधर्म लगता इष्ट, समझ मुनि रोष नही कुछ कीना ।
समता दिल में धार, माहेन्द्रसुर पद मुनिवर लीना ॥
भोगे सुख अनेक स्वर्ग के, अमृत रस को पीना ।
जैन धर्म का यही सार रहे, दोनों लोक आधीना ॥

तोट— लुब्धक गया नरक में, आप सुख भोग स्वर्ग में ।
यहां पर हुवा नरेन्द्र, नरक गति के भोग अतुल दुःख
जन्मा आकर वंदर ॥

दो — वैर वधाने वास्ते, घाव लगाया आन ।
वदला लेने वास्ते, तू नें मारा बाण ॥

चौ. नौ.-तू ने मारा बाण मृत्युपा, देव हुवा वानर है ।
इस कारण संसार महादुःख, उथल पुथल का घर है ॥
कभी नरक तिर्यञ्च, चहु गति चौरासी चक्कर है ।
सम दम खम जिन धर्म बिना, खाता पिता टक्कर है ॥

दौड— सुना दुःख आवागमन का, वमन किया अनित्य चमन का।
ताज सुकेशी को दिया, संयमव्रत ले तडित केश ने
अक्षय मोक्ष सुख लिया ॥

चौपाई- वानर द्वीप घनोदधि राजा । संयम ले सारा निजकाजा ॥
किष्किन्धी किष्किन्धानायक । लंक सुकेशी अति सुखदायक ॥

दो — क्षीर नीर सम प्रेम है, दोनों का शुभ ध्यान ।
राज ऋद्धि सुख भोगते, मानों स्वर्ग समान ॥

चौ नौ- मानों स्वर्ग समान, किसी का भय न कोई दिल में है।
दिन दिन बढता प्रेम एकता हित, सब ही जन में है ॥
भय खाते है आस पास वाले, राजे जितने है ।
चहुं ओर रहा तेज फैल, जैसे सूर्य किरणे है ॥

दौड— किन्तु नित्य तेज एकसा, रहा नही किसी नरेश का।
जो होनहार की मर्जी, जीर्ण वस्त्र फटे तो फिरक्या
करे विचारा दर्जी ॥

॥ इति प्रथमाधिकारः ॥

दो.— पुष्पोत्तर नृप के हुवे, कुल में भूप अनेक ।
यहा सुकेशी के समय, नृप था अश्वनी वेग ॥

चौ नौ -राजा अश्वनी वेग सुरथनु, पुरी राजधानी थी ।
पुण्य सितारा लगा चमकने, शिक्षा सुखदानी थी ॥

तलवार इन्हों की आसपास के, राजो ने मानी थी।
मध्य खण्ड के उत्तर में, शुभ दिशा भी सुखदानी थी ॥

दौड़— शुभमति चम्पारानी, शर्म खाती इन्द्रानी।
पुण्य कुछ चढा निराला, थे विद्याधर इस कारण
दवते थे सव भूपाला ॥

चौपाई- पुत्रदोय महा वलवान् । सोहे नृप फल वृक्ष समान ॥
साम दाम आदिक के ज्ञाता। पूर्ण कृत्य कर्म सुखदाता ॥
विजय सिंह और विद्युत्वेग। दोय भुजा राजा की यह ॥
अन्य नगर आदित्य पुर नाम। मन्दिर माली नृप गिरिधाम ॥
तिसके सुता वनमाला नाम। चौंसठ कला सुगुण अभिगाम ॥

दो. नौ.-स्वयम्वर एक मण्डपरचा, मन्दिर माली भूप।
सुता विवाहने के लिये, रचना करी अनूप ॥

चौ नौ -लिये भूप वुलवाय उपस्थित, हुवे स्वयम्वर घर में।
भूषित हो वनमाला आई, वर माला ले कर में ॥
दासी चेटी सग महेली, शोभा लाल अधर में।
देख रूप विस्मित सव ही, जैसे दामिनी अम्बर में ॥

दौ.— अतिक्रम सव का करके, चित्त किष्किन्धा धर के।
गलेवर माला डारी, तव विजय सिंहने क्रोधातुर हो
म्यान से तेग निकाली ॥

दो — दगे वाज कुल में हुवा, दगे वाज ही माय।
शक्ति ना अव तेरी चले, देख हमारे माय ॥

चौ नौ -देख हमारे हाथ यदि तू, शूर वीर योधा है।
वदला सव लेने का मुझ को, मिला आन मौका है ॥

पहूँचा दूँगा परभव को, क्या इधर उधर जोता है ।
यह वर माला रखो यहा, कहूं साफ नही धोखा है ॥

दौड— चूक लड़की ने खाई, चोर गले माला पाई ।
न्याय तलवार करेगी, शक्ति ही दुनिया मे वर माला को आज वरेगी ॥

दोहा— एकत्रित हो सभी ने, किष्किन्धी लिया घेर ।
गर्ज तर्ज हो सामने, बोला ऐसे शेर ॥

दो. नौ.–हां मुझको भी आगई, बात पुरानी याद ।
बनतेही आये सदा, आप के हम दामाद ॥

चौ.— दामाद हमेशा आपके, सब हम बनते ही आये हैं ।
खैंच खड्ग अब तक तुमने, गीदड ही धमकाऐं है ॥
शस्त्र दिखाते जामतों को जरा ना शर्माये है ।
सहर्ष करेगें स्वागत रण का, क्षत्री के जाये है ॥

दौड— जान की साथ न माला, मै हूं इसका रखवाला ।
सन्मुख क्यों नही आता, पीठ दिखा या रण से कायर खाली गालबजाता ॥

दो— बात बात में बढ़ गई, आपस में तकरार ।
रण भूमि में उस समय, बजन लगी तलवार ॥

दोहा— (किष्किन्धी का) मैढक सा क्या उछलता, मारुं उदर में लात ।
पूछ बडों को जाय के, हम तुमरे जामात ॥

दो— मित्र घेरा देखकर, लंकपति भूपाल ।
जंगी वस्त्र पहिन कर, नैत्र कीने लाल ॥

चौ. नौ.–नैत्र करके लाल भूपने, फौजी बिगुल बजाई ।
वन माला सी उस समय, झट किष्किन्धा पहुंचाई ॥
लगा घोर संग्राम होन अति, शूरवीर बलदाई ।
नभ में लड़े विमान महा, घनघोर घटा सब छाई ॥

दौड़— लडे दिल खुशी अपारा, शूरमा योधा भारा ।
किष्किन्धी नृप के भाई, क्रोधातुर हो विजय सिंह के
हृदय साग चलाई ॥

दो.— विजय सिंह धरती गिरा, देखा तुरत नरेश ।
दृग् मसाल तुल्या करे, दिल में रोष विशेष ॥

चौ नौ अश्वनी वेग ने क्रोधातुर हो, बाण खेंचकर मारा ।
लगा उरस्थल अन्धक के, परभव को किया किनारा ॥
आकाश धरन पर चले, सरासर मानो रक्त फुवारा ।
अग्नि बाण और नाग फास तम, धुन्द बाण विस्तारा ॥

दौड़— दोनों ओर शूरमे, हुए खाक धूल मे ।
लंक किष्किन्धाराई, पराजय होकर दौड भाग दोनों
ने जान बचाई ॥

दोहा— अश्वनी वेग ने अरिपर, दल बल दिया चढाय ।
किष्किन्धा और लंक पर, लिया अधिकार जमाय ॥

चौपाई– निरघा तज योधा बुलवाया । राजस्थान पर उसे बैठाया ॥
देश नगर पुरपाटन सारे । यथायोग्य दिये प्रेम अपारे ॥
लंका किष्किन्धा पतिराई । लंका पाताल स्थिति बनाई ॥
यही विचारा समय बितावें । प्राप्त अवसर बदला पावें ॥

दोहा – अश्वनी वेग सहसार को, दिया राज्य का ताज ।
दुनिया से दिल विरक्त कर, साधा आत्म काज ॥

❀ पाताल लंक वर्णन ❀

दोहा— सुकेशी नृप के शिरोमणि, इन्दु मालिनी प्रवीण ।
मालो सुमाली मालवान, पुत्र जाये तीन ॥

दो— किष्किन्धा नृप दुसरा, श्री माला शुभ नार ।
ऋक्षरज आदित्यरज, पुत्र दो सुखकार ॥

चौ नौ.-पुत्र दो सुखकार मधु पर्वत पर बास बसाया ।
किष्किन्धा नाम दिया जिसका, नीति से राज चलाया ॥
शक्ति का अवलोकन कर, जंगी सामान वनाया ।
बहत्र कला के जानकार, दो पुत्र भूप हर्षाया ॥

दौड— उधर सहसार नृप भारी, चित्त सुन्दरी पटनारी ।
अनुपम सुत जाया है, इंद्र दिया तसु नाम तेज इन्द्र वत् कह लाया है ॥

दो.— सुकेशी के सुतों के दिल में रोष अपार ।
राज लिये बिन आपना, जीना है धिक्कार ॥

चौ.— जीना है धिक्कार जिन्हों का, राज करे शत्रु होते ।
कोई मनुष्य नही वह है, मृतक जो देखा दिल में रोते ॥
मानिद स्वान के रोना है, जो डण्डे खा छिप जासोते ।
पर शूर वीर रण क्षेत्रों में, अपनी यह जान सफल खोते ॥

दौड— सहसा करी चढाई, अति उत्साह मन मांही ।
निरधा तज नृप घबराया, पराजय करके भगा दिया अपना अधिकार जमाया ॥

दो.— माली लंका अधिपति, किष्किन्धा सुर राज ।
बदला लेकर खुश हुए, धराशीश पर ताज ॥

चौ नौ-अगशीश पर ताज खबर यह, इन्द्र भूप सुन पाई ।
दलबल सबल विमान, सजाकर जगी बिगुल बजाई ॥
घेर लाया चहु ओर से, मेघ घटा सम छाई ।
वैश्रवण को दिया ताज, माली की करी सफाई ॥

दौड़— प्रसन्न मन में अति भाग, आज शत्रु को भाग ।
राज लिया अपना सारा, पाताल लंका मे उधर सुमाली
के मन में दुःख भारा ॥

चौपाई—भूप सुमाली पाले लंका । रत्न श्रवायोधा सुतबंका ॥
साधे विद्यावन खण्ड जाई । शक्ति हो फिर कर चढ़ाई ॥

दो— जय विद्या साधन लिये, पुष्पोद्याने जाय ।
लगे वहा पर साधने, निश्चल ध्यान लगाय ॥

चौ नौ-निश्चल ध्यान लगाय उधर हुवा, हेतु अद्भुत भारी ।
कौतुक मंगलव्योम विन्दु, नृप जिस के दो सुकुमारी ॥
कौशिका विवाही वैश्रवा, को पूर्व जात दुलारी ।
ककसी पुत्रावर अपना, तब ज्योतिषी वहे उचारी ॥

दौड़— महाकुसुमोद्यान में, कुमर एक बैठा ध्यान में ।
पति होगा वह तेरा, यदि लगाई देर फेर मे
फेर दोष नही मेरा ॥

दोहा— इतना सुन केकसी ने, कहा मात को आन ।
नमस्कार आज्ञा लई पहुंची बैठ विमान ॥
इधर उधर को भ्रमण कर, देखा एक स्थान ।
नल कुबेर सम सरसा, बैठा लाकर ध्यान ॥
जो पुरुष रूप तनपो देखा, तो [illegible] सार नहीं ।
देख [illegible] मन [illegible] [illegible] [illegible] नहीं ॥

क्या सांचेमें ढला जिसम, इन्द्र भी देख शर्माता है।
तब ही यह जन्म सुफल जानूं, हो इससे मेरा नाता है॥

दो— निश्चय मेरा पुण्य भी, है वृद्धि की ओर।
रूप रंग शुभ वर्णने, लिया चित्त मम चोर॥

चौ नौ-है आशा मुझको आज, मनोरथ मनचिन्ते पाऊँगी।
बिना किये अब बात, यहाँ से मैं ना कभी जाऊँगी॥
निकल गया यदि तीर हाथसे, पीछे पछताऊँगी।
राजी से नाराजीसे, स्वीकार मैं करवाऊँगी॥

दो-— समाधी जब खोलेगें, तभी मुख से बोलेगें।
चाहे जितनी हो देरी, अब तो दिल मे ठान लई
बस बनूं चरण की चेरी॥

दो-— विद्या सिद्ध जब हुई, मानव सुन्दरी आन।
राज कुमार प्रसन्नचित, खोला अपना ध्यान॥

चौ नौ. खोला अपना ध्यान, सामने बैठी राज दुलारी।
अभ्दुत भोलापन मुखपर है, नल कुबेर बलिहारी॥
चंद्रवदन वरगोल शुल्क, चौदस कीसी उजियारी।
सदाचार की रेखा भी, मस्तक पर पडी निराली॥

दौड— अंक मे नही कसर है, लाल मुख विम्ब अधर है।
ढलासाचे मे तन है, मीच खोल आँख कुमरने सोचा
'मन ही मन है॥

दोहा— क्या देवी ने आन के, धारा दर्शक रूप।
या कोइ नृप कन्यका, अद्‌भूत रूप अनूप॥

क्या सांचेमें ढला जिसम, इन्द्र भी देख शर्माता है।
तब ही यह जन्म सुफल जानू, हो इससे मेरा नाता है ॥

दो— निश्चय मेरा पुण्य भी, है वृद्धि की ओर।
रूप रग शुभ वर्णने, लिया चित्त मम चोर ॥

चौ नौ-है आशा मुझको आज, मनोरथ मनचिन्ते पाऊंगी।
विना किये अब बात, यहाँ से मैं ना कभी जाऊँगी ॥
निकल गया यदि तीर हाथसे, पीछे पछताऊँगी।
राजी से नाराजीसे, स्वीकार मैं करवाऊँगी ॥

दो-— समाधी जब खोलेगें, तभी मुख से वोलेगें।
चाहे जितनी हो देरी, अब तो दिल मे ठान लई
बस बनूं चरण की चेरी ॥

दो-— विद्या सिद्ध जब हुई, मानव सुन्दरी आन।
राज कुमार प्रसन्नचित, खोला अपना ध्यान ॥

चौ. नौ. खोला अपना ध्यान, सामने बैठी राज दुलारी।
अभ्दुत भोलापन मुखपर है, नल कुबेर बलिहारी ॥
चंद्रवदन वरगोल शुल्क, चौदस कीसी उजियारी।
सदाचार की रेखा भी, मस्तक पर पडी निराली ॥

दौड— अंक में नही कसर है, लाल मुख बिम्ब अधर है।
ढलासांचे में तन है, मीच खोल आँख कुमरने सोचा
'मन ही मन है ॥

दोहा— क्या देवी ने आन के, धारा दर्शक रूप।
या कोइ नृप कन्यका, अद्भूत रूप अनूप ॥

क्या मेरी परीक्षा लेने, कोई देवी सन्मुख आई है ।
या कोई राज कुमारी जिसने, मुझपर नजर टिकाई है ॥
या शरण वश वनमें आकर, दुखिया कोई शरणा चाहती है ।
क्योंकि यह अवला इस उद्यानमें, साथ रहित दिखलाती है ॥
कर्त्तव्य यही मेरा पहिला, इससे कुछ हाल मालूम करुं ।
यदि निराधार दुखिया कोई. तो सुख इसके अनुकूल करु ॥
परीक्षा का कुछ कारण है तो भी मुझको कुछ फिकर नही ।
क्योंकि अनुकूल है मन मेरा, प्रतिकूल का कोई जिकर नही ॥
यदि है चोला पराधीनता, आपत्ती कुछ आवेगी ।
पर यहा से तो अब चलना है, होगी सो देखी जावेगी ॥

दोहा — शुभ दृष्टि से जिस समय, देखा अवला ओर ।
कैकसी अति खुश हुई, देख मेघ जिम मोर ॥

दो — कैसे यहा पर आगमन, कौन कहा पर धाम ।
रूपराशि गुण आगरी, क्या है तेरा नाम ॥

चौ नो-क्या है तेरा नाम भूप, किसकी हो राज दुलारी ।
कारण क्या वनमें आनेका, कहो सत्य सुकुमारी ॥
साथ रहित है आप, या कोई आते और पिछाडी ।
सेवा हो मेरे लायक कुछ, सो भी कहो उचारी ॥

कैकसी दोहा.-सिद्ध सभी मेरा हुवा, आई थी जिस काम ।
कृपा और इतनी करें, बता दीजिये नाम ॥

दो — रत्नस्रवा मम नाम है, पिता सुमाली भूप ।
विद्या साधन के लिये, सही वनों की धूप ॥

चौ. नौ-सही बनों की धूप, कार्य सिद्ध हुआ मम सारा ।
चलने को तैयार शेष, यहां काम ना और हमारा ॥
जल्द उच्चारण करो मेरे, लायक हो काम तुम्हारा ।
आती नजर कुमारी हो, ऐसा अनुमान हमारा ॥

दौड— काम मेरे लायक हो, आपको सुख दायक हो ।
किन्तु अनुचित ना कहना, एकान्त अन्य सुकुमारी के
संग कर्म ना मेरा रहना ॥

दोहा— अन्य नही समझे मुझे, तुम निश्चय ममकंत ।
चरण चचरी वन चुकी, हूं आयु प्रर्यन्त ॥
मंगल पुरवर नगर व्योम, विन्दु की राज दुलारी हूँ ।
मैं आशा एक आपकी पर ही, अब तक रही कुवारी हूँ ॥
वडी कौशिका बहन मेरी, वैश्रमण भूपको व्याही है ।
और नाम कैकसी मैंने, तुम चरणों की सेवा चाही है ॥

दो— हाथ जोडकर यह वेनती, हो जावे स्वीकार ।
आशा मम दिल को वधे, आपका हो उपकार ॥

चौ. नौ.-आपका हो उपकार चाह है, वागदान पाने की ।
इच्छामेरी प्रवल, आपके चरणों में आने की ॥
अर्धाङ्गिनी लो वना मुझे, वस और ना कुछ चाहने की ।
कर वाये विन स्वीकार वेनती, मै न कही जाने की ॥

कैकसी गाना नं. ८

सेवा करने की मुझे, आज्ञा तो सुना देना ।
वचन देकर के मेरी, आशाको वंधा देना ॥ स्थायी
रुगण वन करके मैं, आई हूँ द्वारे तेरे ।
करे जो कष्ट निवारण, वही दवा देना ॥

आशा करके आई हूँ, मैं शरण लेने ।
निराश करके मेरी, आश ना गवा देना ॥
ताज इस जन्म का, निश्चय माना तुमको ।
यह जो उत्साह मेरा, इसको ना मिटा देना ॥
उत्कण्ठा है मुझे आशा जनक शब्दों की ।
नाव मझधार पड़ी, पारतो लघा देना ॥
आयु पर्यन्त नहीं, आप विना लक्ष्य कोई ।
शुक्ल है ध्यान मेरा, धर्म तुम बचा देना ॥

दोहा — सुन सुकुमारीके वचन, सोचरहा सुकुमार ।
मन ही मनमें मौन हो, करने लगा विचार ॥
क्या इसको कुछ हो रहा, जाति स्मरण ज्ञान ।
या यह रागान्धी हुई, बनी फिरे दुर्ध्यान ॥
कुछ भी हो किन्तु इसका, रंग रूप ही अति निराला है ।
अवकाश समय सुकर्म, कारीगरने साचेमें ढ़ाला है ॥
और मात पिताने भी इस को क्या लाड प्यार से पाला है ।
वर्तमान में आज अद्वितीय स्त्री रत्न निराला है ॥

रत्नस्त्रवा बहिर शिकस्त गाना न ७

यात्रा करके भारत की मैंने, चाहे कामिन हजार देखी ।
तो गौरव व चातुर्य रूप लावण्य, इसकी शोभा अपार देखी ॥
भ्रमर से वालों की गथी चोटी, गजब की पटियें झुका रही हैं ।
हेमतारों से गूथी मोतीन से माग, दिन्त को चुरा रही हैं ॥
हस्तरेखाक्या अगूली सूक्ष्म है, सो मन लक्षण स्वभावे तनपर ।
गजब का गोहर करे है जौहर है राजशान्तिका इसके मनपर ॥

मत्स्योदरी बिम्ब अधरी, शशीके सदृश गोल बदना ।
चम्पक डालीसी देख बाहों को, शम खाती है देव अगना ॥
है मुख पे लाली दमक निराली, जुलफ नागिनसी कालोकाली ।
निडाल बिजली सी चमक आगे, फीकी लगती है सब उजाली ॥
कटीले नेत्रों के तेज वेशक, हिरण के चित्तमे खटकते होगें ।
इस पुण्य तन को देख देख कई, अपने सिर को पटकते होगें ॥

शेर— पुण्य इसने पूर्वभव मे, है अतुल कोई किया ।
जन्म इसमें आनकर शोभन यह फल इसने लिया ॥
अनेकों दर्शक इसकी, चाहना में भटकते है ।
समय पूर्व ही मार्ग मे हुए, बेवल शटकते है ॥

मिलान–जैसी पद्मा ये वैसी हमने, ना घर किसी के है नार देखी ।
तो शान शोकत व रूप, लावण्य में इसकी शोभा अपार देखी ॥

दोहा— अब उत्तर दू मैं इसे, हां ना में से कौन ।
या कुछ और विचार लू, जरा धार कर मौन ॥
वड़ी कौशिका बहिन इसीकी, वैस्रवा को विवाही है ।
यह शत्रु परम हमारे की, जो साली यहा पर आई है ॥
विद्या सिद्धि बाद मुख्य, आई लक्ष्मी कैसे छोडें ।
कोई विघ्न ना डाल देवे शत्रु, सहसा नाता कैसे जोडें ॥
समय सोचकर बात करो, बुद्धिमानो का कहना है ।
यदि हुई देर तो भेद समझ, शत्रु ने कब यह है सहना है ॥
व्योम बिन्दु पर भी निश्चय, प्रभाव उन्ही का होना है ।
इस लिये करेंगे धूम धाम, तो मानो सर्वस्व खोना है ॥
है निश्चय प्रेम कैकसी का, मम साथ कभी ना छोडेगी ।
यदि माता पिता ना माने तो, उनका कहना भी मोडेगी ॥

पर प्रस्थान मित्रता के नृप से, शत्रु का नाता करना है।
जो होना चाहिये रस ही नहीं, तो फिर क्या साथ पकडना है॥
दो दिन में ही सहमत होकर, यदि सब ही कार्य कर लेवें।
तो निश्चय इष्ट हमें होगा, नहीं क्यों आपत्ति सिर लेवें॥
अनुराग इपे यदि पूरा है, तो फिर देरी का काम नहीं।
नहीं पता सभी लग जावेगा कि, प्रेम का नाम निशान नहीं॥

दोहा— क्या कह दूं मैं अब तुम्हें, अपने मुख से भाप।
हा मुश्किल यदि ना कहूं, तो होगें आप उदास॥
किन्तु जो भी कुछ कहना है, सो तो कुछ कह ही देते है।
और शक्ति के अनुसार बात, स्वीकार भी हम कर लेते है॥
यह सर्व कार्य करने में, केवल दो दिन स्वतत्र हूँ।
घर गया तो मातपिता जाने, क्योंकि मैं फिर परतत्र हूँ॥
वचन बद्ध हो चुका मुझे, जल्दी उत्तर मिलना चाहिये।
क्योंकि अब मैंने जाना है, और आप भी निज मार्ग जाईये॥

दोहा - प्रथम कहा जो आपने, हमें वही स्वीकार।
मीनमेख आदि कोई, होगा नहीं विचार॥
पहिर एक बस और आपको, यहा बैठ रहना चाहिये।
अरु लिये हमारे अनुग्रह कर, यह कष्ट उठा लेना चाहिये॥
आज्ञा मुझको देवें अब, कार्य सफल बनाने की।
सब मात पिता से कहूं बात व्यवहारिक ढंगरचाने की॥

दोहा— आज्ञा ले केकसी गई, मात पिता के पास।
जो जो इसको इष्ट था, कहा सभी कुछ भाप॥
कुछ पूर्व ले सयोग, ज्योतिषी ने कुछ दृढबनाया था।
कुछ केकसी से अनुराग मात क्या व्योम बिन्दु हर्षाया था॥

उसी समय सहर्ष कुमर को, राज महल ले आये हैं।
और अति उत्सव से उसी रात को, पाणि ग्रहण कराए है ॥
दिल खोल के राज कुमारी का, अति धूम धाम से विवाह किया।
अपना जामात बना करके, फिर यथा योग्य धनमाल दिया ॥
कुसुमोत्तर नगर बसा के नया, अब खुशी से वहापर रहने लगे।
पुण्य रति अब चढती है, अपने मुख से यों कहने लगे ॥

दोहा — एक समय महाराणीजी, पहिन गले फूलमाल ।
दृश्य देखती स्वपन में, सुन लो उसका हाल ॥

प्रबल सिह नभ से उतरा, गज कुम्भस्थल को दलता हुवा।
अद्भूत लहरे चिंहाड शब्द, प्रवेश मेरे मुख करता हुवा ॥
जब खुली आंख महारानी की, स्वपने पर ध्यान जमाया है।
करके निश्चय महाराज पे, आकर सब हाल बतलाया है ॥

दोहा— हाल स्वपन का नृप कहे, सुनरानी मम बात ।
पुत्र जन्मेगा तेरे, कटें सभी सन्ताप ॥
स्वप्न अर्थ धारण किया, रानी चतुर सुजान ।
शत्रु के सिर पग धरू, गर्भ प्रभावे ध्यान ॥
तलवार काढ देखे मुख को, अंग तोड़ मरोड़ दिखाती है।
सम्पूर्ण शत्रु नाश करूं, कभी ऐसा शब्द सुनाती है ॥
कभी ऐसा दिल में चाहती है, इन्द्र भूप का ताज हरु।
तीन खण्ड मे आन मनाकर, अखिल भूमिका राज करूँ ॥

दोहा — पुत्र जब पैदा हुआ, वरती खुशी अपार ।
नाच रंग शोभा अधिक, खुले दान भंडार ॥
गिरि वेल मानीन्द पुत्र निर्भय, नित्य वृद्धि पाता है।
सर्व सुलच्चण देखदेख कर, जन समूह हर्षाता है ॥

पूर्व देव भूपेन्द्रने था, नौ माणिक्य का हार दिया ।
वह हार उठाकर राजकुमारने, अपने गले में डाल लिया ॥

दोहा— देख तमाशा पुत्र का, रानी खुशी अपार ।
पकड भूप पर ले गई, दिखलाने को हार ॥
स्वामी आभूषण गृह, खोला था इस वार ।
स्वयम कुमरने हार यह, लिया गले में डार ॥

है देवाधिष्ठित हार आज तक, किसे नही पहिना गले में ।
अविनय इसकी करने पर भी, भयखाते थे सब मनमें ॥
मानिन्द पूजन के रक्खा था, यह पहिन खेल रहा लीलामें ।
और नौ प्रति विम्ब पडे ऐसे, जैसे की दमक अरीसामें ॥

दोहा— छवि देख कर पुत्र की, मन में खुशी विशेष ।
दान पुण्य उत्सव करो, यह मेरा उपदेश ॥
इधर कान लगा करके, अब सुन ले वात कहूँ रानी ।
सुमाली गया था दर्शनार्थ. मुनिज्ञानवन्त भाषीवाणी ॥
यह नौ माणिक्य का हार खुशी से, स्वयम् जो वालक पहिनेगा ।
शत्रु होवें आधीन सभी, और तीन खण्ड मे फैलेगा ॥

दोहा— नवप्रति विम्ब नौ माणिक्य, दशमा सहज सुभाय ।
पिता नाम दश मुख दिया दशकन्धर कहलाय ॥
अब के रानी स्वपन में, देखा देव विमान ।
सुत जाया तेजेश्वरी, भानु कर्ण तसु नाम ॥
अपर नाम था कुम्भ करण, दिन दिन प्रति कला सवाई है ।
अब वार तीसरा पुत्री का, जो शूर्पनखा कहलाई है ॥
शुकल जग देखें आगे, यह कैसा रग खिलायेगी ।
ससुर गृह और पितु कुल, इन दोनों का नाश करायेगी ॥

दोहा— देखा चौथे स्वपन में, सौलह कला निधान ।
ज्योतिषियों का शिरोमणि, ऐसा चन्द्र विमान ॥
जब पैदा हुवा तब देख सुलक्षण, कह राजा सुनले रानी ।
शुभ नाम विभीषण देते हैं, सत्यवादी है उत्तम प्राणी ॥
यह ऐसा सरल स्वभावी है, हित सर्व मात्र का चाहेगा ।
निज पर की गणना नही इसके, और सत्य पक्ष चित्त लायेगा ॥

दोहा— एक समय दशकन्धर की, दृष्टि गगन में जात ।
आता देख विमान एक, लगा पूछने बात ॥
वृतान्त कहो उसका माता, जो आज सामने आता है ।
मेरे पास कोई चीज नही क्यों, इतनी चमक दिखाता है ॥
और मेरे मन में आता है, विमान तोड चकचूर करूं ।
निज वक्षस्थल के तले दबा, उसका धड़ से सिर दूर करूँ ॥

दोहा— एसादिक सुनकर वचन, रानी दिल हर्षाय ।
पर मारन की बात कर, हृदय गया मुर्झाय ॥
झट नैनों में जल भर लाई, गद गद स्वर से बतलाने लगी ।
सुन भगिनी पति वैश्रवण भूप, दशकंधर को समझाने लगी ।
यह स्वाधीन है इन्द्र के, और पुण्य अतिशय छाया है ॥
तुम पितामह को मार लंक पुरी, राजा इसे बनाया है ॥

दोहा— देखूंगी जब अरि को, तुम कारागार माह ।
तब ही आतम प्रसन्न मम, इस दुनिया के माह ॥
कुसुम व्योमवत् सब आशायें, हृदय मेरा जलाती है ।
जैसे बागड की प्रजाएं, सब घटा देख रह जाती है ॥
क्योंकि शत्रुशक्ति शाला, और पीठ भी जिसकी भारी ।
जो तुमने पूछी बात मेरे हृदय में लगी कटारी है ॥

दोहा— माता की जब यह सुनी, हृदय विदारक बात ।
जननी के यह भाव सब, समझे तीनों भ्रात ॥
तीनों राजकुमार परस्पर, ऐसे जोश दिखाते है ।
और उछल गर्ज करके सब ही, माता की धीर बन्धाते है ॥
होनहार बालक अपने, भावी कर्त्तव्य बताने लगे ।
क्षत्राणी का दूध पिया था, उसका असर दिखाने लगे ॥

दोहा नं०-विभीषण कहे मातजी, है क्षत्री के पूत ।
आशा तब पूर्ण करें, तोही जान सपूत ॥

चौ नं०-तोही जान सपूत भ्रात दशकन्धर योधा भारा ।
प्रगट होत ही भानु के तारा गण करें किनारा ॥
और साथ में कुम्भकर्ण है, वीर महा बलधारा ।
अष्टापद को देख केशरी, झट ही करे किनारा ॥

दौड — मात मैं पुत्र तुम्हारा, जन्म इस कुल मे धारा ।
गर्ज मैं जब लाऊँगा, मानिन्द बिजली के कडक
पडूं कुम्भस्थल दल जाऊंगा ॥

दोहा— दशकन्धर कहने लगा, दे माता आदेश ।
विद्या आवें साधके, शक्ति बढे विशेष ॥

आज्ञा ले निजमात की, पहुंचे वनमंझार ।
शुद्ध तन मन कर साधली, विद्या एक हजार ॥
भानु कर्णने पांच लई, और चार विभीषणपाई है ।
षष्ठोपवास कर शस्त्र साधा, चंद्र हास वरदाई है ॥
क्षेम कुशल से घर आये, सब दिन दिन कला सवाई है ।
एक शेर दूजे काठी अब, देख मात हुलसाई है ॥

दोहा— विद्या साधन की विधि, ग्रन्थों से पहिचान ।
कथन यहां पर ना किया, समझो चतुर सुजान ॥
गिरि वैताड दक्षिण श्रेणी, सुरसगीत पुर जान ।
मय नरेश के तुमती, रानी कला निधान ॥
मंदोदरी कन्या थी जिस के, जैसे नल कुबेर कुमरी ।
रत्न स्रवा दशकंधर सुत से, नृप ने उसकी शादी करी ॥
अब लगा पुण्य भी बढने को, कोयल सम मीठी वाणी है ।
शक्रेंद्र के घर इन्द्राणी ऐसे मंदोदरी रानी है ॥

दोहा — एक दिवस गये भ्रमण को, दम्पति बैठ विमान ।
फिरती राज कुमारियां, एक बाग में आन ॥
जब पडी नजर दशकन्धर की, विमान उधर को झोंकदिया ।
फिर उतर पास दो नैन मिला, कर प्रेम भाव सब पूछ लिया ॥
गिरि मेघरथ भूपालों की, पुत्री सभी कहाती थी ।
और भ्रमण करनको सभी सहेली, इसी बागमें आतीथी ॥

दोहा.— काम वाण जब लगत है, सुध बुध दे विसराय ।
इज्जत डाले धूलमें, यह है वाम स्वभाव ॥
यह मात पिता का सभी प्रेम, शीशकी लीक बनाडारे ।
और शर्म धर्म को फैंक कूपमें, चित्त आवे सो कर डारे ॥

आपस मे सहमत होकर, सबने वहा गन्धर्व विवाह किया।
फिर बैठ विमान मे जल्दी से, विमान का चक्कर घुमादिया॥

दोहा.—पद्मावती के पिता को, लगी खबर जब जाय।
क्रोधातुर राजा हुवा, दल बल दिया चढाय॥
यह दृश्य भयानक देख महा, पद्मावती दिलमे घबराई।
तब रत्नस्रवा सुतने सन्मुख, हो अपनी शक्ति बतलाई॥
बिगुल बजा जब सग्रामी, तब शूर वीर ने गर्ज किया।
शत्रु के दलमे भगी पडी, नृप नाग फांसमे जकड़ लिया॥

दोहा— पद्मावती के कथन से, सुर सुन्दर दिया छोड़।
आपस में शुभ मेल कर, लिया सम्बध सब जोड॥
महोदय नृप था कुभ पुराधिप, रानी शुभ नैनावरणी।
थी विधुत् माला पुत्री, जो कुम्भ करण को है परणी॥
ज्योतिपुर पति वीर नरेश्वर, नन्दवती की जाइ जो।
पकजश्री कमलवर नयनी, विभीषण को व्याही वो॥

दोहा— मदोदरी के सुत हुवा, महावली सुख धाम।
लक्षण व्यंजन देख, शुभ इन्द्रजीत दिया नाम॥
मेघवर्ण सम नयन हैं, दूजा सुत अभिराम।
मेघ वाहन चारु कुमर, मातपिता दिया नाम॥
जब देखा शक्ति पूर्ण है तब छेडछाड करवाने लगे।
श्री कुम्भ करण और भ्रात विभीषण, लूट लक में पाने लगे॥
फिर वैश्रमण ने भेजा दूत, सुमाली के समझाने को।
जो चाहिये मुझ से मांग लेवो, यदि नही तुम्हारे खाने को॥

दोहा— राजदूत ने जा कहा, नमस्कार महाराज।
अब आज्ञा उनकी सुनो, जो मेरे सिर ताज॥

महाराजाने फरमाया है, यह् क्षत्री कुल का धर्म नही ।
जो लूट मार कर ले जाना, क्या आती तुमको शर्म नही ॥
जिस जिस वस्तु की चाहना है, ले जावों यहा कुछ कमी नही ।
कल्यास आपका तभी तलक, जब तक रण भूमि जमी नही ॥

दोहा— सुनी दूत की जिम्म समय रसना कटुक गमीर ।
अर्धचंद्र धक्का दिया, दश कंधर वलवीर ॥
जा कायर धनदत्त को कह दे किसको तलवार दिखाता है ।
अब सावधान हो जल्दी से दशकंधर लका आता है ॥
रण भेरी जिस समय बजी, सब शूर वीर हर्षाये है ।
झट उसी समय जा लका पै, अपने विमान अडाए है ॥

दोहा— रण में जुट गये शूरमा पडी लंक मे त्रास ।
हाहा कार करने लगे, तज जीने की आस ॥
पैदल से पैदल लडते हैं, दारु गोलो का पार नही ।
कही रक्त फुवारे चले सरासरे, दल बल का शुम्मार नही ॥
शक्ति देख दशकंधर की, शस्त्र योधोंने डाल दिये ।
जीत लंक स्वाधीन करी, सब मात मनोरथ सार दिये ॥

चौपाई- चर्म शरीरी धनदत्तराया। सम्यक् चारित्र चित्त लाया ॥
शत्रु मित्र पर समपरिणाम । तप जप कर पाया सुखधाम ॥

दोहा— दशकंधर लका लई पुष्पक लिया विमान ।
मात मनोरथ सिद्ध किया, पुरुषां यह प्रमाण ॥
भुवनालंकृत गज मिला, नग बेताड के मूल ।
यह भी होता रत्न इक मन इच्छा अनुकूल ॥
अब सुनो जिकर किष्किन्धा का, जहांपर हो रही लडाई है ।
सूर्यरज और ऋच्छ सुरज, किष्किन्धी त बलदाई है ॥

यम राज उधरथा महाबली, जहां युद्ध अति घनघोर हुवा ।
सूर्य ऋक्ष को यमराजाने, कारागार में ठोंस दिया ॥

दोहा— लिये सहायता के तुरत, खेचर बेठ विमान ।
रावण से आकर कहा, पहिले कर प्रणाम ॥
महाराज तुम्हारे होते हुए, किष्किन्धी नृप सुत कैद पडे ।
अब आप सहाय करो जल्दी, मैदान में शूरे अडे खडे ॥
प्रेम बडो में ऐसा था, वह इनका हुकम बजाते थे ।
और यह भी उनके किये, कष्ट मे अपना खून बहाते थे ॥

दोहा— सुनते ही दशकंधरने, दी सेना पहुचाय ।
फिर ललकारे आप जा, छक्के दिये छुडाय ॥
जब सुनी बात दशकधर है, तो रग सभी के बिगड गये ।
लगे भागने जान बचा कर, योधे रण में बिछड गये ॥
यह दृश्य देख यम घबराया, बस अत पीठ दिखलाई है ॥
सूर्य रक्ष के बन्ध छुडा, रावण ने प्रीति बढाई है ।

दोहा— इन्द्र को झट दी खबर, विद्याधरने आन ।
किष्किन्धा लका लई, दशकधर ने आन ॥
रूप अति विकराल बना, मानो आपत्ति आई है ।
अनुमान नजर यह आते है, कि सब की आज सफाई है ॥
पराजय हो यम भी आ पहुचा, जो जो बीत बतलाया है ।
सब इंद्र भूप को सुनते ही, झट क्रोध बदन में छाया है ।

दोहा— सुनते ही सब वार्ता, लगी हृदय में आग ।
कोप गर्ज ऐसे करे, जैसे जेहरी नाग ॥
दोड दिये दो लोकपाल, मम इन्द्रपन में कसर पडी ।
जा पीलूं शक्ति रावण की, जैसे घानी अन्दर ककडी ॥

जब देखा तेज मंत्रियों ने, सब इन्द्रको समझाने लगे।
कुछ सोच समझकर काम करो, सब द्रव्य काल बतलाने लगे॥

दोहा— सुर सुन्दर संग्राम में, जिसने दिया हराय।
लंका किष्किन्धा लई, शक्ति बडी कहाय॥
जिस कारण जा करें जंग, वह काम नही अब बनना है।
जलती ज्वाला बीच, पतंगो के समान जा जलना है॥
आपस में सहमत हो कर, अंतिम यह सबने पास किया।
सुर संगीत प्रान्त यम को देकर के, वही बात को दाब दिया॥

दोहा— ऋक्ष नगर ऋक्ष राज को, किष्किन्धा सुर राज।
दे आधीन अपने किये, दिन दिन बडे समाज॥
फिर गायनरंग अतिहोने लगे,और जय जयशब्दध्वनि न्यारी।
चतुरंगी सेना सजी गगन में, धूम विमानों की न्यारी॥
अब लंका में प्रवेश किया, दशकन्धर दान किया जारी।
दई जगीरें योधों को, घर घर मंगल गावे नारी॥

दोहा— सूर रजके शिरोमणि, इन्दुमालिनी नार।
बाली सुत जिसके हुआ, शूर वीर बल धार॥
पुनरपि सुत दूजा हुआ, सुग्रीव दिया तसु नाम।
सुप्रभा हुई कन्यका, तीजे शुभ अभिराम॥
ऋक्षरज घर भामिनी, हरिकन्ता शुभ नाम।
नील और नल सुत हुए, सुन्दर कला निधान॥
सुर रज ने किष्किन्धा का, वाली सुत को राज दिया।
और मंत्रीपदपर योग्य समझ, सुग्रीवकुमारको नियत किया॥
विरक्त हुवा मन भोगो से, संयम व्रत नृपने धारा है।
तप जप संयम आराधन कर, बस आतम कार्य सारा है॥

दोहा— एक दिवस गया भ्रमण को, दशकन्धर भूपाल ।
पीछे जो भी कुछ हुवा, सुनो सभी वह हाल ॥
शूर्पनखां का चाल चलन प्रतिकूल था शुभ अबलाओं से ।
और काई पैदा होती है जैसे कि श्रेष्ठ तालाबों से ॥
अन्य एक छोटी रियासतका राज कुमर था खर दुषण ।
प्रिय विलासिता कोही जिसने समझा था अपना भूषण ॥
हुवा परस्पर मेल इन्होका एक मर्ज के रोगी थे ।
दश अन्धो में अन्धे यह भी अशुभ कर्म के भोगी थे ॥
या ले भागी या ले भागा कुछ समझे दोनों भाग गये ।
या यों समझें कि एक दूसरे का करके अनुराग गये ॥

दो— पाताल लंक में गिरि एक देख किया स्थान ।
ग्रोह एक पैदा किया और जगी सामान ॥
एक दिन लंक पाताल के भूपति चन्द्रोदर को मार दिया ।
छल बल करके खर दूषणने फिर राज सिंहासन सांभलिया ॥
अनुराधा श्री महारानी जो सभी गुणों की ज्ञाता थी ।
थी धर्मरत गौरव वाली पतिव्रता जगत विख्याता थी ॥

दो— रानी पे आपत्ति का आकर गिरा पहाड ।
इससे वचने के लिये करने लगी विचार ॥
यह दृश्य भयानक ऐसा था, योधे भी धैर्य खोते थे ।
प्रलय काल ही आ पहुचा, अनुमान ये जाहिर होते थे ॥
अनुराधाने समझ लिया, अब यहांपर रहना गलती है ।
क्योंकि इस शक्ति के आगे, ना पेश हमारी चलती है ॥

दो— बुद्धिमान करते सदा, काम समय अनुसार ।
अनुराधाने भी किया, हितकरनिजी विचार ॥

नयनों से नीर वरसता था, महारानी के जो हितेपी थे।
मिल गये बहुत खर दूषण से, जो कृतघ्नी और द्वेषी थे ॥
लिये सदा के पति परमेश्वर, क्षत्राणी से दूर हुवा।
और विना गर्भ ना पुत्र कोइ, होनी का ध्यान करूर हुवा ॥
जो भी कुछ हाथ लगा रानी के, हीरे पन्ने आभूषण।
कर साहस वहा से निकल चली, निज कर्मों को देती दूषण ॥

गाना नं ८

कर्मों के देखो सारे कैसे है जालजी।
कोई फिरे वन वन में, कोई निहालजी ॥

कल क्या दृश्य था सामने, और आज मेरे क्या है।
आगे पता क्या आयेगा, मुझपर ववालजी ॥

शरणागत आते थे, जिन्हों का आसरा करके।
हम निराधार क्या कर्मों ने, कीने पैमालजी ॥

जिस दिन में आई थी, वजे थे वाजे शाहा ने।
यह दिन दिखलाये कर्मों ने, किया कमालजी ॥

कहां ठाठ राजधानी का, कहां आज वन खण्ड है।
मैं स्वामी सेवक हीन हूँ, जीना मुहाल जी ॥

हृदय की अग्नि शान्त अब, नही होगी रोने से।
पुरुषार्थ अब करना होगा, मुझको विशाल जी ॥

पुरुषार्थ द्वारा जीव हो, कर्मों से स्वतन्त्र।
होता है सिद्ध बुद्ध जहां पहुंचे ना कालजी ॥

पुरुषार्थ हीनों का, नही अधिकार जीने का।
और पराधीन यह जिन्दगानी, होगी जंजाल जी ॥

पालन करू इस बच्चे को, जो होने वाला है ।
दिलवाएँ हक इसका, इसे ये ही ख्यालजी ॥
ऐसी विपत्ति मनुष्य पर, आया ही करती है ।
इस कर्म गति से बचे रहे, किसकी मजाल जी ॥
क्षत्री धर्म कहता सदा, गौरव पर मरना सीखें ।
यश लेने की कोई शुक्ल युक्ति निकाल जी ॥

दो — क्षत्राणी ने हृदय में की अंकित यह बात ।
वन मे जैसे सिहनी दिन नही गिनती रात ॥
घनघोर घटा मानिन्द निश्चय, विपदा रानी पे छाई थी ।
या यों समझें चीलों की न्याई, आपति मण्डलाई थी ॥
पतिव्रता देवी इस कारण, नयनों से नीर बहाती थी ।
अवलम्बित थी निज आशापर, और ऐसे कहती जाती थी ॥

दो — अशुभ कर्म का ही हुआ, निश्चय में कोई जोर ।
किन्तु यहां व्यवहार भी, कहता है कुछ और ॥
कर्त्तव्य किया खर दूषण जो, नीति व्यवहार से बाहिर है ।
अन्याय का सिर होता नीचे, यह उदाहरण जग जाहिर है ॥
अन्याइयों से जो डरता है, वह भी संसार में कायर है ।
अ याय के आगे दब जाऊँ, मेरी जमीर से बाहिर है ॥
आनन्द पति के साथ गया, और ठाठ बाट सब रहने का ।
कर्तव्य है अब इस दुःखको भी, सन्तोष के द्वारा सहने का ॥
जो काल के सन्मुख लड़ता है, उसको नही काल भी गहने का ।
यदि गह भी ले तो डर क्या है, जब धर्म है तन के बहने का ॥
क्षत्री पैदा करने वाली, ना दुनिया से भय खाती है ।
लिये धर्म के और शुभ नीति के, वह खेल जानपर जाती है ॥

अन्याई क्रूर अधर्मी सब, मेंडक होते बरसाती हैं ।
या यों समझें कुछ समय लिये तारे होते प्रभाती हैं ॥
न्याय तोड़कर अन्याई, जो पद अन्याय का पाते हैं ।
ऐसे ही जो अ याय को तोडे, सो न्यायी कहलाते है ॥
अपना अपना मौका है, यहां द्वेष की कोई बात नही ।
दृष्टि गोचर दो शक्ति है, पर एक एक के साथ नही ॥

दो.— प्रति पत्ती है पुण्य का, पाप प्रत्यत्त कहाय ।
जो मार्ग सत्य धर्मका, अधर्म का मग नाय ॥
दिवस किस तरह शुभ प्रमाणु, लेकर सन्मुख आता है ।
प्रतिकूल अंधेरा रजनीका, कैसा-प्रभाव जमाता है ॥
दुर्जन सज्जन का फरक यही धनीनिर्धनी में है ।
जो अन्तर साता असाता में, वही गुणी और निर्गुणी में है ॥
जड चेतन कोई चीज नहीं, जिसका कोई प्रति पत्ती ना हो ।
वह काम भी बनता ही नही, जिस काम में दिल चस्पी ना हो ॥
इस गिरितुङ्ग पर चढकर मैं निज नगरी और निहार तो लूं ।
कुछ पवन व्योम की सेवन कर थोडासा और विचार तो लूं ॥

दो.— महारानी ने जब लखा अपनी नगरी ओर ।
घाव नमक वत और भी, बढा महा दुःख घोर ॥
पतिव्रता ध्यान पतिका कर, हो निश्चय हाल विहाल गई ।
किन्तु अपने आत्मबल से इस मन को तुरत संभाल गई ॥
अरुणा वर्तकी लहरों के सम, मोह ममता को टाल गई ।
आशा वादन आशा कर, प्रतिज्ञा और कमाल गई ॥

दो — त्याग गये मुझको, मेरे प्राणपति आधार ।
अब निरर्थ मेरे लिये यह सोलह श्रृंगार ॥

कर्त्तव्य सभी अपना मुझको, पालन अवश्य करना होगा ।
व्यवहार यही है दुनिया का, निश्चय एक दिन मरना होगा ॥
था वास एक दिन वस्ती का, अव जंगल में रहना होगा ।
प्रतिकूल विपत्ति का समूह; अपने सिर पर सहना होगा ॥
सदाचार सादापन ही, यह अवश्य मेरा भूषण है ।
समयानुसार पुरुषार्थ, करने में ना कोई दूषण है ॥
आशा वादन हूं निश्चय, आशा मेरी फल लावेगी ।
पाप उदय खुस गई सम्पति, पुण्य उदय मिल जायेगी ॥
जो नाव भवर मे पडी हुई, पुरुपार्थ से तिर जायेगी ।
सर्वस्व लगाकर पति संपत्ति, हरी भरी लहरायेगी ॥

दो— ससुर भूमिगृह नगर को, करती हूं प्रणाम ।
अवसर पाकर हर्ष से, फेर मिलूंगी आन ॥
है पास पति का रत्न मेरे, बाकी सम्पति का फिकर नाहि ।
इस पौदे की रचा के बिन, इस समय जवांपर जिकर नही ॥
चत्री की हूं सुता वीर योधा, वर की मैं रानी हूं ।
और चण्डी हू शत्रु के लिये, निज सुत के लिये भवानी हूं ॥
पुत्र को राज दिलाऊगी, तव ही माता कहलाऊगी ।
अथवा समझूंगी वाझ, या यों कहिये निज कूख लजाऊंगी ॥

दो.— तज अन्यों का आसरा, निजपर हो स्वालम्ब ।
दु खित हुई देती कभी, कर्मो को उपालम्भ ॥
किन्तु कभी निराशा होकर, भी उत्साह नही छोडा ।
आपत्ति हजारों आने पर भी, लक्ष्य से मुखको नही मोडा ॥
जिसकी दिल में आशा थी, वह आशा एक दिन फल आई ।
मास सवा नौ के होते ही, सुतकी सूरत नजर आई ॥

बस फिर क्या अनुराधा, मनमें फूली नही समाती थी।
मुख रूप चन्द्रमा देख पुत्र का, दृष्टि नही हटाती थी।।
कुछ पूर्व वार्ता स्मरण कर, नयनों से जल भर लाई है
फिर देख सुकर्मा दासी को, यों कोमल गिरा सुनाई है।

दो.— आज सुकर्मा हो गये, उदय कर्म सुखकार ।
किन्तु एक मेरे हुवा, दिल में दु ख अपार ।।

यदि आज महल में सुत होता, तो तेरी आशा फल आती।
राजा को देती सन्देशा, तू अतुल द्रव्य वहा से पाती।
होता मस्तक पर तिलक तेरे दासीपन से छुटी होती ।
उत्सव में देदे दान बीजमें क्या क्या सुकृत का बोती ।।
रोना आता मुझे लाभसे वंचित हैं सेवक मेरे ।
अय कर्म मुझे कुछ पता नहीं अब कौन इरादे है तेरे।
इस समय तो जो कुछ कर सकती, सोई मैंने करना है
कम कम से अब तीन युगों तक इसी ढंग फिरना है।
बाकी मेरे तन के गहने, जो है डब्बे में भरे हुए।
वह भी आज से है तेरे, हिरे पन्नों से जडे हुए ।।
दासीपन का शब्द आज से कहना सदा भुलाऊंगी ।
अब समय समय पर कारण बस, सन्मान से तुम्हें बुलाऊगी।
कुल का यही दीपक है, और यही एक निशानी है ।
प्रतीत हुआ लक्षणों से भी, लम्बी इसकी जिन्दगानी है।
पालन इसका करें मुझे. निश्चय आशा पूरी होगी ।
पुत्रवती कहाऊंगी, जिस दिन चिन्ता चूर्ण होगी ।।
उस दिनकी मुझे प्रतीक्षा है, जिस दिन को यह दिल चाहता है
उत्साहियों के उत्साहो को, लख शंक काल भी खाता है।

तुझपर ही विश्वास मुझे, तूही मेरी सह कारण है।
तेरा मेरा देश का होगा, इस से दुःख निवारण है॥

दो (सुकर्मा)-ग्रहण किया नित्य आपका, अन्न नमक सब चीज़।
जिसके कारण आपके, अर्पण है यह कनीज़॥
शाबास तुझे अय क्षत्राणी, अभ्यास यही होना चाहिये।
मरना तो सबने है एक दिन, पर गौरव ना खोना चाहिये॥
और जहां तक हो सुकृत का, वीज सदा बोना चाहिये।
अज्ञान रूप मल को जिनवाणी, वारी से धोना चाहिये॥

दो— एक जान हो परस्पर, लगे सभी निज काम।
सिहनी वत् निश्चित् किया, पर्वत को निज धाम॥
नाम व्राध रख दिया और, लगी निशदिन पोषण पालनको।
या यों कहिये लगी शूर, वीरता के सांचे में ढालनको॥
देश धर्म सेवा रूपी शिक्षा, जल नित्य सींचती है।
और क्षत्रापन की चतुराई से, शत्रुका दिल भी खैंचती है॥

दो.— दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा, होनहार सुकुमार।
देख पुत्र के तेज को, माता है बलिहार॥
ग्रह गणपति के समान, यह भी है चन्द्रमा चढ़ा हुवा।
शत्रुकी हानि राजताज ले, चिन्ह तेज वह पड़ा हुवा॥
आशा मेरी पूर्ण होती यदि, राज महल अन्दर होती।
कह नहीं सक्ती जिह्वासे, मैं क्या क्या सुकृत यश बोती॥

दो(दासी) आशा वादन आशा, रख दिल में समता धार।
कभी महा प्रकाश हो, कभी कभी अन्धकार॥
कभी रंक और कभी राव, यह दशा कर्म दिखलाते है।
अशुभ कर्म के उदय होत ही, राजपाट खुस जाते है॥

शुभ कर्मों के आने से, सब ही आकर मिल जाते है ।
करें मूल उद्यम इसका, जो जरा नही घबराते है ॥

दो(राणी) ठीक बहिन निज कर्म से, है दु ख सुख संयोग ।
कर्त्तव्य वही करना मुझे, जो होता है योग्य ॥
सम्पति है पास पुत्र को, नीति कला सिखाऊ मैं ।
पाताल लंकका राज्य करे यह देख देख सुख पाऊं मैं ॥

अन्याय को नीचा दिखलावे, ऐसे सांचे में ढालूंगी ।
कर्तव्य जो होता जननी का, सम्पूर्ण उसको पालूंगी ॥
माता द्वारा वीर ब्राध की, दिन दिन कला सवाई है ।
अब शूर्पनखां की खबर, उधर दशकन्धर ने सुन पाई है ॥

दो— इधर उधर को चल दिये, योधा करन तलाश ।
आखिर मुद्दा मिल गया, खर दूषण के पास ॥
क्रोधातुर हो भूपने, दीना बिगुल बजाय ।
अस्त्र शस्त्र सज खडे, योधा सन्मुख आय ॥
दिव्य दृष्टि मन्दोदरी, थी लाखों में एक ।
रावण को कहने लगी, करने को सुविवेक ॥

दो (मन्दोदरी) बुद्धिमत्ता है इसी में, करें सोचकर काम ।
सोच से मुख लाली रहे, सोच बिना मुखश्याम ॥

प्राणनाथ यह तो बतलावो, किस पर कटक चढाने लगे ।
जिसको जाने कुछ ही जने, तुम दुनियां को बतलाने लगे ॥
बात जो होवे निन्दा की, बस उसे दबा देना चाहिये ।
अपने कर्तव्यों पर भी, कुछ ध्यान लगा लेना चाहिये ॥

दो-- काम स्वयम राजा करे, वही प्रजामन भाय ।
आप ही रीत चला दई, अब क्यों मन घबराय ॥

कहो क्या कटक चढा करके भगिनी को राण्ड बनावोगे ।
या और पति बनवा करके, काला मुंह आप कराओगे ॥
जहा परणावोगे वहांपर वह, तानों के दुःख उठायेगी ।
जो भाग गई थी वही बहिन, रावण की यह कहलायेगी ॥

दो — रहस्य भरी यह जब सुनी, बात अति सुखकर ।
ठीक सभी बुद्धि हुई, सत्य कहा यह नार ॥
प्रेमभाव से खर दूषण संग, व्यवहारिक फिर विवाह किया ।
स्वाधीन बना करके अपने, पाताल लकका राज्य दिया ॥
अब सुनो जिकर किष्किन्धाका, जहा बाली नृप बलधारी है ।
दश कन्धर को इख राज देन से, साफ हुवा इन्कारी है ॥

दो — इस कारण दशकन्धर ने, किया एक दर्बार ।
मंत्री सग मिल बैठकर, करने लगा विचार ॥
किस कारण बाली हुआ, हम से आज विरुद्ध ।
क्या उस से अब चाहिये, करना हम को युद्ध ॥
अब कहो सोच करके सब ही, बाली से क्या चाहिये करना ।
सब नियम उप नियम तोड दिये, और छोड दई मेरी शरणा ॥
क्या दूत पढा करके पहिले, राजी से समझाना चाहिये ।
रणतूर बजा या मूर्खता का, स्वाद चखा देना चहिये ॥

दो-(भानुकर्ण) कृतघ्नता की बात है, उसकी सब महाराज ।
चरणी गिरते थे बडे, बाली अकडा आज ॥
वह दिन भूल गया बाली, जब बडे कैद में सडते थे ।
जहा गिरा पसीना उनका कुछ, वहां खून हमारे पडते थे ॥
आपने वध छुडाये थे, और किष्किन्धा का राज्य दिया ।
ऐसे का मान करो मर्दन, और जिसने उसका साथ किया ॥

दो — विभीषण कहने लगा, सुनो जग कर ध्यान ।
बाली कोई हलवा नही, शूर वीर बलवान ॥
मामूली कोई चीज नही, और विचार अपना रखता है ॥
अब रही बात वहां तक की, कोई जाकर समझा सकता है ॥
पहिले दूत भेजकर के, इस बातका रहस्य प्रतीत करो ।
फिर बाद में जैसा हो विचार, वैसा सब कार्य नियत करो ॥

दो — विभीषण की बात में मिलगई सब की बात ।
दूत गया बाली निकट, अगले दिन प्रभात ॥
नमस्कार मम लीजिए, खडा सामने दास ।
आगे श्री दशकन्धर का, सुनो हुकम जो खास ॥
महाराजाने प्रेम भावसे, खबर यही पहुंचाई है ।
कीर्तिधवल और श्री कण्ठ से, परम्पराचली आई है ॥
ध्यान लगाकर देखोगे तो, सभी पता लग जाएगा ।
यह वानर द्वीप तीन सौ जोजन, सभी हमारा पायगा ॥

दो मान नहीं अब कीजिये, यही बातका सार ।
या भक्ति हृदय धरो, या रण हो तैयार ॥
सुनकर सारी बातें बोले बाली फेर ।
दशकन्धर से जा कहो, क्यों करते हो देर ॥

चौ क्यों करते हो देर यहां, नंगा है तेग दुधारा ।
रणभूमि में हाथ दिखाना, कर कर टेर तुम्हारा ॥
देवगुरु को छोड नहीं, नमने का शीश हमारा ।
तुम्हें अभी तक मिला नहीं, कोई शूर वीर बलधारा ॥

दौड़— रहो ना आस बडों के, साथ में गया उन्हों के ।
किस लिये घबराता है, आ रण भूमि निकल यदि
पराक्रम पाना चाहता है ॥

दो— सुनी बात जब दूत से, जलबल हो गया ढेर ।
जंगी बिगुल बजा दई, तनिक ना लाई देर ।।
तैयार हुए सब शूरमा, बडे बडे बलवीर ।
धावा बोल के चल दिये, गर्ज रहे रण धीर ।।
दोनों और सजी सैना, आ धूल गगन में छाई है ।
आकाश में रहे विमान घूम, जब अनी से अनी मिलाई है ।।
मारू बाजा बजा रहे, धौंसें पर चोंट जमाई है ।
ब्रह्माण्ड लगा जब फरने को, तो मानों प्रलय आई है ।।

दो— उभय केशरी जब चढे, कांपन लगी जमीन ।
लगे सभी जन तड़फ ने, जैसे जल बिन मीन ।।
दोनों पक्षों के वीर बैठ, लगे सोचन मौका जाता है ।
लाखों वर्षों का मेल जोल, अब छिन्न भिन्न हुवा चाहता है ।।
कोई कारण नजर नहीं आता, जिस पर यह इतना रगडा है ।
नमस्कार या भेंट जरासी, क्या मामूली झगड़ा है ॥
सुग्रीव कहे निज सभा को, रहस्य बताऊं एक ।
लंका वाले यदि मानलें, रहे हमारी टेक ।।

चौ०— रहे हमारी टेक उन्है, तुम इस नीति पर लावो ।
बाकी सैना हटा वाली, रावण का युद्ध करावो ।।
वाली भग करे शक्ति रावण की निश्चय लावो ।
सभी सभासद मेल परस्पर, यही नियत करवावो ।।

दौड— क्योंकि सेना रावण की, नही काबू आवन की ।
यही एक ढंग निराला, अपना सब कुछ बचाव करो
शत्रु का ही मुख काला ।।

दो.— सभी के मन बस गये, रहस्य भरे यह भाव ।
सभा समय करने लगे, कभी उत्तार चढाव ॥
प्रति पालक हैं सभी के, दोनों ये सिरताज ।
किसके हम सहायक बनें किससे होवें नाराज ॥
झगडा आपस में दोनों का, हम निष्कारण क्यों पक्ष करें।
अन्त में एक ने नमना है, फिर लाखों जन क्यों फंसके मरें ॥
दोनों ही को लडने दो, जो हारेगा नम जावेगा ।
देशप्रेम और राजमान, क्या सब ही कुछ बच जावेगा ॥

दो.— सर्व सम्मति से लिया, यही नियत कराय ।
रण भूमि में भूपति, दोनों दिये जुटाय ॥
उतर पडे रण धीर शूरमा, दोनों ही थे निडर बडे ।
गर्ज ध्वनि घन घोर घटा से, जैसे बिजली कड़क पडे ॥
लगे मेदिनी थर्राने अमोघ, शस्त्र जब आन पडे ।
अग्नि बाण कही धुन्द बाण, विमान गगन में आय अड़े ॥

दो.— दशकन्धर घबरा गया, देख शक्ति तत्काल ।
समझ लिया वाली नही, है मेरा ये काल ॥
गिरा देख मन रावण का, बाली ने कारे कमाल किया।
पकड हाथ चहुं ओर घुमाकर, धरती ऊपर पटक दिया ॥
सुग्रीवादिक ने वाली से, रावण का पीछा छुडवाया ।
हो शर्म सार शर्मिन्द सा, झट लका को वापिस आया ॥

दो — नीचे ग्रीवा हो गई, मलते रह गये हाथ ।
सोचा था कुछ और ही, और हो गई बात ॥
वाली नृप का तेज बल, रावण पर गया छाय ।
रावण का जो घमण्ड था पल में दिया गमाय ॥

चौपाई– वाली का दिल हुवा वैरागी। तप जप करने की लव लागी ॥
यह दुनियां सब धुन्द पसारा। फंसे जीव मकडी जिम जाला ॥
राज ताज सुग्रीव को दीना। ध्यान शुक्ल संयम रस लिना ॥
लब्धिधार हुए मुनि राई। चरणी गिरें देवन पति आई ॥
अष्टापद पर्वत पर आये। ध्यान अडिग्गखडे मुनि लाए ॥
दुनियां समझी कूड कहानी। आत्मसम समझें सब प्राणि ॥

दो -- राज ताज सुग्रीव ले दीर्ध विचारे ताम।
शुभ विचार मुख रूप है उल्ट सोच मुखश्याम ॥
अब वह शक्ति कहां मुझ में, जो बाली वीर नरेशमें थी।
अपमान किया रावण का, फिर भी इज्जत रही देश में थी॥
सुप्रभा शुभ पुत्रीका, दशकन्धर से विवाह किया।
प्रेमभाव सब पूर्ववत्, सुग्रीव नरेशने जोड लिया ॥

दो.— नित्या लोक जपुर भला, नित्या लोक नरेश।
रत्नावली कन्या अति, रुप कला सुविशेष ॥
पुष्पक बैठ विमान में लगा उधर को जान।
नग अष्टापद आन के, अटका तुरत विमान ॥
जब दृष्टि पसारी नीचे को तो मुनिध्यान में खडा हुवा।
मुख पर मुखपति शोभ रही, जैसे चन्द्रमा चढा हुवा ॥
दो भुजा लटक रही नीचे को निर्भय बन में जिम शेर खडा।
देख मुनि को दशकन्धर, झट क्रोधानल में भबक पड़ा ॥

दो — दशकन्धर नृप सोचता, यह वाली मुनिराय।
शत्रु से अपना अब भी. बदला लेऊं चुकाय ॥
तप जप से निर्बल है शरीर, यह सोच सामने आया है।
तेज प्रताप देख मुनिवर का, मन में अति घबराया है ॥

फिर सोचा शिला उखाड़ूं मैं, और इसको नीचे दे मारूं।
परभव यह स्वयम् सिधारेगा, मैं अपना बदला ले डारूं॥

दो— दशकन्धर निज शील से, शीला उठाई आन।
कंपन सुन मुनि राज ने, देखा लाकर ध्यान॥
उपयोग लगा देखा, दशकन्धर मुझे मारने आया है।
तब पांवसे जोर शिला पर दे, भूपाल का शीश दबाया है॥
जब रोया और चिल्लाया तो, बाली ने चरण हटाय लिया।
आ गिरा शरण माफी मांगी, तब मुनिवरने यो कथन किया॥
क्षत्री हो करके रोया तू, एक दाब जरासी आने पर।
इस कारण रावण नाम तेरा है, दिया आज से हमने धर॥
नृप बार बार चरणन गिरता, बाली मुनि का गुण ग्राम किया।
इतने में देव धरणेन्द्र ने आ मुनिवर को प्रणाम किया॥

दो— सेवा करता मुनि की, जब देखा रावण वीर।
आमोघ विजय शक्ति दई, तोफा इक अक्सीर॥
आमोघ विजय शक्ति पाकर, रावण खुश हो उठ धाया है।
कहे तीन खण्ड के साधन को, यह शस्त्र अद्भुत पाया है॥
इन्द्र निज स्थान गया, मुनि निर्मल ध्यान लगाय लिया।
दस विधका धर्म अराधन करके, अक्षय मोक्ष पदपाय लिया॥

दो— गिरी वैताड विशेष ये, ज्योति पुर वर नाम।
विद्याधर था ज्वलनसिह वहां राजा अभिराम॥
रानी जिसके श्रीमति, तारा सुता प्रधान।
चौंसठ कला प्रवीण थी, रूपवती गुण खान॥
चित्रांग नाम एक अन्य नरेश्वर, सहसगति सुत तिसका था।
विमान चढी तारा को देखकर, मोहित चित्त हुवा उसका था॥

चारित्र मोहिनी कर्म उदय ना अपना आप संभाल सका।
प्रमत्त हुवा लगा कहन मित्र से, ना मौके को टाल सका॥
दो-- मित्र सुमन यह कौन थी, मुझे मार गई तीर।
नस नस में होने लगी अति असह्य मे पीर॥
यक विजली का टुकडा था, वह या रवि किरण गई आकरके।
ना जाने कहां वह लोप हुई, एक चोट हृदय पर ला करके॥
वह रूपवती चित चोर मेरी, सुध वुध सारी विसराय गई।
कोई यत्न करो मिलने का उसे, वह मन को मेरे चुराय गई॥
दुखिया का दरदी तेरे सिवा, अय मित्र नजर आता ही नहीं।
दिल खोल दिखाऊ जिसे अपना, वह चन्द्रनजर आता ही नहीं॥

दो— हाल मित्र ने सब कहा, जो था पता निशान।
करी याचना भूपसे, वही ध्वनि वही तान॥
टेवा मगाकर ज्वलन सिंहने, ज्योतिषी को दिखलाया है।
स्वल्पायु है सहसगति की, गणितानुसार बतलाया है॥
तब ज्वलनसिंहने पुत्री का, सुग्रीव से नाता जोड दिया।
और दान दिया दिल खोल, भूप को हाथ जोडकर विदा किया॥
पता लगा जब सहसगति को, दु ख सागर में लीन हुवा।
सोच विचार अनेक किये, पर आर्तध्यानी दीन हुवा॥

दो— तारा के पैदा हुए, शूर वीर सुत दोय।
जयानन्द अंगद भला, बेली समफल जोय॥
सहस गति ने उधर रातदिन, सोचके बहुत उपाय किया।
रूप परिवर्तन विद्या के साधनमें झट ध्यान दिया॥
इधर लगा वह साधन में, अब दशकन्धर क्या चाहता है।
सर्व देश साधन कारण, दलबल विमान सजाता है॥

दो.— समय देख सुग्रीव ने, रावण के हितकार ।
अपनी सैना को किया, कूच के लिये तैयार ॥
रावण और सुग्रीव सहित, सैना के सज धज हुए रवां ।
पाताल लंक जानेका दिलमें, पुरा कर लिया इतमिनां ॥
पता लगा जब खर दूषण को, लिये स्वागत के पहुंच गये ।
भेंट हुई आपसमें जिस दम, प्रेम के बादल झूम रहै ॥

दो.— नदी नर्मदा के निकट, जाकर किया पड़ाव ।
सभासदों के बीच में बैठा रावण राव ॥
तत्काल चढ़ा जल ऊपर को, जा सेतु से टकराया है ।
निष्कारण क्यों चढा आज, जल इसका भेद ना पाया है ॥
फिर दिया हुकम दश कन्धरने, इसका कारण मालूम करो ।
यदि छोड़ा है किसी शत्रुने तो, उस दुर्जन का मान हरो ॥

दो — वैठ विमान में चल दिये, देखा जाकर हाल ।
दश कन्धर को आन कर, बतलाया तत्काल ॥
अद्भुत है रचना बनी, हुवा अनुपम काम ।
या यों कहिये भूमिपर, उतरा है सुरधाम ॥
महाराज यहाँ से वडी दूर, एक देश बड़ा लासानी है ।
सहस्रांशु नृप तेज रविवत्, महिष्मति रजधानी है ॥
वहुत भूप सेवा करते है, सहस्र एक सुन्दर रानी ।
प्रेम हेतु जलक्रीडा के, उसने रोका था वह पानी ॥
करें कहां तक वर्णन वहा का, समझ नही कुछ आता है ।
क्या वही स्वर्ग प्रत्येक कवि, दे उदाहरण कथ गाता है ॥
वहा नदी सरोवर के मानिन्द, है चारों ओर वना रक्खी ।
लम्बी और चौडी शोभनीक, नौका है जिसमें ला रक्खी ॥

दोनों ओर बने सेतु, कोई खम्भा जिनके मध्य नही ।
जिस दम कपाट भिड़ जाते है, तो समझो और संबंध नहीं ॥
मध्योदक भवन बने अद्भूत, सुख पुण्य योग से पाया है ।
अभी थोड़े फट्टे खोल दिये, जिस कारण यह जल आया है ॥

दो — सुनतेही दशकन्धर दी, रण भेरी बजवाय ।
दलबल सबल विमान से, घेरा डाला जाय ॥
पहिले दूत पढा रावण ने, नृप को खबर पहुंचाई झट ।
या भक्ति स्वीकार करो, या हमसे करो लडाई झट ॥
चढी फौज लडने के लिये, आपस में शस्त्र चलाने लगे ।
और कई हुए रणभेंट शूरमा, पीठ दिखाकर कई भगे ॥
लिया बांध रावणने नृप को, उल्टा बध चढाया है ।
तब जंघाचारी महा मुनिने, आकर के छुडवाया है ॥
यह पिता सहस्राशु नृप का, सतबाहु नाम मुनीश्वर था ।
जिन नाशवान् दुनिया को, तजकर पकड़ा मारग संयम का ॥

दो. — सहस्रांशु महाराजने, दिल में किया विचार ।
तज झंझट ससार का, लेवें सयम धार ॥
सत्यशरण लिया श्रीजिन वरका, आधीन ना जो किसी ताजका है।
दुनियां का सुख अनित्य सभी, सुख नित्य परमपद राजका है ॥
है याद मुझे वह समय, मेरे एक मित्र ने था वचन दिया ।
अनरण नरेश ने उसी दीक्षा का, इकरार मेरे था साथ किया ॥

दो — अनरण नरेश को उसी दम, दीनी खबर पहुंचाय ।
समझ लिया कि हे चहै, दुनियां का उत्साह ॥
अनरण नृप भी सोचता, है मेरा सकेत ।
इस से बढ करके नही, दुनिया में कोई हेत ॥

अनरण भूपने उसी समय, दशरथ को राज्य संभाल दिया।
दई पुरी अयोध्या छोड, संगमित्र के संयम धार लिया ॥
उधर सहस्रांशु सुतके, सिर ताज दिया दशकन्धरने।
और उसी समय उसको, अपने आधीन किया दशकन्धरने ॥

दो— नारद घबराया हुवा, आया रावण पास।
आदर पा भूपाल से, कहा मुनि ने भाव ॥
आपके होते अनर्थ हो, फिर यही तो दुःख बडा।
रहे यज्ञ में फूंक पशु, कई दुष्ट अनार्य खोद गढा ॥
सद् उपदेश दिया तो, अग्निहोत्रोंने मारा मुझको।
चल रक्षा करो अनाथों की, संगले जाने आया तुमको ॥

चौपाई– राज नगर और मरूत नरेश। मिथ्या दृष्टि अधर्म विशेष ॥
कुगुरु जनका अति भरमाया। पशुवध महा यज्ञ रचाया ॥
इतनी सुन दश कन्धर धाए। पशुओं के जा प्राण बचाए ॥
यज्ञ विध्वंस किया तवसारा। याज्ञिकों के मनरोष अपार ॥
आत्मरूपी यज्ञ रचावो। द्वादश तम विधि अग्नि जलावो ॥
अशुभ कर्म सव दग्ध बनावो। यों कहे नारद परमपद पावो ॥

दो.— मरुत भूप की पुत्री थी, कनक प्रभागुण खान।
रावण संग विवाह दई, साथ मान सन्मान ॥

चौ०— पा करके सन्मान अधिक मथुरा को हुवे रवाना।
था मधु वहां का भूप ठाठ, जिसका था अधिक सुहाना ॥
मिले प्रेमसे रावण को, कुछ भेंट किया नजराना।
देखा हाथ त्रिशूल, मधुसे पूछे रावण दाना ॥

दौड़— पूछता गुण नृप रावण, मधु तब लगा सुनावन ।
चमरेन्द्रने मुझे दई है, पूर्व भवका का मित्र मेरा
जिन सभी कथा कही है ॥

दो — ऐरावत क्षेत्र भला शत द्वारा पुरी नाम ।
सुमित्र भूपका मित्र है, प्रभवचतुर सुनाम ॥

चौ — प्रभवचतुर सुनाम, मित्र दोनों रहते मगलमें ।
एक दिवस ले गया, उड़ा घोडा नृप को जगलमें ॥
पल्ली पति की सुता नाम, वनमाला मिली उपवन में ।
नृप से करके विवाह, खुशीसे आई राज भवन में ॥

दौड — प्रभव आ मिला चावसे, पूछता कुशल भावसे ।
जब रानी को देखा है, लगा काम का बाण तुरत
पागल सा बन बैठा है ॥

दो.— सुमित्र ने पूछा प्रभव से, कैसा आर्त्त ध्यान ।
साफ प्रभव ने कह दिया, जो था दिली अरमान ॥

चौ.— जो था दिली अरमान, सुमित्र सुन खुशी हुवा अति मनमें ।
मांगो देवें प्राण मित्र यह, कौन चीज चीजनमें ॥
दई आज्ञा जावो रानी, मम मित्र के महलन में ।
रानी दई सभाल, आप छिप सुने शब्द काननमें ॥

दौड— प्रभवसे कहे उचारी, कौन नाचीजमें नारी ।
मेरा पति देव है ऐसा, मागे पर देवे जान तलक
क्या चीज नार और पैसा ॥

दो — गोरवकी यह बात सुन, गिरा चरण में आन ।
धन्य धन्य मम मित्र है, धन्य तू मात समान ॥

महा पापी चाण्डाल दुष्ट मैं, धर्मवृक्ष का कातिल हूँ ।
खुद पे कटार से वार करू, मैं मर जाने के काबिल हूँ ॥
सुमित्र ने झपट हाथ, पकडा कहे वे भाई क्यों मरता है ।
मैं समझा तू है श्रेष्ठ मित्र, तथा परीक्षा मेरी करता है ॥

दो — सुमित्र ने संयम लिया, पहूंचा कल्प इशान ।
हरिवाहनगृह सुत मधु, वही जन्मा मैं आन ॥
प्रभव मित्र संसार में, कई बार देह धार ।
जन्मा ज्योतिर्मति के, पुण्यवान् सुकुमार ॥
संयम ले न्याणा करा, चमरेन्द्र बना जाय ।
मुझ को मित्र स्नेह से, त्रिशूल दई यह आय ॥
दो हजार योजन तक का, यह काम तुरत कर आती है ।
फिर आत्म रक्षक है मेरी, ना पास किसी के जाती है ॥
गुणवान मधुकको जान, रावणने कन्या उसे विवाही है ।
सम्बन्ध जोड पुत्री का झट, आगे को करी चढ़ाई है ॥

दो — लगा सितारा चमकने बढता जाय नरेश ।
भूपति आ चरणों गिरें, सेवा करें विशेष ॥
अष्टादश बर्षों तलक, रहा जग से प्यार ।
सूर्य किरणों की तरह, हुवा पुण्य विस्तार ॥
फिर आये महिमण्डले, नलकुबेर दिग् पाल ।
दुर्लघ्यपुर का भूपति, राज्य करे सुविशाल ॥
आशाली विद्या पर उसे, था अत्यन्त गुमान ।
रखता था नगरी गिरद प्रचण्ड अग्निहर आन ॥
कुम्भकर्ण सेना समेत, जब बढ़ा तर्फ रजधानी के ।
ना मही गई आशाली झलक, तो छक्के छुटे गुमानी के ॥

फिर सबने सोच विचार किया, दश कन्धर भी घबराया है।
विमान व्योममें चढा दिये, किन्तु ना रस्ता पाया है ॥

दो.— रावण कहे सुग्रीवसे, करो उपाय विवेक।
जिससे यह कार्य बने, रहे हमारी टेक ॥
कपि पति तब कहने लगा, सुनिये कृपा निधान।
काम अति यह कठिन है, बिना भेद भगवान् ॥
यही समझ में आता है, कुछ रूप बदल चहु ओर फिरें।
जो मिलें पकड़ लालचक देकर, लें भेद सभी ना फरक करें ॥
इधर लगे यह फिरने को, वहां नल कुबेर घर फूट पडी।
शुक्ल जहां पर विरोध बढ़, वहां समझो के इज्जत बिगड़ी ॥

गाना न ९

अय फूट देवी तुमने, सबको रुला दिया है।
अज्ञानियों के दिल पे, अड्डा जमा दिया है ॥
अटूट प्रेम में जो, लव लीन हो रहे थे।
उनके भी सुख का, कारण तूने भुला दिया है ॥
मिल बैठ प्रेम से जो, निज लाभ सोचते थे।
विपरीत इसके तूने, बिल्कुल बना दिया है ॥
उन्नत थे सब समझते, मानो सुमेरु चोटी।
गौरव गिरा के उनका, धूलि मिला दिया है ॥
सब प्रेम की तरग में, आनन्द ले रहे थे।
लहरें सुखा के तूने, वालू उडा दिया है ॥
अब प्रेम के स्वपन की भी, हो रही निराशा।
भर विरोध विषको उरमें, हृदय हिला दिया है ॥

हैं धर्म शुक्ल दोनों, यह ध्यान नाम मात्र ।
आरति विरोध का तू, दरिया वहा दिया है ॥

दो.— पूर्व पुण्य से यदि मिले, सुख साधन का अंश ।
अन्यों का अज्ञान वश, करने लगे विध्वंस ॥

अय मित्र गणों कुछ सोच करो, किस वातपे आप अकडते हो ।
जिस फूटने सवका नाश किया, क्यो उसका हाथ पकडते हो ॥

मानिन्द नरक वह घर वनता, जिसमें यह चरण टिकाती है ।
मित्रों का दिल फट जाता है, जव अपना कदम जमाती है ॥

वह अधोलोकवत् देश वने, जव यह महारानी आती है ।
स्वपन मात्र ना सुख शान्ति, उस देश में रहने पाती है ॥
इस रोग की मात्र औषधी यह, जिन भाषित ज्ञानामृत पीना ।
मैत्री भाव की ओर बढो, व्यवहार सहित जव तक जीना ॥
अब करुणा भावके अंकुरे, तुम हृदय में पैदा होने दो ।
शान्ति प्रेम से राग द्वेष, दु ख दायी जडको खोने दो ॥
चेतन और अचेतन क्या, सब में गुण है गुण गृहण करो ।
त्रियोग शुद्ध सब का हितकारी, सादा रहन और सहन करो ॥
कायरता तज कर शूर बनो, प्रमाद नही करना चाहिये ।
तुम उद्यम शील बनो सारे, अन्यायपक्ष तजना चाहिये ॥
श्री वीतराग की वाणी से, जो सज्जन बेमुख रहते है ।
वह जन्म मरण संसार चक्रमें, पडे सदा दुःख सहते है ॥
सम्प सुमति का साथ छोड, सर्वस्व अपना खोते है ।
तो जान बूझ कर वह नर, अपने राह में कांटे बोते है ॥

दो.— यथा नाम कुबेर का, गुण थे तदनुसार ।
किन्तु घर की फूट ने, किया सर्व सुख छार ॥

दिवानाथ यदि भानु है, तो वह भी जगन्नाथ कहाता था ।
मानिन्द रजनी के शत्रु दल, मुंह देखत ही भग जाता था ॥
मानिन्द रवि की किरणों के, आधीन हजारों राजा थे ।
नि सन्देह थे भिन्न भिन्न, पर सदा हुक्म के ताबा थे ॥
वह ज्योतिषियों का इन्द्र है, तो यह नरेन्द्र कहलाता था ।
उसका भ्रमण व्योम, सरोवर में यह दिल बदलाता था ॥
वर्णादिक स्वाधीन भोग, उपभोग किसी की कमी नही ।
स्वास्थ्यादि दश विध सुख पूर्ण, था समान कोई धनी नही ॥
और एक अनोखी विद्या जो, कि आशाली कहलाती थी ।
चहुं ओर कोट था ज्वाला का, शत्रु की पेश ना जाती थी ॥
इसके सुदर्शन चक्र का, कभी वार खाली नही जाता था ।
इन्द्र भूप भी नल कुबेरमें, इस कारण भय खाता था ॥
चढे हुए थे गौरव पै, जब फूट का आ साम्राज्य हुवा ।
उफ पश्चाताप बिना सब कुछ, खो महाराज बेताव हुवा ॥

दो — वैमनष्यता ने लिया, रूप भयानक धार ।
नृप रानी का परस्पर, बढ़गया द्वेष अपार ॥
जहा राग वहां पर द्वेष की नीमा, निश्चय पाई जाती है ।
द्वेष वहां पर प्रीति आ, विकल्प से असर जमाती है ॥
सम विभाग का नाम नही, वहा स्वार्थता छा जाती है ।
तब फूट महारानी भी आकर, आसन वहा बिछाती है ॥
उपरम्भाने कुमुदा दासी को, घर का भेद बताया है ।
कहे प्राणों का सदेह हमें, सौकनों ने जाल बिछाया है ॥
किन्तु सुख सार की निन्द्रासे, मैं भी ना इन्हें सोने दूंगी ।
और मुझे रुलाया तो, इनको फिर कैसे सुखी होने दूंगी ॥

ऐ कुमुदा अब देर ना कर, झट रावण पास चली जा तूं।
यहां जाल बिछाया इन्होंने, अब वहां पर जाल बिछाया तू॥
यदि बनें सहायक वह मेरे, मैं उनको अक्सीर दवा दूंगी।
चक्र सुदर्शन देकर मैं, आशाली भेद बता दूंगी॥
कह देना यदि अब चुके तो, फिर पीछे से पछतावोगे।
पराजय कुबेर नही होवेगा, तुम अपने प्राण गमाओगे॥
सन्तोष जनक दिया उत्तर मुझे, तो आयु तक सुख पावोगे।
नही लाभके बदले हानि होगी, करमलते रह जावोगे॥

दो — आज्ञा पा दासी चली, पहुंची कटक मंझार।
इधर खडे थे गुप्तचर, पहिले ही तैयार॥
पुण्य प्रबल महारावण का, सभी तरह पौबारे है।
उल्टा दैव कुबेर से समझों, कर्मों के फल न्यारे है॥
अय आजकल के पामर प्राणियो, क्यों आपस में लडते हो।
क्रोध परस्पर करके क्यों, महादुःख कूपमें पडते हो।

दो — अर्ज उभय कर जोडकर, करती हू सरकार।
उपरम्भा की बेनती पर, कुछ करें विचार॥
नृप से कुछ अनबन होनेपर, महारानी आपको चाहती है।
आशाली विद्या सहित, लिये चक्र वह रानी आती है॥
मीन मेख आदि विचार, करने का कोई काम नहीं।
यदि अब चूके तो, समझ लेना इस फेल का खुस अंजाम नहीं।

दो — रावण ने कहा बोल मत रसना करले बन्द।
क्या हमपर तू गेरन लगी, प्रेम जालके फन्द॥

चौ — प्रेम जाल के फन्द सभी, क्या अनुचित बात सुनाई
ऐसा भाषण करने पर, क्या तुझे शर्म ना आई॥

साथ हमारे क्षत्रापन पर, धूल डालनी चाही ।
आज हमारे उज्जल, मुख पर स्याही मलने आई ॥

दौड़— प्रथम तो सभी फरेब है, राग से हमें परहेज है ।
सहायता हमें ना चाहिये, डाकू चोर डचक्कों की
गणना में हमें ना लाइये ॥

गाना नं १०

ऐयासी करते है इसरत में, पड़ गौरवको खोते है ।
नतीजा निकलता आखिर, पेसिर धुन धुन के रोते है ॥
यह भी इक कुव्यसन भारी, पराई नार हर लेना ।
अवश्य सर्वस्व खोकर, वह बीज दुर्गति का बोते है ॥
बनी ना जिनकी अपनों से, परायों से बनेगी क्या ।
घरेलू झगडों से यह, नीचता के ख्याल होते है ॥
यही कर्त्तव्य मानव का, सदा नीति करे पालन ।
वही दुनिया के गौरव की, शिखर चोटी पे सोते है ॥
गिरावट का यह मारग है, शुक्ल बचने से इसके को ।
नीति अरिहन्त वाली से, कर्ममल तकको धोते है ॥

दो — नके आसरा नीच सब, कायर क्रूर अधीर ।
रखे भरोसा आप पर, शूर वीर रण धीर ॥

चौ.— शूर वीर रण धीर भरोसा, भुज बलपर रखते है ।
चक्र भूप आशाली क्या, नही अन्तक से झकते है ॥
दुनिया भर के शूर सामने, हों न कभी हटते है ।
गौरव की रक्षा के कारण, सत्य पुरुष मरते है ॥

दौड— हमें कुछ भी ना चाहिये, आप बस यहां से जाइये।
लगी क्या जाल बिछाने, मारू चाबुक तान
सभी बुद्धि आजाय ठीकाने ॥

दो— धिक्कार शब्द खाकर हुई, कुमुदा कैम्प से बाहर।
स्वागत विभिपण ने किया, उसका समय विचार ॥

कुमुदा आप न हों कभी, रंचक मात्र उदास।
रानी की और आपकी, पूर्ण होगी आस ॥

पहिले दश कन्धर पे जाके, भूल आपने खाई है।
कुछ ऐसे होते हैं स्वभाव, कुछ होती बेपरवाही है ॥

यह काम सदा ऐसे वैसे, बनते हैं औरो के द्वारा।
निर्भय अब यहा पर, आजावो और समझो अपने पौबारा ॥

दो — विभीषणकी जब सुनी, रावणने यह बात।
मानो स्वकुल के हुवा, गौरव का आघात ॥
(रावण)-स्वावलम्बी होते सदा, शूर मुनि अवतार।
फेर योग्य अयोग्य का चाहिये जरा विचार ॥
चाहिये जरा विचार लिया, क्यों तैने नीच सहारा।
क्षत्रापन के गौरव को, यह है एक धब्बा मारा ॥
यदि वह सचमुच आही गई, तो कट जाय नाक हमारा।
शक्ति होते हुए धूर्त, जनकी संख्या में डारा ॥

दो.— (बिभीषण)-ना हमें नीच विचार है, ना कुछ गौरव बहार।
एक लाभ दूजे मिले, करना पर उपकार ॥
शरणागत को शरणा दे कर, कष्ट सदा हरना चाहिये।
जो स्वयं मिले लक्ष्मी आकर, तो उसे नही तजना जाहिये ॥

इसके प्राणों की रक्षा के, रक्षक भी हम कहलावेंगे ।
फिर करवा देंगे मेल परस्पर, दम्पति हिलमिल जावेंगे ॥
चक्र सुदर्शन आशाली, विद्या ही हमको चाहना है ।
यदि चूक गये तो लाभ, अपूर्व फेर हाथ नही आना है ॥
मरते विष के खानेवाले, व्यापारी कभी ना मरते है ।
द्रव्य क्षेत्र काल अनुसार सदा, वह सभी कार्य करते है ॥
इक लक्ष्य को सन्मुख रखते हुए, यहां हुवा हमारा आना है ।
अब साम दाम और दड भेद, युक्तिसे काम बनाना है ॥
क्या क्षत्रापन रह जावेगा, ऐसे वापिस हो जाने से ।
या विघ्न ना सन्मुख आवेगा, कुछ आगे कदम बढाने से ॥
यह भी शक्ति एक इन्द्र की, जो दाहिनी भुजा कहलाती है ।
यदि यही हाथ से निकल गई, तो पछताना रहे बाकी है ॥
साधारण कोई चीज नही, यह आशाली एक विद्या है ।
यहां घबरा गये सभी योधे, अब पीछे हटें तो निन्दा है ॥
पुण्योदय यह समझ स्वयम्, कुदरत ने मेल मिलाया है ।
अब इसे नही तजना चाहिये, यह भी एक अद्भुत माया है ॥

दो.— दशकन्धर ने जब सुनी, रहस्य भरी यह बात ।
मौन धार बैठा रहा खुशी से फूला गात ॥

गाना न. ११

जिधर भी देखो जहा तहां, यह सभी पसारा प्रेम का है ।
नरसुर इस और परलोक, क्या बस सभी नजारा प्रेम का है ॥
ग्रहगणों का भी मेल होता, शशि की शोभा बढाने वाला ।
गिरी द्वीप और समुद्र रचना यह खेल सारा प्रेम का है ॥
वसन्त ऋतु जलवायु सब, जीका प्रेम अनुकूल गूढ होता ।
फलफूल पक्षी व मीठे स्वर क्या, सभी इशारा प्रेम का है ॥

मातपितुकी स्नेह दृष्टि, यार मित्र व बन्धु गण क्या ।
स्वामी भ्राता व भगिनी पत्नी, यह नाता सारा प्रेम का है ॥
किन्तु होते अनित्य सब यह, धर्म कर्म नित्त ध्यान भक्ति ।
श्रद्धा चारित्र सेवा सतगुरुकी, मोक्षद्वारा प्रेम का है ॥
विपरीत होती है इसके सृष्टि, विरोध जहांपर के भापता है ।
शुकल उन्नति वहा पर होती, आगमन प्यारा प्रेम का है ॥

दो— एक ने दूजे की लई, मान परस्पर बात ।
पुण्य खड़ा आ सामने जैसे शुभ प्रभात ॥
रानीने विद्या लई, आशाली और भेद ।
विधि सहित साधन करी, मिट गया जो था खेद ॥
चक्र सुदर्शन लिया हाथ, जो महा अनोखी शक्ति है ।
जिनसे शस्त्र लिये उन्हों, पर ही आ बनी आपत्ति है ॥
बस प्रेम ही है बलवान अति, और फूट महा निर्बलता है ।
यह है प्रसिद्ध के विरोध जिन्हों में, काम ना उनका चलता है ॥
रावण और विभीषण का सब, प्रेमसे भय का फूर हुवा ।
और जहां खुशी हरस्थायतथी, वहां से सुख आनन्द दूर हुवा ॥
रावणने धावा बोलत ही, दुर्लघनरेश को घेर लिया ।
और होनी ने अपना चक्र, सीधेसे उल्टा फेर दिया ॥
स्वाधीन कुबेर किया अपने, और उपरम्भा सग विदा किया ।
या यो कहिये कि तौक गले, परतंत्रता का पहिन लिया ॥

दो— कैसी ही हो पण्डिता, कैसी ही प्रवीण ।
झूठ दगा उल्टी मति, त्रिया में अवगुण तीन ॥

चौपाई– रावण रथनुपुर करी चढाई । जो थी रडक हृदय दु ख दायी ॥
सीमा पर जा कटक जमाया । उसी समय एक दूत पठाया ॥

दो.— सहस्रार नृप इन्द्र को, कहता बारम्बार ।
बेटा अब ना मान कर, अपना समय विचार ॥

चौ०— अपना समय विचार, है इस से सहस्रांशु नृप हारा ।
नल कुबेर सुर सुन्दर आदि, मान सभी का मारा ॥
आज्ञा में भूप अनेक, मुख्य सुग्रीव बड़ा बलवारा ।
चढा पुण्य प्रचण्ड तेज, सुर्य सम आज उजारा ॥

दौड— प्रथम ही प्रेम बढावो, रावण से भगिनी विवाहो ।
ध्यान गौरव का करना, यदि छिड़ा सग्राम पुत्र तो
पडेगा संकट जरना ॥

दो — सुनी बात जब इन्द्र ने, जलबल हो गया ढेर ।
प्रबल सिह सम उछल कर, खैंच लई शमसेर ॥

चौ — बोला ले तलवार तुम्ही, ने तो काटे बोए है ।
लका और किष्किन्धा, आदि देश सभी खोए है ॥
कायर अति बल हीन, अपौरुष तुम्हरे मन होए है ।
प्रथम ही देता मसल, दिया मुझे रोक आज रोये है ॥

दौड— अरि की करें बढाई, मेरे मन को नही भाई ।
भय क्या दिखलाते है, उदय होत ही भानु के
सब तारे छिप जाते है ॥

दो — निर्लज्जता की बात है, जो तुम किया विचार ।
शत्रु को दे बहन मैं, करू साप से प्यार ॥
इतने में दशकन्धर का दूत भी पहुंचा आय ।
इन्द्र को कहने लगा, पहिले माथ नवाय ॥

दो.— सहस्रार नृप इन्द्र को, कहता बारम्बार ।
बेटा अब ना मान कर, अपना समय विचार ॥

चौ०— अपना समय विचार, है इस से सहस्रांशु नृप हारा ।
नल कुबेर सुर सुन्दर आदि, मान सभी का मारा ॥
आज्ञा में भूप अनेक, मुख्य सुग्रीव बड़ा बलवारा ।
चढा पुण्य प्रचण्ड तेज, सुर्य सम आज उजारा ॥

दौड— प्रथम ही प्रेम बढावो, रावण से भगिनी विवाहो ।
ध्यान गौरव का करना, यदि छिड़ा सग्राम पुत्र तो
पडेगा संकट जरना ॥

दो — सुनी बात जब इन्द्र ने, जलबल हो गया ढेर ।
प्रबल सिंह सम उछल कर, खैंच लई शमसेर ॥

चौ.— बोला ले तलवार तुम्ही, ने तो काटे बोए है ।
लका और किष्किन्धा, आदि देश सभी खोए है ॥
कायर अति बल हीन, अपौरूप तुम्हरे मन होए है ।
प्रथम ही देता मसल, दिया मुझे रोक आज रोये है ॥

दौड— अरि की करें बढाई, मेरे मन को नही भाई ।
भय क्या दिखलाते है, उदय होत ही भानु के
सब तारे छिप जाते है ॥

दो — निर्लज्जता की बात है, जो तुम किया विचार ।
शत्रु को दे बहन मैं, करू साप से प्यार ॥
इतने में दशकन्धर का दूत भी पहुंचा आय ।
इन्द्र को कहने लगा, पहिले माथ नवाय ॥

दो.— नमस्कार मम लीजिये, धीर वीर महाराज ।
दो अक्षरी एक बात में, कहने आया आज ॥
कहने आया आज आपका, भला सदा चाहता हूं ।
शक्ति भक्ति दो जीवके, रक्षक बतलाता हूं ॥
करो जो हो स्वाधीन आपके, मैं वापिस जाता हूं ।
देओ भेंट संग्राम करो या, अन्तिम समझाता हूं ॥

दो.— दूत वचन सुन इन्द्र को, छाया रोष अपार ।
बे इज्जती से दूतको, धक्का दे किया बाहर ॥
रण तूर बजाया उसी समय, सुन शूर सभी हर्षाये है ।
अब वीर परस्पर रण भूमिको, तेजी से उठ धाए है ॥
अति घोर संग्राम हुवा जहां रक्त फुवारे चलते है ।
आते है अग्नि बाण उन्है जल बाणसे झट मसलते हैं ॥

दो — शक्तिको सब देखते, पुण्य ओर नहीं ध्यान ।
पुण्य बिना शक्ति सभी, होती तृण समान ॥
मेघनादने इन्द्र की, मुश्कें ली चढाय ।
मान भंजने के लिये, लंका दिया पहुंचाय ॥
रावण सुतने इन्द्र को, लिया युद्धमें जीत ।
प्रसिद्ध नाम तब से, हुवा जग में इन्द्रजीत ॥
ऐश्वर्य अपना जमा वहां, फिर लंक पातालमें जाने लगे ।
त्रिखण्डी रावणको सब जन, जय जय के शब्द सुनाने लगे॥
उत्सव की वह महा धूम, सब तीन खण्डमें छाई है ।
अब लंकामें प्रवेश किया, घर घर में बंटी बधाई है ॥

दो.— भयानक कारागारमें दिया इन्द्र को ठोंस ।
प्रबल से दुर्बल किया, सम्पदा ली सब खोस ॥

सहस्रार ने वेनती, की रावण से आन ।
पुत्र भिक्षा आपसे, मागत हूं मैं दान ॥
बोला रावण द छोड़ किन्तु, यह ध्यान अवश्य धरना होगा ।
अब कुछ दिन लिये, राज्य मार्ग को रोज साफ करना होगा ॥
कर दिया क्षमा हमने इस को, बस एक आपके कहने पर ।
वरना यह सजा के लायक था, अपराध का पुज जमानेभर ॥

दो — कर प्रतिज्ञा भूपने, इन्द्र लिया छुडाय ।
नीच काम करना पडा, मन में अति पछताय ॥

चौपाई- ज्ञानवान मुनि एक पधारे । तब इन्द्र वेनती उच्चारे ॥
कौन कर्म प्रभु किया अति भारी । जिसने करी दुर्गति हमारी ॥

दो.— पूर्वभव का जो सम्बन्ध, कहें मुनि समझाय ।
जिसका फल तुमको मिला, सुन लो कान लगाय ॥
अरिंज नगर में ज्वलन सिंह, नृप वेगवती रानी तिस के ।
अहिल्या नामक सुता अनूपम, रूपवती जन्मी जिस के ॥
रचा स्वयम्बर राजाने, नृप आए शोभा मतवाली ।
आनंद माली नृप के गल में, कन्या ने वर माला डाली ॥

दो — नाम तडित प्रभ तुम, तभी कोपे मन मंझार ।
आनन्द माली से, रहा तेरा द्वेष अपार ॥
अनित्य समझ आनंद मालीने, दुनिया तज चारित्र लिया ।
ध्यानारूढ देख मुनिवर को, तैंने दारूण दु:ख दिया ॥
आनंद माली का भ्राता, कल्याण मुनि गुण आगर था ।
तेजू लेश्या लगा छोडने, तप जप का जो सागर था ॥

दो.— सत्यवती तव नारने, मुनि शान्त किया आय ।
लेश्या तुरत सहार ली, तुझको दिया बचाय ॥
कई जन्म बाद सहस्रार के घर, आ जन्मा इन्द्र नामसे तू ।
पुण्य भुगत के हुवा लज्जत, मन्द कर्मो के परिणाम से तू॥
दु ख दिया था जो मुनिराजो को, यह उसका ही फल पाया है।
फल कर्म गति का समझ इन्द्रने, संयम में चित्त लाया है ॥

दो.— तीन खण्ड का अधिपति, दशकन्धर नृपराय ।
बडे बडे भूपाल सब, गिरे चरण पर आय ॥

चौपाई- एक दिवस दशकन्धर राई । नग सुवर्ण पर पहुंचा जाई ॥
अनंत वीर्य वहा केवल ज्ञानी । तीन काल के अंतर्यामी ॥
सुन उपदेश धर्म सुखदाई। दशकन्धर दिया प्रश्न सुनाई ॥
ऐसा कौन कहो नृप राई । मेरी घात करे जो आई ॥

दो.— मुनिवर ने तब यों कहा, सुनो त्रिखण्डी नाथ ।
पडेगा पाला आपको, वासुदेव के साथ ॥
परनारी सम्बन्ध से, होगा तेरा नाश ।
पुण्य आपका है अभी, कुछ समय तलक प्रकाश ॥
उसी समय रावण ने, दिलमें यह प्रतिज्ञा धार लई ।
परनारी ना चाहे जो मुझको, उसस करूगा प्यार नही ॥
करके नियम चला लंका को, मुनिवर को प्रणाम किया ।
मन वचन कर्मसे नियम, निभाने का दिल निश्चय धार लिया ॥

(इति रावणोत्पत्याधिकार)

(अथ हनुमानुत्पत्ति वर्णनम्)

दो.— उत्पत्ति उस वीर की, सुनो लगाकर कान ।
नाम अमर जिन यहा किया, फिर पहुचे निर्वाण ॥

गाना न १२

पवन सुत अंजनी के जाए, धर्म के अवतार थे ।
सत्य के प्रतिपाल योधा, देश के शृगार थे ॥
वीरता के पुंज तेजस्वी, गदा धारी यति ।
लकपति आदि भी जिनकी, शक्ति पै बलिहार थे ॥
फाद के सागर को खलदल, दल सिया सुध लाये जब ।
राम सैना सहित उन पै, हो रहे बलिहार थे ॥
तेज तप संयम का पालन, भक्ति शक्ति थी अटल ।
देशव्रत धारी थे योधा, सर्व शुद्धाचार थे ॥
क्या लिखें महिमा शुक्ल, उपमा कोई मिलती नही ।
दीन के बन्धू थे वह, दु खियों के प्राणाधार थे ॥

(तर्ज बहरे शिकस्त गाना)

गुण वर्णन मैं करू कहां तक न इतनी शक्ति जबान में है ।
शूर वीरता तेज निराला वीर्य सामर्थ्य हनुमान में है ॥
सच्चे पक्ष के थे प्रतिपालक उत्पात् बुद्धि हर आन में है ।
कष्ट निवारा था माता का प्रगट नाम किया जहान में है ॥
उपकार तेरा नही दे सक्ता यह शब्द राम के जबानमें है ।
बडे बडे योधा किय पसया, शक्ति अद्भुत कमान में है ॥
तप सयम की क्या करू बढाई, शक्ति नही प्रमाण में है ।
शुक्ल विराजे जा शिवपुर में, यह लज्जत पद निर्वाणमें है ॥

दो— रूपा चल पर्वत भला, शोभनीक स्थान ।
बाग बगीचे महल का, गौरव अधिक महान् ॥
आदित्य नगर प्रह्लाद भूप, गृह के तुमतीरानी दानी ।
उदयाचल पे भानु प्रकाश, स्वपने में देखा पटरानी ॥
वृत्तान्त सुनाया राजा को, नृपने फल स्वप्नका बतलाया ।
शुभ जन्म हुवा जब पुत्र का, राष्ट्र भरमें आनन्द छाया ॥

दो.— दान बहुत नृपने दिये, निर्धन किये धनवान ।
नाम धरा फिर कुमर का, पवन जय गुणवान् ॥
शुभ लक्षण थे बत्तीस अंगमें, सर्व कलाके ज्ञाता थे ।
प्रणवीर कुंवर रणधीर पवन, बलवीर थे जग विख्याता थे ॥
माहेन्द्र पुर इक अन्य नगर था, भूप महेन्द्र वहां का था ।
थे सौपुत्र बलवान, और पुत्री का नाम अजना था ॥

दो.— पुत्री के वर के लिये, देखे राज कुमार ।
पवन कुमर विद्युन् प्रभ, थे कुबेर अवतार ॥
प्रथम टेवा विद्युत् का, महाराजा ने मगवाया है ।
शुभलग्न स्पष्ट करने के हेतु, पण्डित को दिखलाया है ॥
अष्टांग ज्योतिषी बतलाया, तप संयम चित्त लगायेगा ।
वर्ष अठारह की आयूमें, प्राणान्त हो जावेगा ॥

दो.— पवन जय निश्चय किया, छोड़ विद्युत उसी आन ।
तीन दिवस में कर दिया, शादी का सामान ॥
पवन जय तव कहे मित्र से, क्या तुमने देखी वाला ।
पहिले मुझको दिखला दे, जिससे विवाह होनेवाला ॥
एक घड़ी का चैन नही, विन देखे राज दुलारी के ।
कैसे है विलक्षण लक्षण, देखूं जाकर देश दुलारी के ॥

देखो री सखी अंजनादेवी, धर्मात्मा पुण्य निशानी है।
सुर नल कुबेर सम पति, पवनवर मिला अनूपम दानी है ॥
है राज दुलारी चन्द्र मुखी, सूर्य मुख पवन कुमार सखी।
अंजना है शीलवती तो पवन भी, वीरता का अवतार सखी ॥
चिर जिए युगल जोड़ी बाकी, सौंदर्य के है भण्डार सखी।
जगमें यशकीर्ति पायें शुकल, भारत के प्राणाधार सखी ॥

दो— मिश्र केशी कहे सखी, गुण भी देखो बीच।
विद्युत् प्रभ कहां केशरी, पवन जय कहां रीछ ॥
वसन्त तिलकाने कहा, तुम नही जानो भेद।
विद्युत् प्रभ स्वल्प आयु है, सरती नही उम्मेद ॥
चौथी बोली सोच समझकर, बात नही तू करती है।
कहां अमृत कहां जहर, सभी को एक भाव ही धरती है ॥
अपना ही तान अलाप रही, गौरव ना जरा पिछानती है।
यह संस्कार पिछले जन्मों के, तू बावली क्या जानती है ॥

दो.— वसन्त तिलका से फिर सखी, बोली कुछ झुंझलाय।
सुन मेरी तू बातको, वृथा ना घबराय ॥
स्फटिक रत्न सुकांच कहां, और कहां मुलम्मा कहां मणि।
राढ़ा मणि स्वर्ण मेल कहां, कहां हेम कहां लोहिताक्ष मणि ॥
कहा विद्युत् प्रभ चर्म शरीरी, कहां पवन जय भवधारी।
कहां गुलाब और फूल सेवती, केसूफूल लसन क्यारी ॥
सुनते ही व्याख्यान यह, हुवा पवन जय लाल।
तलवार खैंच करमें लई, बोला आंख निकाल ॥

चौ— बोला आंख निकाल मेरा, यह प्रेम नही रखती है।
अपमान मेरा सुन खुश होती, मन ही मनमें हंसती है ॥

चौसठ कला प्रविण, अंजना पहिले ही गुण आगर थी।
फिर भी विदा समय माताने, शिक्षा दई सुधाकर थी ॥

गाना न. १३

सिधारो लाडली मेरी, यह शिक्षा भूल ना जाना ।
यह शिक्षाप्रद वचन मेरे है, भोली भूल ना जाना ॥
पतिपूजा पति भक्ति है सच्चा धर्म नारी का ।
धर्म सम्बन्धी सब ग्रन्थों का, पढना भूल ना जाना ॥
न रखना खेद मनमें प्रेम, करना ननंद देवर से ।
सकल सम्बन्धियों का, मान करना भूल ना जाना ॥
ससुर सासु से लड़ना झगडना कुढना नही होगा ।
सदा मिल बैठ करना धर्म, चरचा भूल ना जाना ॥
पतिकी चरण धूली का, तिलक मस्तक चढ़ा लेना ।
पति पग पे सदा सिर को, निमाना भूल ना जाना ॥
आये गृह पे अतिथियों को, खिलाना प्रेम से भोजन ।
सती साधु को देना आहार, प्रेम भूल ना जाना ॥
कभी भूतों व प्रेतों से, न डरना भूल कर भी तुम ।
सदा छलियों के छलछिद्र से, बचना भूल ना जाना ॥
नहीं तावीज गन्डों को, भटकना दर पे पोपों के ।
किसी धूर्त के फन्दे में, ना फंसना भूल ना जाना ॥
किसी यंत्र या मंत्र तंत्र को, करना नहीं सेवन ।
यह जादू टूणे हैं सब, पोप लीला भूल ना जाना ॥
कभी सकट सताये तो, पढ़ो नमोकार मंत्रको ।
सदा अरिहन्त का शरणा, तू जपना भूल ना जाना ॥
शुक्ल आनन्द की वर्षा, सदा बर्षे तेरे गृह में ।
है कर्ता धर्म ही प्राणी की, रक्षा भूल ना जाना ॥

चौसठ कला प्रविण, अंजना पहिले ही गुण आगर थी।
फिर भी विदा समय माताने, शिक्षा दई सुधाकर थी ॥

गाना न. १३

सिधारो लाडली मेरी, यह शिक्षा भूल ना जाना ।
यह शिक्षाप्रद वचन मेरे है, भोली भूल ना जाना ॥
पतिपूजा पति भक्ति है सच्चा धर्म नारी का ।
धर्म सम्बन्धी सब ग्रन्थों का, पढना भूल ना जाना ॥
न रखना खेद मनमें प्रेम, करना ननंद देवर से ।
सकल सम्बन्धियो का, मान करना भूल ना जाना ॥
ससुर सासु से लड़ना झगडना कुढना नही होगा ।
सदा मिल बैठ करना धर्म, चरचा भूल ना जाना ॥
पतिकी चरण धूली का, तिलक मस्तक चढा लेना ।
पति पग पे सदा सिर को, निमाना भूल ना जाना ॥
आये गृह पे अतिथियों को, खिलाना प्रेम से भोजन ।
सती साधु को देना आहार, प्रेम भूल ना जाना ॥
कभी भूतों व प्रेतों से, न डरना भूल कर भी तुम ।
सदा छलियों के छलछिद्र से, बचना भूल ना जाना ॥
नहीं तावीज गन्डों को, भटकना दर पे पोपों के ।
किसी धूर्त के फन्दे में, ना फंसना भूल ना जाना ॥
किसी यंत्र या मंत्र तत्र को, करना नहीं सेवन ।
यह जादू टूणे हैं सब, पोप लीला भूल ना जाना ॥
कभी संकट सताये तो, पढ़ो नमोकार मंत्रको ।
सदा अरिहन्त का शरणा, तू जपना भूल ना जाना ॥
शुक्ल आनन्द की वर्षा, सदा बर्षे तेरे गृह में ।
है कर्ता धर्म ही प्राणी की, रक्षा भूल ना जाना ॥

दो— प्रेमभाव से विदा हो, आये निजस्थान ।
सुनो विचित्रता कर्म की, जरा लगाकर कान ॥
आदित्य नगरमें आते ही, रानी महलों पहुचाई हैं ।
और पवन जय नृप के दिलमें, बस वही रंजगी छाई है ॥
कर्म किसी के सगे नही यह, भग रग में करते हैं ।
इस कर्म जालमें फसे हुए, संसारी नित्य दु ख भरते है ॥

दो— बोली गोली से बुरी, तीखा आरा जान ।
आरा से बोली बुरी, कर देती घमशान ॥
बोल कुबोल न विसरे, शूल्य समा सालन्न ।
रति कभी न उपजे, प्रति दिन आर्तभ्रन्त ॥
ना कभी पासे जाए रानी के, ना उसको देखना चाहता है ।
अजना को दिन रात निरन्तर, यही रंजो गम खाता है ॥
निश दिन पडी झुरे महलों में, भेद सासु ने जब पाया ।
समझाया बहुविधि कुमर, पर ख्याल तलक भी ना लाया ॥

दो.— प्रहसित तव कहने लगा, तुम हो चतुर सुजान ।
किन्तु उचित तुमको नही, अजना का अपमान ॥
निन्दा उसकी होती है, जो शूरवीर रण से भागे ।
दृढ़ धर्मी वह कहलाता है, जो बुरा काम मनसे त्यागे ॥
वह मित्र दुष्ट जो छल करता, ब्रह्मचारी दुष्ट शील त्यागे ।
बुरा काम वह दुनिया में, जिसके करने से यश भागे ॥
वह नार दुष्ट जो तजे पति, है दूष्ट पति त्यागे नारी ।
वह भी दुष्ट जो न त्यागे बैर बदकार ना तजता बदकारी ॥
वह भी दुष्ट कहलाता है, जो निरपराधी को दुःख दे ।
तथा वह भी होता दुष्ट मित्र को, संकट में ना जो सुख दे ॥

दो.— समझाया सब तरह से, दे उपदेश विशाल ।
एक नही हृदय धरी, पत्थर बूंद मिसाल ॥
रावण का एक दूत तब, आ पहुंचा तत्काल ।
जो आज्ञा महाराज की, सभी बतलाया हाल ॥

दशकन्धर की यह आज्ञा है, दलबल लेकर जल्दी आवो ।
वरुण भूप नही माने आन, तुम जल्द सहायक बन जावो ॥
सग्राम महा नित्य होता है, और वरुण अति गर्वाया है ।
सुग्रीवादिक सब आ पहुंचे, अब आप को शीघ्र बुलाया है ॥

दो.— वरुण भूप के पुत्र में, शक्ति ला मकदार ।
खर दूषण को जिन्होंने, डाला कारागार ॥
है शक्ति में गम्भीर वरुण की, फौज का पार ना आता है ।
नहीं हलवे का खैर, बैर ना दिल से जरा भुलाता है ॥
सैना है कूंच को त्यार सिरफ, है देर तुम्हारे जाने की ।
अब रावण ने दिल ठानी है, शत्रु को स्वाद चखाने की ॥

दो— जंगी वस्त्र पहिन कर, हुवे भूप तैयार ।
झट रण तूर बजा दिया, हाथ लई तलवार ॥
तैयार पिता को देखकर, आये पवन कुमार ।
पिता लड़े संग्राम में, सुत को है धिक्कार ॥
अज्ञानी वह पुत्र रहे घर, पिता जाय संग्राम लडे ।
है अविनयी वह शिष्य, गुरु की आज्ञा के जो विरूद्ध पढ़े ॥
पिता नही है दुश्मन जो, बच्चों को नही पढ़ाता है ।
नहीं शूरमा है कायर, जो रण में पीठ दिखाता है ॥
नालायक वह बहु सदा, जो सास से टहल कराती है ।
बिनय रहित जो पुरुष, कीर्ति उसकी भी छिप जाती है ॥

मैं रहूं पिता संग्राम जाय, यह बात ना मुझको भाती है।
है कायरता का कर्म मुझे, इस कर्म से लज्जा आती है॥

दो.— हय गय रथ पायक सभी, हुवे विमान तैयार।
जंगी वस्त्र पहिन कर, मन में खुशी अपार॥
पता लगा जब नार को, आई दर्शन काज।
हाथ जोड़ कहने लगी, सुनो अर्ज महाराज॥
ना कभी आज्ञा भंग करी, ना तन मन से अपराध किया।
था केवल शरण एक आपका, क्यों उससे भी धिक्कार दिया॥
आप तो है रक्षक मेरे, फिर कसर कोई मुझ में होगी।
जिस अपराध से आपके, मन में नाराजी बैठी होगी॥

दो— पवन जय जब देखता, तिरछी दृष्टि डाल।
बिन पानी फूल के, महारानी का हाल॥
चमक दमक सब मुर्झाई, शृंगार नही कोई अंग में।
शुभ लक्षण जो पडे हुए वह, कैसे छिप सक्ते तन में॥
ताम्बूल ना कोई मिस्सी है, ना अजन आंख में लाती है।
फिर भी तो यह सुन्दर पुतली, हीरे की चमक दिखाती है॥

दो— आगे बढ रानी झुकी, गिरी चरण में आन।
आप मेरे भर्तार है, आप ही प्राण समान॥
एक आसरा चरणों का है, दोष क्षमा सब कर देना।
विजय आपकी हो रण में, फिर दासी को दर्शन देना॥
आप क्षमा के है सागर, और नारी मूढ़ अज्ञान हूं मैं।
बार बार तुम चरणों में इक मांग रही क्षमादान हू मैं॥

दो— पवन कुमर ने रोष में, धक्का दे किया बाद।
उस अपराध का अब, तुम्हें आने लगा स्वाद॥

उस समय क्या रसना गहने थी, अब चपर चपर जो चलती है।
बेज्जती सुनकर खुश होती थी, अब चरणी शीश मसलती है॥
ये क्या चारित्र फैलाया है, ऊपर से प्रेम दिखाती है।
जैसा तूने किया काम यह, उसका ही फल पाती है॥

दो— इतना कह कर कुमर ने, दिना बिगुल बजाय।
मान सरोवर जाय के, डेरा दिया लगाय॥
तिरस्कार पति ने किया, रानी चित्त उदास।
बैठ महल में ले रही, लम्बे लम्बे श्वांस॥

(गाना) अंजना का

दिया दुःख ये कर्म ने भारा, हुवा विमुख ये कन्त हमारा।
कोई दोष नजर नही आता, ना भेद कोई बतलाता॥
अब यही फिकर एक भारा, हुवा विमुख ये कंत हमारा।
मैंने पिछले भव के मांही, बडे पाप किये दुःख दायी॥
दम्पति के मन को फाडा, हुवा विमुख ये कंत हमारा।
जो सुनेगी मात हमारी, दुःख पायेगी अति भारी॥
मैंने किस के पल्ले डारा, हुवा विमुख ये कन्त हमारा।
पिहर पूछेगी सखियां मेरी, दु ख सुख की बात घनेरी॥
क्या कहूंगी हाल विचारा, हुवा विमुख ये कन्त हमारा।
अय कर्म दुष्ट हत्यारे, तेने कब के बदले निकाले।
बर्षे नयनों से जल धारा, हुवा विमुख ये कन्त हमारा॥

दो.— बसन्त तिलका ने कहा, रानी दिल मत गेर।
सभी ठीक हो जायगा, है कोई दिनका फेर॥
कभी भिखारी बने जीव, कभी राजन् पति बन जाता है।
कभी नरक दुःख भोगे जीव, कभी स्वर्ग महा सुख पाता है॥

जब उदय पाप कोई होता है, तो सबके दिल फिर जाते है ।
चढे पुण्य चरणों में गिरते, और ठोकरें खाते हैं ॥

दो — मान सरोवर पवन जय, सोया सेज मझार ।
चकवी पति वियोगमें, रोवे ज़ारो जार ॥
सुने रुदन के शब्द कुमर को, नीद नही कुछ आती है ।
पूछा मित्र प्रहसित कहो यह क्यों इतना चिल्लाती है ॥
इसकी चीख पुकार हमें, आराम नही करने देती ।
भर भर आती नीद आख में, जरा नही पडने देती ॥

दो — प्रहस्ति कहे यह, दम्पती रहता है संयोग ।
रजनी आ बैरन हुई, स्वामी हुवा वियोग ॥
सोच कुमर को आगई, काम्प उठा तत्काल ।
पत्ती की जब यह दशा, तो अंजना का क्या हाल ॥
इसी तरह वह रात दिवस रोती और कुरलाती होगी ।
हार श्रृंगार छोड़ सारे ना, खाती और पीती होगी ॥
पहिले तो कुछ आशा थी, पर अब निराश हो जावेगी ।
रण से वापिस आने तक, वह अपने प्राण गंमावेगी ॥

चौपाई- उसी समय प्रहसित से बोले । भाव सभी जाने के खोले ॥
सन्तोष बिना मर जावे नारी । है पतिव्रता राज दुलारी ॥

दो.— दोनों बैठ विमान में, आये तुरत आवास ।
रानी दुखमें ले रही, लम्बे लम्बे श्वांस ॥

दो — प्रहसित तब कहने लगा, रानी खोल कपाट ।
कुमर पवन जय आए है, लम्बी करके बाट ॥
रानी तब कहने लगी, कौन है हटो पिछाड ।
पहिरे है चारों तरफ, तू कहां महल मझार ॥

चौ.— कौन तू महल मंझार, पति मेरा संग्राम गया है।
छल बल करता कौन, मेरे तू महलों में आया है॥
पकड़ा दूंगी अभी यदि, मरना पसंद आया है।
बारा वर्ष हो गये पति ने, चरण नही पाया है॥

दौड— नाम ना सुनना चाहते, कहो कैसे घर आते।
मुझे तू क्यों वहकावे, भाग्य हीन मैं कहां पति
परमेश्वर दर्श दिखावे॥

दो.— रानीजी निश्चय तुम्हें, भ्रम और संताप।
बैठ झरोखे स्वामी के, दर्शन करलो आप॥

चौ— दर्शन करलो आप प्रहसित, मैं मित्र हूं स्वामीका।
तू है मेरी मात सती, मैं सेवक महारानी का॥
तेरे दुःख से आज दुःखी, हृदय अपार स्वामी का।
देखो दृष्टि डाल नयन, झरना हो रहा पानी का॥

दौड— कटक सब मान सरोवर, विमान से आए हैं घर।
लौट कर फिर जाना है, देरी का नही काम पता क्या
कब मुड़के आना है॥

दो— बैठ झरोखे अंजना, लगी देखने हाल।
निश्चय कर पट महल के, खोल दिये तत्काल॥
पवन जय प्रवेश हुवा तो, महाप्रसन्नता छाई है।
मेघ शब्द सुन घोरमोर, सममीठी कूक सुनाई है॥
थल पर मीन तडफती को, जैसे जल आके फरस रहा।
आषाढ के लगते ही जसे, बागड में पानी बरस रहा॥

दो— भद्रे! क्षम अपराध मम, दिया तुझे दुःख भूर।
दोष नही तेरा कोई, मेरा सभी कसूर॥

बिना विचारे किया काम मैं, मिला तुझे अनजान पति ।
और तू महान् गम्भीर समुद्र, शीलवती है पूरी ॥
अब आर्तध्यान तजो मन से, शीतल स्वभाव चन्दन तेरा ।
मैं हू कटुक जहर मानिन्द, पत्थर समान हृदय मेरा ॥

दो— ऐसी बातें मत कहो, लगता मुझ को पाप ।
मैं चरणों की धूल हूं, परमेश्वर प्रभु आप ॥
आप तो रक्षक है मेरे, मैं ही निर्भागि, नकारी हूं ।
कुछ दोष नहीं महाराजा आपका, मैं कर्मो की भारी हूं ॥
जो भी है अपराध मेरा, सब भूल क्षमा करना चाहिये ।
मैं हूं नाथ शरीर की छाया, मुझे भूलाना ना चाहिये ॥

दो— दु ख फिकर जैसा नहीं, दुनियां में कोई रोग ।
खुशी प्रसन्नता सम नही, सुख का और सयोग ॥
दु.ख चिन्ता सब दूर हुई, अबदिल में अति हर्षाये है ।
फिर हसे रमे दम्पति प्रेम, दोनों ने अधिक बढ़ाए है ॥
जब लगा कुमर वापिस, जाने रानी ने गिरा सुनाई है ।
पास चिन्ह कुछ रखने को यह सब ही बात बनाई है ॥

दो— प्राणपति तुम तो चले, लड़ने को संग्राम ।
मुझको देते जाइये, उत्तर का सामान ॥
इस बात को सभी जानते है, नहीं कुमर महल में जाता है ।
फिर चले आप संग्राम यहा, नहीं मेरी कोई सहायता है ॥
मुझे निशानी दे दीजे क्यों कि, अपवाद से डरती हू
एक आसरा चरणों का, धर ध्यान गुजारा करती हूं ॥

दो— नामांकित दे मुद्रिका, पहुचे कटक मजार ।
फेर गये लंकापुरी, रावण के दर्बार ॥

रावणने दिया वरूण पे, अपना कटक चढाय
लगा घोर संग्राम फिर, रणभूमि में आय ॥
अंजना के होने लगे, प्रकट गर्भ आकार ।
गुप्तपने की बात भी, कोई न जाने सार ॥
पता लगा जब साम को, केतुमति तसुनाम ।
आग बबूला होगई गर्जी सिहनी समान ॥
अरि पापिनी अंजना, अंजन कैसा नाम ।
जैसा तेरा नाम है, वैसा तेरा काम ॥

चौ०— जैसा तेरा काम पापिनी, यह क्या कर्म कमाया ।
पुत्र मेरा प्रदेश दुराचारण, कहां उदर बढाया ॥
अरि कलंकिन निर्भागन, तैं कुल को दाग लगाया ।
कुमर गया नही महल, बताये किस का गर्भ धराया ॥

दौड — पतिव्रता कहलाती, जरा भी नही लजाती ।
डूब के मर जाना था या तो रखती शील नहीं यह
मुख नही दिखलाना था ॥

सासका गाना नं. १४

अय अंजना पापन महानिरभागिन, खोया है कुल गौरव मेरा,
माया चारी करी तेने भारी ॥
यदि सत्यहाल सुन पाऊंगी, तो दया भी तुजपर लाऊंगी ।
निर्मा की शकल बनाऊंगी, आयु तेरी निमवाऊंगी ॥
नहीं आफत तुजपर आयेगी, रो रो कर समय बितावेगी ।
इस घर में जगह न पावेगी, वन वनमें धक्का खावेगी ॥
उपर से भोली सुरत है, हृदय में महा कदुरत है ।
धिक्कार ये तेरी मुरत है, जो कुल मर्यादा चुरत है ॥

बदनामी का ढोल बजा दूंगी, दुनियां से तुझे मिटा दूंगी।
सम करके अभी दिखा दूगी, नाकों से चने चखा दूगी॥

अंजना का गाना न १५

तुहै लासानी-पुण्य निशानी-कायम रहे यह गौरव तेरा
हितकारी सासु हमारी-ध्रुव
किन्तु अंधी यह ताक्त है, जो लाती हम पर आफत है।
यह नौतर ही जो जाफत है, क्यों गला हमारा कापत है॥
क्या इस में तेरी बढाई है, गम्भीर तास भी भुलाई है।
दीनों पर करी चढाई है, जो प्रलय काल बन आई है॥
ना भरम की कही दवाई है, इसका अजामत वाही है।
तुज को अब बेपरवाई है, ऐश्वर्य में गरवाई है॥
कुछ कर्मों से डरना चाहिये, दुखियों का दुख हरना चाहिये।
यह कोप दूर करना चाहिये, देना सबको सरना चाहिये॥
सभ रौद्रध्यान यह दूर करो, विनंती हमारी मंजूर करो।
सब चिता दूर हजूर करो, चरणों से न हमको दूर करो॥

केतुमति-अय अंजना पापन, धिक्कार है तेरे सतित्व पर,
पतिव्रत पर, इस कृत पर॥

अजना- अरि प्रथम हृदय में तोलो। फिर कुछ बोलों बचन सुजान,
कर गुणवान सासुजी बोलो कुछ वचन सुधाकर,
कुछ खयालकर, सुन कान कर॥ ध्रुव

के— अरि उलटी हम पर धौस जमाकर बोलती जैसे नृत्यकर।

अ— निस कारण क्यों झगड़ा है।

के— क्या सुना नही।

अं — यह वृथा सब रगड़ा है ।
के — दुख मिला नहीं ।
अं — अरि होते है गभीर बडे नित्य निज कर्तव्यपर ध्यान धर ॥
के — कुल को कलंक तै लाया ।
अं — कहिये कैसा ।
के — कैसे ये उदर बढ़ाया ।
अ — चाहिये जैसा ।
के — अरी धिक्कार हजारोंकार, और धिकाधिक शिक्षक गुरु कृत्यपर ॥
अं — गुरु निन्दा सास न करना ।
के.— वकवाद न कर ।
अं.— कुवचन ना मेरे जरना ।
के - - अविनय से डर ।
अं.— गुरु निन्दक से ना डरूं, धरू ढोकर सुरपति अग्यानी पर ॥
के.— वस, जवान को कुलूप लगावो ।
अं — मैं चोर नही ।
के.— कुकर्तव्य पर पछतावो ।
अ — पति विन और नही ।
के.— माया चारन, व्यभिचारन, लानत है तेरी कुरीत पर ॥
दो.— सास धीर मन में धरो, सुनो लगाकर कान ।
गर्भ तुम्हारे पुत्र का, नही और का मान ॥

चौ० -- नहीं और का मान अगूठी, देख पास है मेरे ।
जिस दिन गये सग्राम, उसी दिन आये रात अंधेरे ॥
या मगवाले पता वहां से, यदि न निश्चय तेरे ।
कटुक वचन ना बोल सासु, लगते है काटे मेरे ॥

दौड— नाम बदनाम न करना, मुझे है तेरा शरणा ।
चरण में शीश निवाऊ, निकले दोष यदि मेरा तो
उसी समय मर जाऊ ॥

दो — गिरी गिराई मुद्रिका, लगी कही से हाथ ।
धक्का देकर सुत गया, आया बतावे रात ॥
जिसको नाम नही भाता, उसको आया बतलाती है ।
समझ दूराचारस तुझको, उसको माता भी नहीं बुलाती है ॥
कलकित करके दोनों कुल, फिर सती भी बनना चाहती है ।
निकल पापिनी यहा से, क्यों काला मुह नही कर जाती है ॥

दो — केतुमति ने उसी समय, सेवक लिये मगवाय ।
ले जावो इसके अभी, पिहर देओ पहुचाय ॥
यह कलंक यहां से ले जावो, महेन्द्र नृप को दे आना ।
यदि नही रखे तो वही इसे, धक्का देकर वापिस आना ॥
कह देना सब बात साफ, यह सती जो तुमने विवाही है ।
उन सब को तो डोब आई, अब तुम को डोबन आई है ॥

दो — सेवक जन लेकर गये, महेन्द्र नृप के पास ।
एकात बुलाकर के कहा, जो था मतलब खास ॥
जब सुना हाल दु ख बडा, झट दातो अगुल दबाई है ।
यह सुता नही शत्रु मेरी, कीर्ति सब धूल मिलाई है ॥
अब शीघ्र यहा से ले जावो, और विजन स्थान छोडो जाकर ।
ये आप ही मर जावेगी, अपनी करनी का फल पाकर ॥

दो - कैसे पाला था इसे, लाड चाव के साथ ।
मेरे गौरव का किया, इस दुष्टाने घात ॥

चौ०— अमृत से विष वेल, घन से विजली होती पैदा ।
दीपक से जैसे काजल तैसे यह मुझ से हुई पैदा ॥
सर्प कटी हुई अंगुली को, रखने से जहर पसरता है ।
इसी तरह इस को रखने से, अपयश मेरा बरसता है ॥

दो.— देख सका ना दुःख महा, मंत्री चतुर सुजान ।
राजा को कहने लगा, ऐसे मधुर जबान ॥
राजन् करना चाहिये, सोच समझकर काम ।
गुप्त महल रखो इसे, लेवो भेद तमाम ॥
ससुर गृह रुसे लडकी तो, पिहर में आ जाती है ।
यहां से आगे और कही पर, ठौर नही दिखलाती है ॥
जल में नही अग्नि होती, ना ज्ञान असंगी पशु में है ।
इस लडकी में कोई दोष नही, यदि है तो केवल सासु में है ॥

दो — मंत्री तुमको नही पता, पवन जय प्रदेश ।
यहां भी घृणा थी उन्हें, कारण कौन विशेष ॥
अपनी बेइजती पर मत्री, सब कोई पडदा पाता है ।
ऐसा कौन है दुनियां में, जो अपनी धूल उडाता है ॥
जब छिपी हुई यह बात नही, फिर कहो तो क्या बन सकता है ।
यदि वमन उछल गई छाती से, उसे रोक कौन जन सकता है ॥

दो.— आज्ञा पाकर भूप की, ले गये बन मंझार ।
बसन्तमाला और अंजना छोड दई निराधार ॥
दोनो उस वन खण्ड में, रोवें आंसू डार ।
व्याकुलता छाई अति, दर्शत कष्ट अपार ॥

अजना गाना न. १६

दु ख पड़ गया हमपर भारा, इस वेइजती ने मुझको मारा ।
बारा वर्ष पति की जुदाई, मुश्किल से बनी थी रसाई ॥

फिर गर्भ ये मैंने धारा । इस बेज्जती .. .. ॥१॥
फिर सासने ताने मारे, वो भी सहन किये मैंने सारे ।
आखिर काला मुंह करके निकारा, इस बेज्जती .. ॥२॥
पितापालक भी हो गया उलटा, माता भाई भी ना कोई सुलटा।
अबतो आशा भी कर गई किनारा, इस बेज्जती..... ॥३॥
जिस माता ने था जन्म धारा, हाय उसने दिया ना सहारा ।
पति भी परदेश सिधारा, इस बेज्जती... . . ॥४॥
खिला किस्मत का यह फिसाना, मेरा शत्रु बना कुल जमाना।
प्रभु तेरा एक सहारा, इस बेज्जती .. .. ॥५॥
कौन धीर बंधावे हमारी, इस बन खण्ड के मझ धारी ।
बिना धर्म ना कोई हमारा, इस बेज्जती..... .... ॥६॥
कहां संग की सहेली हमारी, पास रहती थी हर बारी ।
आज सबने किया है किनारा, इस बेज्जती .. ॥७॥

दो - (वसन्तमाला) रानीजी धीरज धरो, तुम हो गुण गम्भीर ।
रोने से कुछ ना बने, हरो धीर से पीर ॥

वसन्तमाला बहरे तवील गाना न १७

अरि रानी तू रोके सुनाती किसे,
बिना धर्म के कोई हमारा नही ।
आके कष्ट में कोई सहायक बने,
ऐसा दुनिया में कोई प्यारा नहीं ॥
रानी जब तक सरोवर में पानी रहे,
वहा चारों तरफ से आमेला भरे ।
सूखे पानी कोई ना चरण आ धरे,
उडता पक्षी भी लेता उतारा नहीं ॥

सारे माता पिता मित्र बन्धु कोई,
और सासु ससुर भाई दारापति ।
कोई मीठा वचन भी न कहता सती,
जब होता है पुण्य सितारा नहीं ॥
जिनराज भजो मन धीर धरो,
सिद्ध ईश्वर प्रभुका ही ध्यान करो ।
शुक्ल शोभन धर्म से ही पाप हरो,
बिना धर्म के होगा गुजारा नहीं ॥

अंजना गाना नं १८

कर्म चक्र ने निश्चय मुझे, दरदर रुलाया है ।
किसी का दोष क्या इसमे, लिखा कर्मों का पाया है ॥
किसी को आसरा देकर, निराशा कर दिया होगा ।
इसी कारण मेरी जननी ने, भी मन से भुलाया है ॥
सताई है अवश्य निर्दोष, कोई आतमा मैंने ।
मुझे व्यभिचारिणी कहकर, जो सासुने सताया है ॥
किसी प्यारी को प्रीतम से, जुदा मैंने किया होगा ।
यही कारण जो विरहानल, ने मन मेरा जलाया है ॥
विपत्ति सम्पति ऐश्वर्य, सुख दुःख और निर्धनता ।
स्वयं निज कर्म से प्रत्येक, प्राणी ने बनाया है ॥
इमानत में खयानत, शुक्ल मुझ से ही गई होगी ।
जो मुझ से मेरे जीवन, धन को कर्मों ने छुडाया है ॥

दो — दासी कहे रानी सुनो, यह बन खण्ड उजाड़ ।
रो रो कर मर जायगी, कुछ नही निकले सार ॥

चौ — कुछ नही निकले सार, शेरचीतादि खा जावेंगे ।
चलो अगाडी निकल कही, विश्राम फेर पावेंगे ॥

पाल गर्भ हो पुत्र तेरे, दुःख सभी भाग जावेंगे ।
पुत्र का मुख देख देख, मन अपना बहलावेंगे ॥

दौड़— धर्म है एक सहाई, ना कर चिन्ता मन मांही ।
ध्यान ईश्वर का लावों, पंच परमेष्ठी हिये धार
रानी मत दिल घबरावो ॥

दो — दोनो आगे बढ़ चली, निर्जन बन घन घोर ।
हिंसक जीव फिरें अति, बोल रहे कही मोर ॥
एक मुनि वहां गुफा में, खडे लगाकर ध्यान ।
दासी से रानी कहे यह, क्या देख पहिचान ॥

दो -(दासी) आते हैं मुझ को नजर, है कोई मुनि महान् ।
निश्चय कर मैंने कहा, करते आत्म ध्यान ॥
श्वेत वस्त्र हैं जैन मुनि, मुखपर मुख पत्ती लगी हुई ।
दो हाथ लटक रहे नीचे को, और दृष्टि ध्यानमें जमी हुई ॥
ये लाखों में नही छिप सकते, निग्रन्थ मुनि अति श्रेष्ट यति ।
वस अब समझो की आन जगी, महारानी अपनी पुण्य रति ॥

दो -(रानी) दर्शन हों निग्रन्थ के, निश्चय कटते पाप ।
दासी मेरी फड़कती, वामी शुभ है आख ॥

गाना न १९

समझ ले अब विपत्ति, दूर सारी होनेवाली है ।
जाग आयेगी शुभ किस्मत, मुसीबत सोनेवाली है
मुनि के चल करें दर्शन, हाल पूछेंगे कर्मो का ।
श्री जिनवाणी मेरे, आज मलको धोनेवाली है ॥
पुण्य मेरे उदय आये, पाप सब दूर जायेंगे ।
कृपा अरिहन्त भगवान् की, बीज शुभ बोनेवाली है ॥

रत्न सम्यक्त्व है मुझ पर, शील सन्तोष भी कायम।
पुनि संगति मेरी यह आज, कालिस खोनेवाली है॥
विपत्ति और अटवी में, अनुपम लाभ यह पाया।
मेरे इस धर्म गौरव को भी, दुनियां जोहनेवाली है॥

चौपाई– उसी समय मुनि पास सिधाई। दर्शन कर रानी सुखपाई॥
धन्य जन्म प्रभु तुमने धारा। आप तरें औरों को तारा॥
मैं दुःखियारी निर आधारा। धर्म रूप आसरा तुम्हारा॥
चरण कमल प्रभु शीश नवाऊं। अनमोल समय यह कब पाऊं॥

दो– विधि सहित वन्दना करी, करके अति गुण ग्राम।
थकी हुई थी बैठ कर, लगी लेन विश्राम॥

चौपाई– दासी ने फिर शीश निवाया। कर वन्दन निज हाल सुनाया॥
कारण कौन प्रभु बतलावो। कर्म भेद सारा दर्शावो॥
कलंक लगा किस कारण भारी। जिसने हम पर विपदा डारी॥
अमित गति चारण मुनि बोले। कर्म सिद्धांत भेद सब खोले॥
अनंत कर्म कहा तक बतलावो। कुछ जन्मों का हाल सुनावें॥

दो– सुन ले रानी कान धर, कर्म बीज वट वृक्ष।
जिसका फल तुम भोगती, दोनों ही प्रत्यक्ष॥
जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में, मन्दरपुर वर नगरी कहिये।
प्रिय नन्दी एक वणिक्, जया नामक जिस की नारी लहिये॥
पुत्र नाम सागर तिसके, बाग भ्रमण एक रोज गया।
दर्शन करके श्री मुनिराज के, सम दम खम की खोज हुवा॥

दो– निर्मल व्रत को पाल के, दूजे स्वर्ग मंझार।
रूप वैक्रिय धार के, भोगे सुख अपार॥

नगर मृगांक हरिचन्द्र नरेश्वर. प्रियगु लक्ष्मी रानी ।
स्वर्ग छोड़ रानी के जन्मा, सिंह चन्द्र सुत सुख दानी ॥
पुन देव लोक पहुचे, तप सयम शुभ करनी करके ।
आगे सुनो वृत्तान्त इसी का, फिर जन्मा जहा आ करके ॥
बैताड़ गिरि है अरुण पुर, भूप सुकण्ठ उदार ।
कनकोदरीरानी भली, रूप कला सुखकार ॥
कनकोदरी के पुत्र हुवा था, नाम सिंहवाहन जिसका ।
राज सम्पदा भोग फेर, सयम में ध्यान हुवा तिसका ॥
विमल नाथ के शासन में, लक्ष्मीधर मुनि थे तपधारी ।
पास उन्ही के सयम लेकर, तप संयम किया अतिभारी ॥

दो — शरीर औदारिक छोड के, लतक स्वर्ग मंझार ।
मन इच्छित भोगे वहा, जिसने सुख अपार ॥
पूर्ण करके वह सुर की आयु, गर्भ तेरे में आया है ।
सुख दायक सन्देशा अजना, यह पहिले तुम्हे सुनाया है ॥
इस पुत्र के पैदा होते ही, सब दु ख तेरा नस जायेगा ।
और पूर्व से भी अधिक, तेरे हृदय में सुख बस जायेगा ॥
चर्म शरीर जीव इसी भव में, यह मोक्ष सिधायेगा ।
यह नाम प्रसिद्ध करे तेरा, अति शूर वीर कह लायेगा ॥
अब हाल तेरा बतलाते है, यहा कनक रथ एक राजा था ।
थी कनका पुरी राजधानी, नीति से राज्य चलाता था ॥

दो. — कनकोदरी लक्ष्मीवती दो थी जिसके नार ।
कनकोदरी के सुत हुवा, रूप कला शुभकार ॥

चौपाई- लक्ष्मीवती सुत दिया न कोई । पुत्र विरहमें माता रोई ॥
भेद मिला सुत लिया निकाल । बारा घडी दु ख हुवा मुहाल ॥

हुई बेज्जती और कर्म बन्धाया। उसका फल रानी तू पाया॥
फिर लक्ष्मीने धर्म शुद्ध पाला। पहिले स्वर्ग सुख अधिकरसाला॥

दो.— देव लोक सुख भोग के, आई तू इस धाम।
पवन जय है पति मिला, अजना तेरा नाम॥
वसन्ततिलका यह बहिन तेरी, थी इसने प्रशंसा अति करी।
सामूदानी कर्म भोगनको, यह भी तेरे साथ वरी॥
जो कोई दु ख दे औरो को, वह कभी नही सुख पाता है।
वस्मा जैसे कभी नही, मेंहन्दी जसा रग लाता है॥

दो — अशुभ कर्म रानी तेरा, होने वाला दूर।
मामा आन मिले तुम्है, मिले सभी सुख भूर॥
पति भी आन मिले जल्दी, मत घबरावो मनमें रानी।
गगन गति कर गये मुनि, चारण कह कर शीतल वाणी॥
रानी ने चरण धरा आगे, एक सिंह सामने जबर खड़ा।
वह देख शेर को घबराई, जैसे हृदय पर वज्र पड़ा॥

दो — शरण ले अरिहन्त का, पढ़न लगी नवोकार।
उधर खडा है शेर वह, इधर खडी है नार॥
शील धर्म का तेज शेर, नही आगे पैर बढाता है।
अनमोल श्री जिन धर्म, सभी आपति दूर भगाता है॥
मणि चूड एक विद्याधर, उस वनमे गया विचरने को।
और अष्टापद का रूप किया, अवलाओं का दु ख हरने को॥

दो — अष्टापद के रूप को, देख भगा वह शेर।
रानी भी आगे बढी, तनिक न लाई देर॥
आगे जाकर आ गया, सुन्दर एक स्थान।
दासी रानीने वहां, किया देख विश्राम॥

शुभ नक्षत्र लगा आन, रानी ने पुत्र जाया है ।
रूप रंग को देख स्वयं, चन्द्रमा भी शर्माया है ॥
प्रसन्न चित्त हो रानी भी, अपने मन में हर्षाई है ।
वर्तमान निज दशा देख, कुछ दिल में आर्ति आई है ॥

दो— हाय आज बन खण्ड में, मैं दु खियारी नार ।
राज महल लेता जन्म, होती खुशी अपार ॥

गाना न. २०

लाल मेरे बेटा मेरे ओछे है भाग-(स्थायी) ।
पिता आज तेरा आता, तुझे हृदय लगाता ।
उत्सव अधिक मनाता, तेरा कर अनुराग ॥
नारी मंगल गाती, हाथों धाइयें खिलाती ।
नानी भूषण पहनाती, लागी लेते सब लाग ॥
कैदी सब छूट जाते, दान शाला मंडाते ।
ले ले बधाइयां आते, गाते मंगल राग ॥
लेता जन्म राज धानी, करता सैर विमानी ।
पिता साथरानी, मम दिल होता बाग बाग ॥
बन बन फिर हारी, मैं हूं कर्मों की भारी ।
शुक्र दु ख यह भारी, लग रहा सीने पर दाग ॥

दो— विद्याधर प्रति सूर्य, जा रहा बैठ विमान ।
अबलाओं का रुदन सुन, ऐसे बोला आन ॥
कहो बहिन तुम कौन भयानक, निर्जन वन में आई हो ।
रही उदासी छाय वदन पर, क्यों इतनी घबराई हो ॥
कारण इसका बतलावो, और पता चिन्ह अपना सारा ।
तुम हो मेरी बहिन धर्म की मैं सच्चा वीरन तुम्हरा ॥

गाना नं २१

बताए क्या भला तुम को, निशां अपना पता अपना ।
नही ससार में कोई, नजर आता सगा अपना ॥
न माता न पिता कोई, न सासु ही बनी अपनी ।
पत्नि जिनकी बनी थी मैं, नही वह भी बना अपना ॥
नही पातालमें आकाशमें, तिरछे मे टोह अपनी ।
रही एक सिद्ध शिला बाकी, वहां पर वास ना अपना ॥
ठिकाना बेठिकानों का, किसी वनमें ना उपवन में ।
निरासा मात है अपनी, दर्द दु ख है पिता अपना ॥
जगत भरने तो ठुकराया, भुलाये भुलना चिन्ता ।
शुक्ल में ढूढ हारी ना मिला, कोई सखा अपना ॥

दो — (प्रतिसूर्य) समझ लिया मैंने, तुम्हे है आपत्ति भूर ।
कहो यथार्थ बात जो, करूं सभी दु ख दूर ॥

दो (वसन्ततिलका)-पवन जय भर्त्तार है, माहेन्द्र नृप तात ।
केतुमती सासू सही, हृदय सुन्दरीमात ॥
नाम अजना रानी का मै हूं, वीरन दासी इसकी ।
नही सासरा पिहर हमारा, तो फिर आस करें किसकी ॥
पवन जय संग्राम गए है, केतुमति घर कंकाली ।
कलंक दिया घर बाहर निकाला, यह हम पर विपदा डाली ॥

दो.— प्रति सूर्य कहने लगा, नयनों में भर नीर ।
मैं पुत्री मामा तेरा, धारो मनमें धीर ॥

चौपाई- पुत्र भानजी सखी समेत । बैठे विमान अति दिल हेत ॥
निज नगरी को चला महाराय । हर्ष हृदय में नही समाय ॥

दो.— विमान बीच एक झूमका, सुन्दर शब्द रसाल ।
बच्चा लेने उछलता गिरा, धरन तत्काल ॥
माता हुई उदास बदन के, रग ढग सब बिगड गये ।
किया रुदन अपार मात क्या, सब ही के दिल धडक गये ॥
गिरा समझ पर्वत ऊपर, जीने से सभी निराश हुए ।
प्रास पखेरु समझ लिया, अब इसके परभव वास हुए ॥

दो.— उसी समय विमान को, नीचे लिया उत्तार ।
देखा बच्चा शिला पर, करता सुख संचार ॥
कुमर गिरा जिस शिला पर, हो गई चकनाचूर ।
कहे मामा पुण्यवान् यह, महाबली अति शूर ॥
उसी समय ले किया प्यार फिर, शीघ्र मात के अक दिया ।
जरा मात्र ना लगी चोट यह, समझ नाम वज्रग दिया ॥
माताने लेकर बच्चे को, अपने हृदय लगाया है ।
वह खुशी कथन नही कर सकते, फिर आगे पेंच दबाया है ॥

चौपाई- आ उत्सव हनुपुर में कीना । मामे दान खोल कर दीना ॥
कैसे कहें अद्भुत छवि-न्यारी । घर घर मगल गावें नारी ॥
हनुपुर नगर दशोठन भारी । हनुमत नाम दिया सुखकारी ॥
अपर नाम श्री शैली प्रधान । कल्प वृक्ष सम सुख समान ॥
राजहंस जिम क्रीडा करे । बत्तीस लक्षण शुभ अंग परे ॥
सुत को देख मात सुख पावे, दाग देख अति मन में लजावें ॥

दो — और दु ख सब हट गये, सुख मिल गया अमोल ।
दु ख एक बाकी रहा, जो सिर चढा कुबोल ॥
धन्य घडी धन्य भाग वही, जब पति मेरा घर आवेगा ।
रही समुद्रडूब वही, कालस आ दूर हटायेगा ॥

सत्य मेरे प्रगट होगा, यह दाग पति आ धोवेंगे ।
धक्के दिये जिन्होंने मुझ को, लज्जित अन्त्यम होवेंगे ॥

दो.— पवन जय नृप वरुण से, जीता दल में जाय ।
हर्ष हुए दिल में अति, सब प्रशंसें आय ॥
प्रस्थान किया सबने वहां से, रावण लंका में आया है ।
और पवन जय ने आन पिता, माता को शीश नवाया है ॥
जब पता लगा निजरानी का, हृदय पर वज्रपात हुवा ।
झट गिरा धरन पर मूर्च्छित हो, पितु माता को संताप हुवा ॥

दो — निर्दोष को दुख दिया, अन्याय किया तें मात ।
विना मौत मारा उसे, मेरी कर दई घात ॥

चौ०— मेरी करदई घात मात, तैने यह पाप कमाया ।
बारह वर्ष सहा दुख जिसने, अन्तिम धक्का खाया ॥
पहिले देकर दोष फेर, तनें पिहर पहुंचाया ।
इसका फल अब समझ मात, तूने पुत्र नही जाया ॥

दौड— कहां देखू अब जाई, शेर चीते ने खाई ।
मरूं अब मार कटारा, निर्दोषन को दिया दुख
मैं महापापी हत्यारा ॥

दो — मात पिता तथा मित्र ने, लिया कुमर समझाय ।
देखन को चारों तर्फ, दिये विमान दौड़ाय ॥
अजना के पितु मातसे, पता लिया नृप जाय ।
महेन्द्र नृप ने कहा, वन खण्ड दी पहुंचाय ॥
साले आदि चले सभी, सब स्थानो में खोज करी ।
पैदल फौज फिरे वन वन, विमान शहर और गिरि गिरि ॥

नही पता चला कुछ रानी का, तब पवन जय घबराया है ।
और पास बुलाकर मित्रको, अपना सब भेद बताया है ॥

दो — मित्र कहो जा मातसे, मम अन्तिम प्रणाम ।
मिली नही अंजना सती, करू वास सुर धाम ॥
समझाया मित्रने पर, नही कुमर एक मनमें ठानी ।
फिर शस्त्र सब लिये मांग, प्रहसित बोल मीठी वाणी ॥
चला वहां से माता को, जो था सब हाल सुनाया है ।
सुन गिरि धरन मुर्छित हो के, इतने में राजा आया है ॥

दो — हो सचेत कहने लगी, मैं पापिनी निर्भाग्य ।
बधु गई पुत्र चला, लगी कलेजे आग ॥

गाना नं २२ (महारानी केतुमति)

जो सतावे और को, सुख वह कभी पाता नही ।
आन अब मुझ पर बनी, यह दु ख सहा जाता नही ॥
मैंने सताई अंजना, पुत्र मेरा मरने लगा ।
राज गारत हो सभी, यह दुःख मुझे भाता नही ॥
बेटा प्रहसित तूनें कभी, मित्र जुदा किया नही ।
आज क्या होनी बनी, क्यो जाके समझाता नही ॥
छोड तू आया अकेला, घात प्राणों की करे ।
फिर शुक्र मैं क्या करू, कुछ भी कहा जाता नही ॥

दो.-(प्रहसित) माताजी मैं क्या करूं, समझाया हर बार ।
जब मैं कुछ न कर सका, तब आ करी पुकार ॥
शस्त्र तो मैं ले आया, करे और ढग कुछ खबर नही ।
था दिल में बैचेन उसे, कोई घडी पलक का सब्र नही ॥

शीघ्र बैठ विमान चलो, जाकर उनको समझायेंगे ।
यदि हुई देर अपघात करे, कर मलते ही रह जावेंगे ॥

दो — इतने में ही आ गया, हनुपुर से विमान ।
अंजना का जो था पता, सभी बताया आन ॥
राजा रानी और मित्र, प्रहसित पवन जय पे आये है ।
था जलने को तैयार चिता मे, देख सभी घबराये है ॥
शीघ्र कुमार को हटा लिया, लक्कड सब दूर हटाये है ।
हनुपुर है अंजना रानी सब भेद खोल दर्शाये है ॥

दो (प्रहलादनरेश) शूर वीर योधा बली, क्षत्रिय राजकुमार ।
नारी पीछे जान दे, यह का करी विचार ॥

दो (पवनजय) अबला पीछे मरन का, मम नही पिता विचार ।
निर्दोष को दुःख दिया, यही कष्ट अपार ॥
इतने कष्ट दिये सबने, नही रोष फिर भी लाती है ।
अवगुण तज लेती गुण सब के, पूर्ण सती कहाती है ॥
पतिव्रता विनयवान् पूरी है, मानन्द शीतलचदन के ।
धर्मदृढ दुःख सहने में, ऐसी जैसे तरुवर बनके ॥

दो — पवन जय आदि सभी, हनुपुर हुए तैयार ।
बैठ विमान में चल दिये, दिल में खुशी अपार ॥
खेचर ने जाकर कहा, हाल अजना पास ।
दुःख पति का सुन हुई, मन में अति उदास ॥
क्या मैं पापिन ऐसी जन्मी, जो सब को ही दुःख दायी हूं ।
सुख नही देखा एक दिवस का, जिन दिन की परणाई हू ॥
फिर नही ऐसा कर्म करू, मुनिराज ने जो बतलाया था ।
कर्म बीज हो गये गिरि, कुल बारह घडी कमाया था ॥

दो.— प्रति सूर्य भूपालने, लिया विमान सजाय ।
अजना सुत दासी सभी, बैठे मन हर्षाय ।।
गये सामने मिलने को, मित्र प्रहसित की नजर पडी ।
झट बोले देखो पवन कुमर, यह दासी रानी दोनों खडी ।।
इतने में ही आन मिले, तो खुशीका ना कोई पार रहा ।
मिले प्रेमसे आपस में, सुख दु ख का सारा हाल कहा ।।

दो.— हाथ जोड़ अजना सती, गिरि चरण में आन ।
पति देव का इस तरह, करन लगी गुण गान ।।

गाना न २३ (अजना)

मेरे तुमही इष्ट देव, दूसरा ना कोई । (स्थायी)
बिन पति पत लाज गई, सासु ससुर ने त्याग दई ।
कोटी विपत्ति नाथ सही, यह दुर्गति भई ।। १ ।।
दर्शन बिन नाही चैन, खोजत थके राह नैन ।
दीन दु खी करत बैन, रेन दिवस रोई ।। २ ।।
जब से पिया रूठ गये, कोटी प्रभु कष्ट सहे ।
गौरव गुण नष्ट भये, विपत बेल बोई ।। ३ ।।
आवो पिया पधारो पिया, दर्शन दिखावो पिया ।
नेत्रों की ज्योत शुक्र, वाट तकत खोई ।। ४ ।।

दो.— हनुमान के रूप को, देख मोहित नर नार ।
सभी लाल को प्रेम से, लेते हाथ पसार ।।
उसी समय ले पिता पुत्र को, हृदय तुरत लगाया है ।
पुण्य सितारा देख कुमर का, पवन जय हर्षाया है ।।
कोई शीश चरण चूमे उसके, कोई प्रेम से लाड लडाता है ।
कोई करे लाड की बातें और, कोई लेकर गोद खिलाता है ।।

दो — मात पिता भाई वहिन, सम्बन्धि परिवार ।
सभी हनुपुर आ गये, मिलते भुजा पसार ॥
भीड एकत्रित हुई वहुत, सब अजना के गुण गाते है ।
याचक लोग सभी खुश होकर, जय जय शब्द सुनाते है ॥
उत्सव अधिक हुवा भारी, दस दिन तक मंगलाचरण रहा ।
सब क्षमा मांगते अंजना से, महासति शब्द गुंजार रहा ॥

दो — क्षेम कुशल वर्ती वहां, सभी प्रसन्न महान् ।
फिर वहां से प्रस्थान कर, पहुंचे निज स्थान ॥
आठ बर्ष का जब हुवा, हनुमान सुकुमार ।
गुरु कुल में पढने लगे, विद्या ही गुण सार ॥
सौलह वर्ष पढी विद्या, सब बहत्र कला का ज्ञान हुवा ।
शस्त्र कला शास्त्र वेत्ता, शूर वीर बलवान हुवा ॥
वरुण भूप दशकन्धर का, फिर से युद्ध अगार हुवा ।
आज्ञा पा दशकन्धर की नृप पवन जय तैयार हुवा ॥

दो.— पवन जय प्रति सूर्य लगे युद्ध में जान ।
सन्मुख आ हनुमान ने, करी चरण प्रणाम ॥

चौ०— करी चरण प्रणाम, आपकी प्रेमाज्ञा पाऊं मैं ।
स्वयं विराजें सिहासन, संग्राम पिता जाऊं मैं ॥
वरुण भूप को कुचल कुचल कर, अभी वापिस आऊं मैं ।
धरोपीठ पर हाथ मेरे, क्षत्री सुत कह लाऊं मैं ॥

दौड— धसूंगा जब जा रण में, मचे खलबल्ल सब दल में ।
क्षत्रीय का बच्चा हूं, देवो मुझे आसीस नही रण
के फन में कच्चा हू ॥

दो— आज्ञा पा भूपाल की, चला वीर हनुमान ।
सुग्रीवादिक भूपति, मिले युद्ध में आन ॥
लगा घोर संग्राम होन, फिरे दलबल का कोई पार नहीं ।
नभ में लडे विमान और, चलते है अग्नि के बाण कही ॥
वरुण भूप के पुत्रों ने, दशकन्धर नृप को बांध लिया ।
जब लगे उठाने रावण को, हनुमान ने आकर रोक दिया ॥
दो— वरुण सुतों पर डालकर, नाग फांस का जाल ।
दशकन्धर को हनुमान ने खोल दिया तत्काल ॥
क्रोधातुर हो वरुणभूपने, हनुमान को फिर घेर लिया ।
लिये सहायता के राक्स ने, निज दल आगे ठेल दिया ॥
वज्रन्ग चढे जब तेजी से तो, सभी वरुण दल घबराया ।
चिन्ह दिया झट सन्धी का, है समय समय की सब माया ॥
दो— मान सभी मर्दन हुवा, अन्तिम मानी हार ।
शर्ते रावन की सभी, करी वरुण स्वीकार ॥
वरुण भूप की कन्य का, सत्यवती शुभ नाम ।
परणाई हनुमान को, समझ वीर अभिराम ॥
अनग कुसुमा शूर्पनखां की, पुत्री रूपवती प्यारी ।
वह हनुमान को परणाई, रावण ने समझा हितकारी ॥
वानर पतिने निज पद्म, सुरागा पुत्री वज्रन्ग को व्याही ।
शूरवीर अति बली समझ, राजों ने पुत्रिया परणाई ॥
चौपाई- आदर पा हनुमत घर आया । मातपिताको शीश निवाया ॥
भोगे सुख पूर्ण संसारी । धर्म जिनेश्वर अति हितकारी ॥

(जनकपरिचय)

दो.— मिथुला नगरी अति भली, हरिवंशी राजान ।
वासव केतु भूपति, विफ्ला नार सुजान ॥

तेज बड़ा रवि तुल्य है, नाम जनक जग जोय ।
प्रजा पाले प्रेम से, पिता सरीखा होय ॥

रामचन्द्रोत्पत्ति वर्णन

दो.— जिस कुल में पैदा हुवे, श्री रामचन्द्रजी आन ।
हाल सुनो क्रम से सभी, हुए जो हैं राजान् ॥

चौ.— जम्बू द्वीप दक्षिणार्ध, अयोध्यापुरी राजधानी थी ।
आदीश्वर आद्य नरेश, जिन्होंने दया मुख्य मानी थी ॥
सुनन्दा सुमंगला नृप के, दो सुन्दर रानी थी ।
निन्यानवें पुत्र सुमंगला के, हुए बडी जो पटरानी थी ॥

दौड— सुनन्दा के बाहूवल, एक ही सिह अतुल बल ।
बडा भरतेश्वर ही था, वज्र ऋृषभ संहनन जिन्हों का
रूप अति सुन्दर था ।

दो.— पुत्र बहुत भरतेश के, बडा सूर्य यश नाम ।
राज तिलक उसको हुवा, शूर वीर बलवान् ॥
सूर्य यश से सूर्य वंश, शुभ नाम प्रसिद्ध हुवा भारी ।
क्रम से भूप अनेक हुवे थे, शूर वीर पर उपकारी ॥
मुनि सुव्रत स्वामी के समय थे, विजय नरेश्वर बलधारी ।
पुरन्द्र वज्र बाहु दो नंदन, हेम चूला तिस की नारी ॥

चौपाई- नगर आदितपुर अति अभिराम । हेम वाहन राजा का नाम ॥
चूड मणि नामक पटनारी । पुत्री मनोरमा अति सुखकारी ॥
वज्र बाहु संग किया विवाह । मंगलाचार हुवा उत्साह ॥
नव वधु कुमर एकदिन लाया । उदय सुन्दर सालासंग आया ॥
मार्ग में मुनि सागर पाया । देख कुमर ने शीश नवाया ॥
कर गुणग्राम चरण कर लाये । धन्य भाग शुभदर्शन पाये ॥

दो.— उदय सुन्दर हांसी करी, लेवो संयम भार ।
बार बार यह ना मिले, मनुष्य जन्म अवतार ॥

दो (**वज्रबाहु**) तुम भी क्या तैयार हो, लेने को यह भार ।
इससे बढकर है नही, दुनियां में कोई सार ॥

दो (**उदयसुन्दर**) चार महाव्रत धार लों, मैं भी हूं तैयार ।
देरी का क्या काम है, यही वचन का सार ॥
राजकुमर फिर मुनि पास से, सयम व्रत को धारण लागा ।
उदय सुन्दर यह देख हाल, फिर पीछे को भागन लागा ॥
बोला यह बात हास्य की है, विवाह का जरा विचार करो ५
रोवेगी बहिन मेरी पीछे, मुझपर ना यह संताप धरो ॥

दो (**वज्रबाहु**) कुलवन्ती यह है सती, मन में फिकर ना धार ।
वचन ना तोडे शूरमा, तोडे मुढ गंवार ॥
क्षत्री नहीं कहलाता है वह, जिसे वचन का पास नहीं ।
है उसका यदि प्रेम धर्म से, होगी कभी उदास नहीं ॥
जन्म मरण का अन्त नहीं, फिर सदा यहां किसने रहना है ।
शुभ अवसर मिले ना बार बार, बस यही हमारा कहना है ॥

दो.— समझ लिया संयम बिना, मिले नहीं निर्वाण ।
चार महाव्रत धार के, किया आतम कल्याण ॥
विजय भूप को पता लगा, वैराग्य भाव दिल आया है ।
पुरन्द्र सुत को दिया राज, तप संयम में चित लाया है ॥
पुरन्द्र भूपने निज सुत कीर्ति-धर को ताज सजाया है ।
फिर छोड दिये जंजाल सभी, तप संयम ध्यान लगाया है ॥

दो — कीर्ति धर नृप का सदा, रहता चित्त उदास ।
मंत्रीश्वर कहने लगा, अय भूप ना तज रणवास ॥

चौपाई– जव घर नन्दन जन्में आई। तव संयम लेना नृप राई ॥
जिस के पीछे नही सतान। उसका घर श्मशान समान ॥

दो – मत्री की यह वात सुन, लिया भूप मन मोड।
वोला सुत होगा तभी, देवेंगे मोह तोड ॥
सह देवी के पुत्र हुवा, नही भेद वताया रानी ने।
पर ऐसी नही यह चीज हमेशा छिपे कहीं राजधानी में ॥
लगा पता जव भूपति को, तो जन्म उत्साह किया भारी।
सुत अपने को दिया राज, और आप वने संयम धारी ॥

दो.– जिन वाणी हृदय धरी, करते उग्र विहार।
पुरी अयोध्या आ गये, विचरंत वह अणगार ॥
सुना आगमन मुनि का, रानी मन दुख थाये।
प्रथम राज को तज गया, कहीं अव ना सुत ले जाय ॥
अन्य फकीर वुलाये रानी, जटा जूट जक्कड धारी।
दिनरात जहां उड़ता सुलफा, और वम दम शब्द रहे जारी ॥
फिर उन से कहा यह रानीने, यह साधु शहर वाहिर कर दे।
यदि तंग करे तुमको कोई, तो मुझ को झट खवर कर दो ॥

दो – अव तो फिर क्या ढील थी, चढे वह भंगड नाथ।
नगर वाहिर मुनि कर दिया, धक्कम धक्के साथ ॥
जव सुनी वात यह जनता ने, तो दिल में दुःख हुवा भारी।
यह दशा देख कर वावो ने, की रानी से आहो जारी ॥
शांत भाव मुनिराज रहे, न क्रोध जरा भी आया है।
और उधर धाय माताने, भूप सुकोशल को समझायाहै ॥

दो – विचरत मुनि आया यहां, वेटा तेरा तात।
नगर वाहर करवा दिया, ऐसी तेरी मात ॥

लाड चाव के साथ में, पाला तेरा बाप ।
हाय आज इसको दिया, रानीने संताप ॥
सुकोशल ने जब सुने, धाय मात के वैन ।
दारुण दुःख हृदय हुवा, भर आया जल नैन ॥
अहो खेद माता ने पिता, मुनि दुःख दे बाहिर निकाला है ।
फिर है संसार से त्यागी वह, संयम व्रत जिन्होंने पाला है ॥
फसे जो प्राणी दुनियां में, उसका होता मुंह काला है ।
मिले मोक्ष सुख उसे गायन, जो प्रभु का करने वाला है ॥

दो.— हुवा तैयार नृप जान को, उसी समय मुनि पास ।
विरक्त भाव मन में लगी, संयम की अभिलाष ॥
चित्र जय माला रानी ने, निज पति से विनय उचारी है ।
राजवंश बिन सुत के स्वामी, कैसे चले अगाडी है ॥
जा पुत्र तेरे गृह जन्मेगा, भूपाल ने ऐसा बतलाया ।
राज तिलक देना उसे, रानी मेरे मन संयम भाया ॥

दो.— मंत्री के सिर पर धरा, सभी राज का भार ।
आप पिता के पास जा, संयम व्रत लिया धार ॥
जब सुना मात सहदेवीने, झट गिरी धरन मूर्छा खाकर ।
वह आर्तध्यान के वशी भूत, मर बनी सिंहनी अति भयंकर ॥
सुकोशल और कीर्तिधर, मिल पिता पुत्र यह दोनों मुनि ।
तप संयम में लीन हुए, शुभ शुक्ल ध्यान में लगी ध्वनि ॥

दो.— चातुर्मास के बाद फिर, कर दिया उग्र विहार ।
आन मिली वह सिंहनी, मार्ग के मंझ धार ॥
मुनिवर बोले सुनो शिष्य, यह अति परिसह आया है ।
अब होने दो मुझ को आगे, तप संयम बहुत कमाया है ॥

बोला शिष्य मैं-कायर कैसे बनूं, जब आपका शिष्य कहाता हूं।
और करू तुम्हें डर कर आगे, इस बात से मैं शर्माता हू ॥

दो.— पीछे कर निज गुरु को, आगे हुवा मुनि वीर।
आई सिहनी कूदके, लक्ष्य पे जैसे तीर ॥
मुनि समाधी लीन ध्यान, क्षपक श्रेणी का लाया है।
जिस सुत को पाला माता ने, बस आज उसी को खाया है॥
ब्रह्मज्ञान अन्तिम पाकर, मुनि जा निर्वाण सिधाया है।
कीर्तिधर ने भी अन्तर पा, अक्षय मोक्ष पद पाया है ॥

दो— चित्र जय माला नार ने, जाया सुन्दर नन्द।
हिरण्य गर्भ नामे भला, शत्रु कन्द निकन्द ॥
हिरण्य गर्भ के नार है, मृगावती शुभ नाम।
नधुक नाम का सुत हुवा, दु खि जन को विश्राम ॥
हिरण्यगर्भ भूपाल ने, देखा श्वेत सिर केश।
विरक्त भाव मन में हुवा, सुन यम दूत संदेश ॥
दिया नधुक को ताज भूपने, आत्म कार्य सारा है।
रानी सिहका नधुक भूपके, रूपरंग कुछन्यारा है ॥
शास्त्र कलाकी थी ज्ञाता, पतिव्रता धर्म बजाती थी।
लिये पति के करूं न्योछावर, प्राण तलक यह चाहती थी ॥

दो— उत्तर दिशा भूपाल का लगाहोन संग्राम।
दक्षिण आक्रमण किया, एक शत्रुने आन ॥

चौ.— एक शत्रुने आन तुरत, रानी ने करी चढ़ाई।
शत्रु को पराजय करके, अपने महलों में आई ॥
भूप नधुक ने जब रानी की, बात सभी सुन पाई।
देख वक्र व्यवहार, दुराचारणा नृपने ठहराई ॥

दौड़— फौज कम नही हमारी, युद्ध में गई क्यो नारी ।
बेज्जती का कारण है, कहे नपुंसक हमको दुनिया
रानी गई लड़न है ॥

दो— कुछ विरुद्ध रहने लगा, रानी से महाराय ।
भ्रम छेदने क्ता रही, रानी सोच उपाय ॥
एक समय महाराज को, उत्पन्न हो गई दाह ।
औषधि ना कोई लगे, दिलमें दुःख अथाह ॥
रानी किया विचार भ्रम, राजा का दूर हटाऊं अभी ।
निश्चल हो वीजाक्षरों से, किया नमोकार का जाप तभी ॥
मैं पतिव्रता यदि पूर्ण हूं, कोई अन्य पुरुष नहीं वांछा ।
तो मम हाथ फेरने से, पतिदेव मेरा होवे अच्छा ॥

दो.— रानी ने यह बात कह, फरसा नृप का अंग ।
रोग तुरत भागा सभी, गरुड से जिमे भुजग ॥
भ्रम दूर नृपका हुवा, मन में खुशी अमूल ।
पूर्ववत् राजा हुवा, रानी के अनुकुल ॥
पुत्र हुवा महारानी के, सौदास नाम रक्खा जिसका ।
दिया पुत्र को ताज क्यो कि, सयम में ध्यान हुवा नृप का ॥
अष्टाइक उत्सव करके, श्री जिनवर का गुण गाया है ।
जीव न कोई मारे ऐसा, नृपने हुकम सुनाया है ॥

दो.— सौदास नृप को कुव्यसन था, एक कुसग अनुसार ।
हर घडी मदिरामांस से, रखता था पावह प्यार ॥
देख समय मन्त्रीशने, दी शिक्षा सुखकार ।
नही राजों का कर्म यह, जो पकडा व्यवहार ॥

चौ.— पूर्व पुरुष हुए जितने भी, मास नही खाया किसीने भी ।
अभक्ष पदार्थ जो कोई खावे, धर्म नष्ट हो नरक में जावे ॥

ऊपर से नृप करी सफाई, अन्दर वसया मांस मन माही।
भृत्य पाचक बोले नृपराई, मांसबिना क्षण रहा ना जाई॥

दो.— अय पाचक यदि तू मुझे, आज खिलाये मांस।
पारितोषक देऊं तुझे, पूरूं मनकी आस॥

चौ — अति अन्वेषण किया भृत्यने, मांस नही कही पाया है।
और भृतक एक मिला बच्चा, बस उठा उसीको लाया है॥
बना दिया वह ही भृत्यने, जिस समय भूप ने खाया है।
कई गुणा बढ़कर आगे से, स्वाद अति तर आया है॥

चौपाई- एक शिशु नृप नित्य मरवावे। पाया भेद मंत्री समझावे॥
दुष्ट कर्म यह सुन महाराई। तडफें पिता जिनके और माई॥

दो — समझाया मंत्रीश ने, नही माना भूपाल।
राज पुरुष प्रजा सभी, बिगड़ गये तत्काल॥
एक रंग होकर सब ने, सीमा से बाहिर नृप राज किया।
सिंह रथ पुत्र उसके को, प्रजाने मिलकर राज दिया॥
दक्षिण दिशि सौदास गया, वहां मुनि मिला एक तपचारी।
करी चरण प्रणाम मुनि थे, ज्ञानी बाल ब्रह्मचारी॥

चौपाई- दिया उपदेश मुनि हितकारी। मदिरामांस पाप महा भारी॥
यहां बेइज्जती परभव दुःख कारी। नरकों में अति होय ख्वारी॥
सुन परभव दुःख नृप घबराया। तब मुनिवर ने नियम कराया॥
अशुभ कर्म के बने सुत्यागी। पुण्य दशा पूर्वक जागी॥

दो — नगर महापुर मे गये, वहां के जो मंत्रीश।
नृप हीन प्रजा सभी, चाहते थे कोई ईश॥
सौदास देख बत्तीस लक्षण, सब प्रजा के मन भाया है।
योग्य समझ दे पंचदिव्य, सिंहासन पर बैठाया है॥

अब लगा सितारा बढ़ने को, नृप अमर बेलवत् छाया है ।
और देख समय अब नगर अयोध्या अपना दूत पठाया है ॥

दो — दूत आन कहने लगा, सिंहरथ के पास ।
हुक्म आपको है दिया, नृपराए सौदास ॥
मैं वैसे भी हूं पिता तुम्हारा, सेवा कर मेरी आकर ।
या रण भूमि में आ जावो, बस कहूं साफ मैं समझाकर ॥
स्वीकार किया नही पुत्र ने, सौदास चढा दलबल लेकर ।
उधर अयोध्या पति सिंहरथ, आया तुरत बिगुल देकर ॥

दो — रणभूमि में जुट गये, पिता पुत्र दो वीर ।
पराजय सुत दल में हुवा, जीता पिता आखीर ॥
हुवा प्रेम उत्पन्न पुत्र को, हृदय से ला प्यार किया ।
दोनों राज्य दिये सुत को, और आप मुनिव्रत धार लिया ॥
इस अवसर्पणी काल में, सूर्य वंश-महा प्रधान हुवा ।
प्रत्येक भूप इस वंश का, अन्त्यम संयम ले निर्वाण हुवा ॥

दो — राज तिलक जिनको मिला, आगे उनके नाम ।
अनुक्रम से सुन लो सभी, शूर वीर अभिराम ॥
ब्रह्मरथ नृप चतुर्मुख, हेमरथ सत्य रथ ।
उदय पृथु वारि शशी, आदिरथ समर्थ ॥
माना भ्राता समर्थ बली, वीर सेन शुभ नाम ।
प्रत्युमन्यु अति शूरमा, पद्मबन्धु सुख धाम ॥
रतिमन्यु मन श्रेष्ठ है, वसंत तिलक नरेश ।
कुवेर दत्त कुंथु सर्भ, द्विरद और विशेष ॥
सिंह दर्श दिलपाक हरि, कसि पूजी सुखदाय ।
पूज्य स्थल प्रोढो शशि, और ककस्थ रघुराय ॥

चौपाई- कोई मोक्ष स्वर्ग गया कोई । सूर्य वंश बडा जग जोई ।
पुरी अयोध्या अणरन्य राजा । प्रजा का सारे सब काजा ॥
अनन्त रथ दशरथ दो सुत याके। पुण्यवान् सुत दोय पिता के॥
राज तिलक दशरथ को सजाया। अणरन्य ने संयम चित लाया॥

दो.— अणरन्य और अनन्त रथ, सहस्रांशु नृप साथ ।
लीन शुक्ल शुभ ध्यान में, सफल जायें दिन रात ॥

एक मास की आयुमें, दशरथ को मिला ताज ।
चंद्र कला सम बढ रहा, दिन प्रति दल बल साज ॥
शस्त्र शास्त्र आदि सभी, बहत्र कला का ज्ञान ।
विनय विवेक विचार सब, पण्डित चतुर सुज्ञान ॥
यौवन वय प्राप्त हुवा, शूर वीर बल धार ।
दाता भोक्ता और गुणी, वसुधा यश विस्तार ॥
दर्भ स्थल का भूप सुकोशल, अमृत प्रभा रानी जिस के ।
इन्द्राणी अवतार अनूपम, अपराजिता सुता तिसके ॥
दशरथ नृप को परणाई, जहां उत्सव हुवा अति भारी।
प्रेम परस्पर दम्पतिमें, जैसे के समझ क्षीर वारि ॥

दो.— मित्र सुभू भूपाल के, सुशीला रानी जान ।
सुमित्रा पुत्री भली, चौसंठ कला निधान ॥
विवाह हुवा जिसका दशरथ से, भूपने प्रीति दान दिया ।
ग्राम प्रान्त सेवक जन भी, देकर उत्तम सन्मान किया ॥
पूर्व पुण्य प्रगटा आकर, दिन दिन प्रति वृद्धि पाता है ।
उधर ज्योतिषी से रावण, निज हाल पूछना चाहता है ॥

दो.— एक दिवस रावण-प्रभु, बैठा सभा मंझार ।
ज्योतिषी से तब प्रश्न यूं, किया समय विचार ॥

परदारा सम्बन्ध से, करे मेरी कोई घात ।
सभी असम्भवसी लगी, मुनिकथन की वात ॥
तीन खण्ड में बतलावो, कोई है मुझको मारन वाला ।
सुनते ही नाम मात्र मेरा, योधापर छा जाता पाला ॥
असुर भी आज कांपते है, फिर मनुष्य मात्र है चीज ही क्या ।
मसल दिये सब ही काटे, और सहस्त्र एक साधी विद्या ॥

दो.— निमन्तक तब कहने लगा, सुनो श्री महाराज ।
सदा किसी का ना रहा, आयु साज समाज ॥
यही अनादि नियम अटल है, कभी सवेरा श्याम कभी ।
बने सुरपति पुण्य उदय, हो हीण पुण्य खुस जाय सभी ॥
चक्रवर्ती से चल गये, ना जिसम किसी के साथ गया ।
राज खजाने गए छोड़ था, जिसका भाग्य सभाल लिया ॥

गाना न २४

पैदा हुवा जो महिपर, अन्तिम वह एक दिन जायगा ।
फूल खिलकर बाग में, आखिर को वह कुम्हलायगा ॥
यह महल मन्दिर और खजाने, सब पड़े रह जायगें ।
डेरा बने परभव में जा, जब काल सिरपर आयगा ॥
राज पाट और फौज पलटन, मित्र गण के देखते ।
सामने बंधुजनों के, काल तुमको खायगा ॥
अग रक्षक पुत्र रानी, क्या सहायक जन सभी ।
इनके द्वारा ही यह तन अग्नि में डाला जायगा ॥
हो रहा खुश देख सम्पत्ति, सो सभी काफूर हो ।
आप जैसों का पता नही, आपका कहा पायगा ॥

दो.— इन्द्रादिक भी ना रहे, मनुष्य मात्र क्या चीज ।
उलट पलट ससार का श्री जिन भाषा बीज ॥

जनक सुता के हेतु भूप, दशरथ सुत तुमको मारेगा ।
तीन खण्ड का बने अधिपति ताज शीश निज धारेगा ॥
लगे सभी अट अट हंसने, उसका उपहास्य उड़ाते है ।
तब वीर बिभीषण सभा मध्य, अपने यों भाव सुनाते हैं ।

दो – दशरथ को और जनक को, परभव देऊं पहुचाय ।
उत्पति होवे नहीं, वीज दग्ध हो जाय ॥
नाश करूं दोनों का जाकर, झूठा इसे बनाऊंगा ।
सब देऊं खटका मेट भ्रात का, तभी अन्न जल पाऊंगा ॥
थे नारद जी वहां विद्यमान, सुन बात सभी मिथिला आए ।
और भाव विभिषण के नारद ने, जनक भूप को बतलाए ॥
फेर अयोध्या में आकर के, दशरथ को समझाया है ।
भयभीत हुवा यहां रघुवंशी, मिथिलेश वहां घबराया है ॥
तब मंत्री ने यह समझाया, तुम लिये यात्रा के जावो ।
हम ठीक सभी कुछ कर लेगें, पीछे का भय तुम मत खावो ॥

दो.— भेष बदल कर चल दिये, छोड राज घर बार ।
पीछे मंत्रीने किया, अद्भुत एक विचार ॥
लेप मयी तस्वीर एक, दशरथ की मूर्ति बनाई है ।
रंग आदि भर के सब ही, सिहासन पर बैठाई है ॥
अद्भुत ढंग रचा ऐसा, पहिचान कौन कर सकता है ।
वरणन क्या हम करे ना, दम शंका का कोई भर सकता है ॥

दो — यही ढंग मिथिलापुरी, जनक भूप का जान ।
समय देखकर आ गया, वीभिषण चढ विमान ॥
वैठ विमान विभीषण ने, इक घूम गगन में लाई है ।
झपट वाजवन् देख समय, अपनी तलवार चलाई है ॥

फेर व्योम में दौड गए, थी मंत्री की हथ फेरी सब ।
पकडो पकडो दुष्ट गया वह, मारके नृपको जानसे अब ॥

दो— ज्ञान था मत्री को सभी, शत्रु गगन मंझार ।
निश्चय दिलवाने निमित्त, शुरु किया व्यवहार ॥
अंग रक्षक सेवक योधे, सब मारेमारे फिरते है ।
सब रुदन करें रानी सेवक, जन जरा धीर नहीं धरते है ॥
सिहासनपर पडा भूप, बस रक्त ही रक्त हुवा सारे ।
शब्द भयानक हाहाकारके, रोते है बाधव प्यारे ॥

दो.— संस्कार मृतक किया, मंत्री ने तत्काल ।
देख विभीषण चल दिया, मन में खुशी कमाल ॥
यही अवस्था करके जनक की, जा रावण को बतलाया ।
जो खटका था सो मिटा दिया, दशकन्धर मन में हर्षाया ॥
यह मंत्री के अतिरिक्त भेद ना, और किसी ने पाया है ।
उधर फिरें दोनों राजे. अपना सर्वस्व बचाया है ॥

दो— कौतुक मंगल नगर में, शुभ मति है भूपाल ।
पृथ्वी रानी की सुता कैकयी रूप विशाल ॥
द्रोण मेघ था पुत्र भूप के, शूर वीर अति बल धारी ।
रचा स्वयंवर लड़की का, आडम्बर बहुत किया भारी ॥
बडे बडे भूपति आये, स्वागत की आतितार रहे ।
लगी खबर यह दशरथ को, मनमें यों सोच विचार रहे ॥

दो— सूर्य वंशी नित्य से रहे, सब राजों के सिरताज ।
पुण्य हीन निर्भाग्य हम, गणना में नहीं आज ॥
खेद आज सूर्यवशिन को, नौता तक नहीं आया है ।
क्या मैं ही ऐसा जन्मा जिसने, वंश का नाम लजाया ॥

जिस होनी से कल होना है, वह आज ही क्यों ना हो जावे।
आन ना जावे वश की चाहे, मेरी जिन्दगी खो जावे ॥
पर गणना में नही नाम हमारा, कैसे स्वागत पावेंगे।
ख्याल नही इस बात का भी, तलवार से जगह बनावेगें ॥
बन का राजा सिंह कहाता, किसने उसको ताज दिया।
यह उसके पराक्रम का फल है, जो ईश सभीने मान लिया ॥
जो कोई हमसे अन्याय करे, तो झगड़े से क्या डरना है।
यह गौरव हीन का दुनिया में, जीने से मरना अच्छा है ॥
यही सम्मति जनक भूप की, अवश्यमेव चलना चाहिये।
व्यवहार को जिसने तोड़ दिया, तो उस खल को दलना चाहिये ॥

दो — दोनों मित्र चल दिये, सहमत हो तत्काल।
ठाठ बाट चाहे न्यून था, पर था पुण्य विशाल ॥
वहा जा बैठे यह भी दोनो, जहां कुछ सिंहासन खाली थे।
और बडे बडे भूपति बैठे, जिनके सेवक रखवाली थे ॥
थी मान में गर्दन ऊपर को, कानों में कुंडल पडे हुए।
शुभ सच्चे मोती हीरो से, मानों थे सारे जडे हुए ॥
जब समय हुवा वर माला का लाखों नर नारी साजे है।
शशि समान हुए दशरथ जी, बाकी तारोवत्-राजे है ॥

दो. — आरम्भ हुवा व्यवहार अब, बैठे चतुर सुजान।
अपने अपने पुण्य की, होने लगी पहिचान ॥

चौपाई - आई मण्डप राज दुलारी। दासी संग सहेली सारी ॥
राजो के प्रतिबिम्ब दिखावे। धाय मात ऋद्धि बतलावे ॥
सोलह श्रृंगार सहज अग मांही। सोलह ऊपर अधिक सुहाई ॥
देख रूप सब का मन मोहे। इन्द्राणी सम छवि अति सोहे ॥

दो— मन ही मन यो सब कहे, धन्य वही भूपाल ।
जिस की यह रानी बने, डाल गले वर माल ॥
दशरथ नृप मन में बसा, पहनाई वर माल ।
हरि वाहन नृप जल गया, चढा रोष विकाल ।

चौ— चढ़ा रोब विकाल है, किसको वरमाला पहिनाई ।
तमाश वीन कोई खड़ा आन, गिनती राजों में नाही ॥
दे वरमाला भाग यहा से, इसमें तेरी भलाई ।
नही मार तलवार अभी, गर्दन की करू सफाई ॥

दौड़— चूक लड़की ने खाई, भूलकर तुझे पहि नाई ।
देर अब जरा ना करना, यदि नही परभव पहुचाऊं
तुझे ना यहां कोई शरणा ॥

दो— अनुचित बातें जब सुनी, दशरथ भूप उदार ।
ललकारे यो सिह सम, सहसा ले तलवार ॥
क्या आंखे काढ़ काढ़ कायर, सूर्य को चमक दिखाता है ।
और धमकी देकर प्रवल सिहसे, वरमाला को चाहता है ॥
भाग यहा से जान बचा, मरना स्वीकार क्यों करता है ।
सूर्यवंशी सिह कभी क्या, गीदड से भी डरता है ॥

दो— देख तेज रणधीर का, शुभ मति करे विचार ।
यह मामूली व्यक्ति नही, शूर वीर वलधार ॥
बन चुका जमाई मेरा अब, इस लिये पक्ष लेना चाहिये ।
रणतूर बजाकर मानभग, इनका सबकर देना चाहिये ॥
उसी समय रणभूमि में, सब जुटे शूरमा आ करके ।
हो गये बहुत रण भेंट वीर, कई गिरे मूर्छा खा करके ॥

दो.— दशरथ नृप का सारथी, गिरा धरन में जाय ।
देख दृश्य यह कैकयी, मन में कुछ घबराय ॥

करी वेनती रानी ने, महाराज की आज्ञा चाहती हूं ।
सम्पूर्ण कला है ज्ञात मुझे, सग्रामी रथ चलाती हूं ॥
कृपया आपकी से देखों, मैं अपने हाथ दिखाती हूं ।
जीतो शत्रु दल को तुम, मैं बिकट को हवा बनाती हूं ॥

दो.— कवच पहिन रानी चढी, और दशरथ झूझार ।
सहसा दल में मच गया, हूं हूं हाहा कार ॥
पराजय होकर भागे शत्रु, विजय हुई दशरथ नृप की ।
खुशी हुवा बोला नृप रानी, मांगो जो मरजी मन की ॥
जो कुछ मांगोगी सो दूंगा, क्षत्री मैं कहलाता हूं ।
तेरी देख वीरता को मैं फूला नही समाता हूं ॥

दो.— रानी तब कहने लगी वर रक्खो भंडार ।
लेऊंगी प्रभु आपसे, जब होगी दरकार ॥
प्रेम भाव से दशरथ नृप को, शुभमति भूपने विदा किया ।
शूर वीर जामात समझ, दिल खोल द्रव्य और मान दिया ॥
मिथिलेश गया मिथिला नगरी, सब तरह मित्र का साथ दिया ।
राजगृही नगरी में जाकर दशरथ नृप ने वास किया ॥

दो.— कुछ नीति कुछ बुद्धि से, चढा पुण्य का जोर ।
आस पास के देश में, करी मित्रता और ॥
अपराजित और रानी, सब ही परिवार बुलाया है ।
शुभस्थान देख गद्दी, रचना कर हुकम चलाया है ॥
लगा पुण्य प्रति दिन बढने, जैसे घनघोर घटा छाई ।
शुक्ल पुण्य अनुसार समागम. मिलता है सब सुखदाई ॥

दो — सुख में सोती एक दिन, सुन्दर सेज मझार ।
महारानी अपराजिता, स्वप्न विलोके चार ॥
प्रथम स्वप्न में देखा हस्ती, अद्भुत चाल निराली है ।
मद झर रहा कपोल शब्द, गुजार छवि मतवाली है ॥
स्वप्न दूसरे में प्रबल सिंह, चिंहाड़ शब्द लहरें करता ।
उछल कूद चहुं ओर रहा, और नही किसी से भी डरता ॥

दो — ग्रहगणों का अधिपति, रोहिणी का भर्तार ।
उतरता आकाश से, चंद्रमा सुख कार ॥
चौथे स्वप्न में सूर्य आया, सहस्रांशु फैलाता हुवा ।
किया आन उद्योत उस समय, तेजी अति दिखलाता हुवा ॥
खुली आंख निश्चय करके, दशरथ नृप में आई रानी ।
हाथ जोड की नमस्कार, शीतल मुख से बोली वाणी ॥

दो.— रंग ढंग सब स्वप्न का, बतलाया तत्काल ।
खुशी की ना अवधि रही, सुना सभी जब हाल ॥
कहा सुन रानी कोई पुण्यवान, सुत जन्म तेरे उर पावेगा ।
नाम प्रसिद्ध करे अपना, और कुल का सुयश बढावेगा ॥
आधार भूत सब दुनिया का, अय रानी वह कहलावेगा ।
पर दुःख भञ्जन प्रेम सदा, सागर मानिन्द लहरावेगा ॥

दो — गर्भ दोष सब टालकर, करे पोष सुखकार ।
शुभ नक्षत्र में सुत हुवा, होने लगी जयकार ॥
कैदी दिये छूडाय खुशी में दान दिये नृप ने भारी ।
गायन नृत्य अति धूमधाम, घरघर मंगल गावें नारी ॥
पद्म चिन्ह से तन सोहे, शुभ नाम पद्म दिया सुखकारी ।
अभिराम लगने से फिर हुवे, राम नाम के अधिकारी ॥

दो— दूजी नार सुमित्रा, स्वप्न विलोके सात ।
सुखशैय्या आराम से, सोती पिछली रात ॥
प्रथम स्वप्न में हस्ती देखा, चारों ओर उछलता हुवा ।
प्रबल सिंह दूसरे आया, कुम्भ स्थल को दलता हुवा ॥
तीजे शशि रवी चौथे, आ अपनी चमक दिखाई है ।
धूम रहित शिखा अग्नि, शुद्ध नजर पांचवे आई है ॥

दो.— छठे सरोवर में कमल, खिले हुए शुभ रंग ।
रानी को ऐसा मिला, स्वप्ने में प्रसंग ॥
भरा समुद्र देख सातवें, रानी मन हर्षाई है ।
निश्चय कर फिर पति पास, जा सारी बात सुनाई है ॥
सुनते ही राजा के दिलमें, खुशी का ना कोई पार रहा ।
फल विचार स्वप्नों का नृपने, रानी को सब हाल कहा ॥

दो - रानी सुत होगा तेरे, प्रबल सिंह समान ।
तेज प्रताप सम रवि के, फैला पुण्य महान् ॥
शुभ पुण्य अहो रानी जिसका, सागर मानिन्द लहरायेगा ।
आधीन करे सब दुनियां को, अति शूर वीर कहलायेगा ॥
निर्भय सिंह हस्तियों में, अयसें यह दरजा पावेगा ।
जब उतरेगा रणभूमि में, तो सन्नाटा छा जावेगा ॥

दो — यथा योग्य नित्य पथ्यसे, रही गर्भ को पाल ।
मास सवानों में हुवा, आन अनूपम लाल ॥
देवलोक से चकर आया, पुण्यवान् योधा भारी ।
राजकुमार का रूप देख कर, प्रेम करें सब नरनारी ॥
नारायण शुभ नाम दिया, प्रसिद्ध लखन अति सुखकारी ।
उत्सव का कुछ पार नही, दशरथ नृप दान किया भारी ॥

॥ ॐ श्री वीतरागायनमः ॥

* श्री जैन रामायण द्वितीयभाग *

मंगलाचरण

दो — जिनवाणी नित्य दाहिने, अरिहन्त सिद्ध जगदीश ।
परमेष्ठी रक्षा करें, त्रिपद धार मुनीश ॥
अजर अमर अमूर्ति, निराकार भगवन्त ।
लोकालोकमें आपका, फैला ज्ञान अनन्त ॥

चौ — फैला ज्ञान अनन्त स्वय, सत्‌चित् आनन्द अविनाशी ।
फिरे भटकते जीव चराचर, पड़ी वर्मगल फासी ॥
सत्‌चित् निश्चय पास किन्तु, आनद की करें तलाशी ।
अज्ञान अन्धमें पडे जीव, नही पावें मोक्ष सुख राशी ॥

दौड.— विना जिन देव धर्म के, पाश नही कटे कर्म के ।
घूम सारे जग आया, विना तुम्हारे देव महाग
नही दूसरा पाया ॥

दो — भामण्डल सीता सुता, युगल पणे अवतार ।
प्रसन्न हुवा राजा जनक, और विदेहा नार ॥

चौक.— यह कर्म वडे वलवान् जीव को, खुशीमें दु ख दिखलाते है ।
करते प्राणी नेत्र वन्द कर, फिर पीछे पछताते है ॥
अव सुनोहाल भामण्डल का, जिसने आकर के जन्मलिया ।
होगया विरह वचपन से ही, नही माततात अन्नपान किया ॥

दो — जम्बू द्वीप भरत क्षेत्र में, दारुण नामक ग्राम ।
अनुक्रोशा का है पति, द्विज वसुभूति नाम ॥

चौक— अनुभूति है नाम पुत्र का, वधू सरसा सुखदायी है।
कयान विप्र ने मोहित होकर, सरसा स्वयं चुराई है॥
ढूंढन को पतिदेव गया, नही पता कही पर पाया है।
पीछे मोह वश गई मात, और सग पिता उठधाया है॥

दो.- जात वाम की फिर मिले, मिले लाल दुश्वार।
पुत्र के मोह में फिरें, दोनों होते ख्वार॥

चौ.— मार्ग में निर्ग्रन्थ मिले जिन, दुःख नाशक उपदेश दिया।
मोह कर्म सिर डाल धूल, देनों ने फिर भेष लिया॥
पहिले स्वर्ग पहुंचे जाकर, सुरपुर के सुख भोगे भारी।
आ जन्म लिया वैताडगिरी, फिर भी हुए दोनों नरनारी॥

कड़ा— प्यारेजी चन्द्रगति भूपाल नाम विद्याधर भारी।
पुष्पावती अभिराम, नाम सुन्दर तसु नारी॥

दो— सरसा नजर बचाय के, भागी अवसर देख।
संयम का शरणा लिया, अविचल रक्खे टेक॥

चौ.— दूसरे स्वर्ग पहुंची जाकर, अनुभूति विरह में भटका है।
अनमोल मनुष्य तन खो बैठा, भव चक्र गर्भमें लटका है॥
हुआ हंस बालक जाकर, हस्तीने ग्रहण कर फैंक दिया।
जा पड़ा मुनि के चरण में, नमोकार मंत्र का शरण दिया॥

चौपाई-देव लोक में पहुंचा जाई। वर्ष सहस्र दश आयु पाई॥
जीव कुसंगति से दु खपावे। शुभ संगति से सुख मिल जावे॥

दो.— विदग्ध नामक नगरमें, प्रकाश सिह महाराय।
रेवती नामक नार के, पुत्र जन्मा आय॥

चौ.— कुण्डल मण्डित नाम पुत्रका, सुन्दर जिसकी काया है।
अब सुनोहाल कयान विप्रका, जन्म जहां आ पाया है॥

चक्र ध्वज राजा चक्रपुरी का, धूमसेन पुरोहित जिसका।
स्वाहा रमणी है विप्राणी, पिंगल सुत कथान हुआ तिसका ॥

दो — करती थी नृप कन्यका, विद्याका अभ्यास।
पिंगल अति मोहित हुआ, देख रूप प्रकाश ॥

चौक.– समय देख अपहरण करी ज़ा, विदग्ध नगर निवास किया।
इस काम बाण ने बड़ों बड़ों का, अन्त में समझो नाश किया ॥
विदग्ध नगर के नरनारी, इस रूपपे आश्चर्य करते थे।
कई वशीभूत होकर मोह में, कुछ के कुछ शब्द उचरते थे ॥
कुंडल मंडित कुमर हाल सुन, घोडे पर चढ आया है।
देख रूप उस राज दुलारी, का मन अति हर्षाया है ॥
चारित्र मोहिनी उदय हुआ. सद्ज्ञान हृदय से दूर हुआ।
उस रूप की महिमा गाने लगा, जब राजकुमर मजबूर हुआ ॥

दो.— अतुल्य पुण्य इसने किया, मिला जो अद्भुत रूप।
किन्तु पति इसको मिला, अनपढ और कुरूप ॥

चौ.— अनपढ और कुरूप, यह किसने लालगये गल डाला।
साचे वाला ढाला जिस्म है अद्भुत रूप निराला ॥
इस कौवे गल नही शोभती, यह रत्नों की माला।
लू छीन इसे तो पिता मेरा. यहा का न्यायी भूपाल ॥

दौड़-- दिला वापिसी देगा, मेरा नहीं पत्त करेगा।
यही अब ढंग रचाऊ. ले पर्वत पर चढ़ दूर जाकर कही वास बनाऊं ॥

दो — जो कुछ आया हाथ में लेकर के सामान।
दोनों वहा से चलदिये * नग में किया मुकाम ॥

---

* पर्वत

चौक.—पीछे पिंगल फिरे भटकता, विरहने आन सताया है।
सिर पीट पीट कर हार गया, अन्तम संयम चित्त लाया है॥
सुधर्म देवलोक में पहुंचा, विराधक सुर पदवी पाई है।
कुडल मंडित ने यहां दशरथ के, राज्यमें धूम मचाई है॥
डाके और चोरी छल से, प्रजा को लगा सताने को।
इस तरह आसुरी वृत्तिसे, लगा अपना समय विताने को॥
बालचन्द्र दिया भेज भूप, दशरथ ने उसे पकड़ने को।
जो घेरा डाला सेनापति ने, डाकू चोर जकड़ने को॥
कुंडल मडित को फुरती से विषम स्थान में रोक लिया।
निज शक्ति और चातुर्य से, पकड बंधन में ठोक दिया॥
नियत समय पर कोतवाल, दशरथ के सन्मुख लाया है।
भूपाल ने रहस्य समझ, कुंडल मडित को यों समझाया है॥

दो (दशरथ)-विषय वासना जगत में, शत्रु महा कठोर।
अशुभ कर्म से बन गया, राजकुमर से चोर॥

चौ.— शिक्षा प्रद वचन हमारे है, मन से सब आर्तध्यान तजो।
इस दुष्ट विलासिता को तजकर, मनुष्य बनो जिन राज भजो॥
क्षमा सभी अपराध किया, तुम से न द्वेष हमारा है।
पहिचानो अपने गौरव को, इस में ही भला तुम्हारा है॥

।— शिक्षा देकर इस तरह, मन रिपुता से मोड।
कुंडल मंडित को दिया, दशरथ नृपने छोड़॥
उपकार मान नृप का, चला पहुचा निजस्थान।
कुंडल मंडित को रहे, नित्यप्रति आर्तध्यान॥

छंद— राज का रहे ख्याल निशदिन, सोच अति मन में करे।
ताज पाऊं राज का, मेरा पिता जल्दी मरे॥

अविनीत पन का ताज अब तो. सिर मेरे रखागया ।
जिस दिन से आया भाग अरु कुव्यसन यह चक्खागया ॥
मम बुद्धिपर परदा पड़ा और सोच सब मारी गई ।
अब राज की भी हाय कुंजी. हाथ से सारी गई ॥
रहता पिता के पास और, गुप्त रखता वाम यह ।
स्वामी बना रहता हमेशा, क्यों विगड़ता काम यह ॥

दो — इतने में आया नजर, मुनिचन्द्र ऋषि राय ।
कुमर जाय वंदना करी, चरणन शीस नवाय ॥
जो भी मन की बात थी, सभी दई बतलाय ।
सुनकर के मुनि ने दई. कर्म गति दर्शाय ॥

छंद— बोले मुनि हे कुमर तू, कुछ धर्म चित्त लाया नहीं ।
खेद अति है भय जरा, परभव का भी खाया नहीं ॥
प्रत्यक्ष तुझ को कुव्यसन का, फल तो यहां कुछ मिल गया ।
जो था सितारा पुण्य का, वह सब किनारा कर गया ॥
अब और जो कर्त्तव्य तेरा, यह नरक का प्रमाण है ।
बात चिते भूप की, यह दुष्ट तेरा ध्यान है ॥
देऊं तुझे शिक्षा समझ, तन मन से रखना पास यह ।
दोनों भवों में लाभ दायक छोडती नहीं साथ यह ॥
धर ध्यान श्री अरिहन्त का, अन्त करण निर्मल करो ।
द्वादश नियम कर गृहस्थ के, गुण ग्रहण में दृष्टि धरो ।

दो — सागारी व्रत मुनि से. लिये कुमर ने धार ।
किन्तु इच्छा राज की. रहती मन मंझार ॥
इसी विचार में मरा अन्त आ जनक भूपके जन्म लिया ।
सरसा ब्राह्मण की पुत्री. बन फिर तप नियम से ध्यान दिया ॥

पहुंची* ब्रह्म लोक जाकर, वहां दीर्घ काल आराम किया ।
सुर आयु भोग विदेहा, रानी के सीता अवतार लिया ॥

❀ सीता भामंडल जन्मोत्सव ❀

दो.— जनक भूपने जब लखा, राज कुमर का रूप ।
रानी से फिर उस समय, यों बोले वर भूप ॥
पुण्य उदय अपना हुआ हुआ, आज अति सुखकर ।
युगल पने आकर हुवा, पैदा राजकुमार ॥

चौ— पैदा राजकुमार खुशीका, अवसर मिला जवर है ।
देख देख मुख इनका रानी, आता नही खबर है ॥
क्या जन्में आकर नल कुबेर, कुछ लगती नही सबर है ।
दमक रहा भानु मानिन्द, मस्तक जैसे इन्द्र है ॥

दौड़— बलूद सितारा इनका, समान कोई नही जिनका ।
रूप क्या तेज निराला, देखो रानी बहन भाई क्या एक ही सांचे ढाला ॥

दो — राजा प्रजा सब खुशी, घर घर मंगलाचार ।
जनक भूप ने दान के खोल दिये भंडार ॥

चौक— उत्सव का कुछ पार नही, अति खुशी सभी दिलछाई है ।
और जय जयकार की, ध्वनी सहित, ही सबने आन बधाई ॥
धाइयां पांच लगी पालन, सब आगे पीछे फिरते है ।
अब होनहार के आगे चल, देखो क्या रंग विखरते है ॥

❀ पिगल देव द्वारा भामडल का अपहरण ❀

दो— पिगल का जो जीव था, पहिले स्वर्ग मंझार ।
अवधिज्ञान से एक दिन, देखा दृष्टि पसार ॥

---

* पांचवे देव लोक

चौक— देखा दृष्टि पसार देव के, क्रोध वदन में छाया ।
पूर्व वैरी समझ आन, भामडल तुरत उठाया ॥
देऊ इसको मार, देव के मन में यही समाया ।
राज कुमार का पुण्य प्रवल, यो असुर सोच मन लाया ॥

छद— मारूं यदि इस वालको, महापाप लगता है मुझे ।
छोडू यदि जीता इसें, यह भी नही जचता मुझे ॥
वाल हत्या है वुरी, रुलता फिरू ससार मे ।
कौनसा अव ढंग करू, जिससे लेऊ निज खार' में ॥
रक्खूं गिरी वताढ्य पर, वहा से न कोई लायगा ।
खा जायगा कोई श्वापद,† या स्वय मर जायगा ॥

चन्द्रगति विद्याधर का भामडल को उठाना

दो— देव वहां से चल दिया, रख शिला पर लाल‡ ।
उधर भ्रमण को आगया, रथनुपुर भूपाल ॥

गौ— चन्द्र गति रानी समेत, विमान बैठकर आया है ।
जव देखा वच्चा पर्वत पर, राजा मन में हर्षाया है ॥
लिया उठा कर कमलों में, तो खुशी का न कोई पार रहा ।
दे दिया गोद में रानी के, घडियों तक देता प्यार रहा ॥

दो (चन्द्रगति) वोला अरु रानी पुत्र विन, सूना था सव राज ।
पुण्य उदय तेरा हुआ, आज सरे सव काज ॥

गौ— इसके समान नहीं रानी, कोई नजर दूसरा आता है ।
भामडल नाम धरें इसका, वस यही मेरे मन भाता है ॥
दावी कला विमान की, झट रानी महलों में पहुचाई ।
पुत्र जन्मा महारानी ने, सव जगह वात यह फैलाई ॥

वैर † हिंसक पशु ‡ वच्चा

दिल खोल भूप ने दान दिया, और उत्सव अधिक मनाया है।
बदी छौड दिये सारे सब समुह हर्षाया है ॥
लगा पुत्र वृद्धि पाने, दिन दिन अतिकला सवाई है।
अब हाल सुनों मिथिला का, जहां कर्मो ने चाल चलाई है ॥

मिथिला मे शोक —

दो.— जनक भूमि की दासियां, रही चडोल* दुलाय।
कोई देती है लोरिया, कोई रही झुलाय ॥

चौक— कोई रही झुलाय, धाय तब दूध पिलाने आई।
लडकी है प्रत्यक्ष किन्तु, नही देता कुमर दिखाई ॥
उसी समय घबराय दासिया, सब एकत्र हो आई।
चहु ओर से आने लगे, रोने के शब्द सुनाई ॥

दौड— धाय माता का दिल धड़के, सभी के मस्तक ठनके।
देख बिन कुमर हिडोला, गिरी धरण मुर्झाय अंगरक्षक का भी दिल डोला ॥

दो (क)-दासिया घबरायी हुई, पहुंची रानी पास।
दु खदाई वाणी सभी, बोली ऐसे भाव ॥

दो (दासी)-आश्चर्य हुआ रानी महा, कहें किस तरह बात।
लुप्त हो गया सामने, तव सुत नही देत दिखात ॥

गाना नं १ (बहर तबील)

(दासीयों का रानी से कहना)
अए रानी सभी यह प्रत्यक्ष है,
इस हिन्डोले में छौना तुम्हारा पड़ा।

---

* पालना (झूलना)

दृष्टि डाली तो वहांपर नही लाड़ला,
जिससे धड़क कलेजा हमारा पडा ॥
क्या गगन गया या धरणमें धमा,
हमे इस भवन में नजर न पडा ।
कोई आता या जाता न दीखा हमें,
देखो रानी यह चहु ओर पहरा खडा ॥

दो — हृदय विदारक जब सुने, महारानीने वैन ।
पुत्र विरहनी मात फिर, लगी इस तरह कहन ॥

गाना न. २ (बहर तवील)

(विदेहा का विलाप)
हाय अपना यह दुःख मैं कहूं किस तरह,
मेरे दिल को तसल्ली है आती नही ।
मेरा छौना कन्हैया किधर को गया,
मेरी वज्र की फटती यह छाती नही ॥१॥
कोई लाकर के देवो मुझे जैसे हो,
उस की मूरत मुझे नजर आती नही ।
अभी जाऊं मैं जमी में तुरत ही समा,
पर यह पापिन भी मुझ को छिपाती नहीं ॥२॥

दो — खबर लगी जब भूप को, आये भवन मझार ।
दुःखित हृदय से इस तरह, बोले गिरा* उचार ॥

छंद (जनक)- क्या था और क्या होगया, क्या माजरा नाचार है ।
रात है या दिन कही या, आरहा कोई ख्वाब† है ॥

---

* वाणी, † स्वप्न

हैरत मे हैरत हो रही, आश्चर्य यह आया मुझे ।
पुत्र कहां गायव हुवा, यहां पर नही पाया मुझे ॥
हे प्रभु ? मालुम नही, सुत को वला क्या ले गई ।
उल्टी है किस्मत आज यह, सुत की जुदाई हो गई ॥
राज सम्पत रत्न क्या, सब खाक तेरे विन कुमर ।
पुत्र कहां छौना कहां कुछ भी नही लगती खवर ॥

दो— नृप रानी प्रजा सभी, रोते जारों जार ।
उधर कुवर को खोजते, पैदल फिरें सवार ॥
जनक कहे रानी सुनो, अपने दिल को थाम ।
खोज हो रही पुत्र की, गिरि* गुहर अरु ग्राम ॥

दो— छान वीन कर सब तरह, देख लिये सब धाम ।
अन्त निराश हो भूपने, आ समझाई† वाम ॥

चौ.— वोले अए रानी आज देव, कारण ही नजर आता है।
पूर्वरिपु लेगया असुर कोई, पता नहीं पाता है ॥
समझ नही जन्मा पुत्र, वस यही देव§ चाहता है ।
कर्मों के अनुसार प्रिया सब, सुख दु ख मिल जाता है ॥

दौड़ - मोह को दूर भगाओ, ध्यान श्री जिन चित लाओ ।
कर्म गति के है चले, देख देख मुख पुत्रीका वस रानी मन वहला ले ॥

दो.— पुत्री का मुख देखता, शीतल तन मन जान ।
मात पिता ने रख दिया, सीता जिसका नाम ॥
चन्द्रकला सम बढ़ रही, चौंसठ कला निधान ।
रूप कला और गुण सभी, शील रत्न की खान ॥

* गुफा, † स्त्री, § भाग्य,

दो — सीता जैसा जगत में, नहीं किसी का रूप ।
जहां तहां भेजे देखने, वर कारण नर भूप ॥

चौक — देखे राजकुमार बहुत, वर मिला न कोई शानी का ।
कोई मिले बराबर गुणवाला, था यहि ख्याल महारानी का ॥
समरूप अद्वितीय गुण धारी, किसी राजकुमार को चाहते थे ।
अति पुरुषार्थ करने पर भी, सन्तोष जनक नहीं पाते थे ॥
जब कार्य बनने वाला हो तो कारण कोई बन जाता है ।
और यथा कर्म अनुसार वही, ताना बनकर तन जाता है ॥
था अर्ध वर्बर देश विराट, 'अतरंग' नाम म्लेछ बड़ा ।
प्रान्त लूटता जनक भूपका, नित्य प्रति होने लगा झगड़ा ॥

दो — शक्ति देख 'अतरग' की, जनक गया घबराय ।
खबर अवध मे मित्रको, तुरत दई पहुंचाय ॥

चो — दई तुरत पहुंचाय, दूत ले पता अयोध्या आया ।
नमस्कार कही जनक भूपकी, अपना शीश निमाया ॥
जो था कारण आनेका, दशरथ नृपको समझाया ।
बनो सहायक आप मित्र के, जल्दी तुम्हें बुलाया ॥

दौड़ — कष्ट जो सिर पर आवे मित्र बिन कौन हटावें ।
दूत से दशरथ बोला चलो अभी जा कर खतम क्या
है डाकुओं का टोला ॥

दो — कवच पहिन शस्त्र लिये, हो झटपट तय्यार ।
इसी समय कर जोड यों, बोले पद्म कुमार ॥

दो (रामचन्द्रजी)-आप विराजो यहीं पर, दो हमको आदेश ।
जाकर आपके सिर का, टालूं सकल कलेश ॥

राम,

हैरत मे हैरत हो रही, आश्चर्य यह आया मुझे ।
पुत्र कहां गायब हुवा, यहां पर नही पाया मुझे ॥
हे प्रभु ? मालुम नही, सुत को बला क्या ले गई ।
उल्टी है किस्मत आज यह, सुत की जुदाई हो गई ॥
राज सम्पत रत्न क्या, सब खाक तेरे बिन कुमर ।
पुत्र कहां छोना कहां कुछ भी नही लगती खबर ॥

दो — नृप रानी प्रजा सभी, रोते जारो जार ।
उधर कुवर को खोजते, पैदल फिरें सवार ॥
जनक कहे रानी सुनो, अपने दिल को थाम ।
खोज हो रही पुत्र की, गिरि *गुहर अरु ग्राम ॥

दो — छान बीन कर सब तरह, देख लिये सब धाम ।
अन्त निराश हो भूपने, आ समझाई †बाम ॥

चौ — बोले अए रानी आज देव, कारण ही नजर आता है ।
पूर्वरिपु लेगया असुर कोई, पता नही पाता है ॥
समझ नही जन्मा पुत्र, वस यही दैव§ चाहता है ।
कर्मो के अनुसार प्रिया सब, सुख दु:ख मिल जाता है ॥

दौड़ — मोह को दूर भगाओ, ध्यान श्री जिन चित लाओ ।
कर्म गति के हैं चले, देख देख मुख पुत्रीका वस रानी मन बहला ले ॥

दो.— पुत्री का मुख देखता, शीतल तन मन जान ।
मात पिता ने रख दिया, सीता जिसका नाम ॥
चन्द्रकला सम बढ़ रही, चौसठ कला निधान ।
रूप कला और गुण सभी, शील रत्न की खान ॥

---

* गुफा, † स्त्री, § भाग्य,

दो— सीता जैसा जगत में, नही किसी का रूप ।
जहां तहां भेजे देखने, वर कारण नर भूप ॥

चौक— देखे राजकुमार बहुत, वर मिला न कोई शानी का ।
कोई मिले बराबर गुणवाला, था यहि ख्याल महारानी का ॥
समरूप अद्वितीय गुण धारी, किसी राजकुमार को चाहते थे ।
अति पुरुषार्थ करने पर भी, सन्तोष जनक नही पाते थे ॥
जव कार्य बनने वाला हो तो कारण कोई वन जाता है ।
और यथा कर्म अनुसार वही, ताना बनकर तन जाता है ॥
था अर्ध बर्बर देश विकट, 'अतरग' नाम म्लेछ बडा ।
प्रान्त लूटता जनक भूपका, नित्य प्रति होने लगा झगडा ॥

दो — शक्ति देख 'अतरग' की, जनक गया घबराय ।
खबर अवध में मित्रको, तुरत दई पहुचाय ॥

चौ — दई तुरत पहुंचाय, दूत ले पता अयोध्या आया ।
नमस्कार कही जनक भूपकी, अपना शीश निमाया ॥
जो था कारण आनेका, दशरथ नृपको समझाया ।
वनो सहायक आप मित्र के, जल्दी तुम्हें वुलाया ॥

दौड— कष्ट जो सिर पर आवे, मित्र बिन कौन हटावें ।
दूत से दशरथ बोला, चलो अभी जा करू खतम क्या
है डाकुओं का टोला ॥

दो— कवच पहिन शस्त्र लिये, हो झटपट तय्यार ।
उसी समय कर जोड़ यों, वोले [*] पद्म कुमार ॥

दो (रामचन्द्रजी)-आप बिराजो यही पर, दो मुझको आदेश ।
जाकर आपके मित्र का, टालू सकल क्लेश ॥

---

[*] राम,

चौक— टालू सकल क्लेश, दुधारा ले झुक पडूं जिधर को।
निर्भय होकर देवो आज्ञा, प्यारे शेर बब्बर को ॥
पुत्र लायक हो जिन्हों के, फिर पिता क्यों जाय समर को।
शक्ति हीन अविनीत होतो, जीना किस अर्थ कुमर को ॥

दौड— अभी रण क्षेत्र जाऊं, पकड अतरंग को लाऊ।
शीस पर हाथ चढाओ, निश्चिन्त होकर पिता अयोध्या
में आनंद उडाओ ॥

दो— आज्ञा दी भूपाल ने, मन में खुशी अपार।
सेना ले कुछ संग में, चले राम बलधार ॥

चौ— शत्रु संग जा संग्राम किया, म्लेच्छ समर में खाक हुए।
अतरंग म्लेच्छ का तेज, व गौरव, राम के आगे राख हुए ॥
जब धनुष्य बाण टंकार किया, तो मानो बिजली आन पढी।
भगी फौज सब अतरंग की, कुछ करके आर्तध्यान खडी ॥

दो— विजय हुई श्री राम की, टल गया जनक कलेश।
प्रसन्न चित्त हो राम की, सेवा करी विशेष ॥

चौ— श्री राम का पराक्रम देख जनक, निज रानी को समझाने लगा।
सुन आज विदेहा पुण्य तेरा, मन चाहा मानों आन जगा ॥
श्री रामचन्द्र की समता का, संसार में कोई शूर नही।
सब गुण धारक अति सुख दायक, फिर पुरी अयोध्या दूर नही ॥

दो.— करी सगाई पुत्रि की, रामचन्द्र के साथ।
मिथिला वासी हर्ष से, सभी झुकाते माथ ॥

चौ— सब जोडी देख प्रसन्न हुए, घर घर में खुशी मनाई है।
श्री रामचन्द्र को झूमझाम, जनता सब देखन आई है ॥

नर नारी मुख से, कहते थे, यह सीता पुण्य निशानी है ।
नल कुवेर सम मिले राम, वर जोडी बडी लसानी है ॥
श्री रामचन्द्र के शुभ तन में, इक महा आकर्षण शक्ति थी ।
क्योंकि पूर्वभव में इन्हो नें, की तप सयम भक्ति थी ॥
मुग्ध थे मिथिलाके नरनारी श्री राम की सुन्दरताईपर ।
शुभ लक्षण छवी निराली को, लख न्योछावर थे सुखदाई पर ॥
सब नार परस्पर कहती है, है रामकुमर कैसा ज्ञानी ।
चन्द्र बदन तन कोमल है, स्वरूप बना क्या लासानी ॥
खलकत अडगइ बाजारोंमें, महलों पर देख रही रानी ।
नजर घूमगई पनिहारिन की, भरना भूल गई पानी ॥
रूमाल अगूठी और नारीयल राम को दई निशानी है ।
सीता का रिस्ता किया तुम्हें, नृप ने यह कहा जबानी है ॥
कह देना नृप दशरथ से, सव आपकी मिहरबानी है ।
सब कष्ट मिटा मम रयत का, नही आपसा को सुख दानी हैं ॥

दो — राम विदा होकर चले, निज जन्मभूमि की और ।
मात प्रतीक्षा कर रही, जेसे चन्द्र चकोर ॥

चौ — पुरी अयोध्या में आकर, पितुमात को शिश निमाया है ।
आशीस दिया निज पुत्र को, दम्पति का मन हर्षाया है ॥
जनक भूपने दशरथ से, सम्बन्ध का सब व्यवहार किया ।
दशरथ नृप ने मित्र का जो, था कथन सभी स्वीकार किया ॥

दो — मिलकर घर घर नारियो, बांटे मोदक थाल ।
मेवा और मिष्ठान्न संग, उपर दिये रूमाल ॥

गाना नं ३

मची रही अवध में धुम, खुशिया घर घर मे ॥ टेर

हिल मिल नारी गावें राग है, धन्य हमारे आज भाग हैं।
धन्य अयोध्या भूप, खुशियां घरघर में ॥१॥
गाना गाने आई अप्सरा, नक्काल और आ गये मस्खरा।
तननतान तन धुम, खुशियां घरघर में ॥२॥
राज्य अधिकारी देत इशारा, अब क्या देरी बजे नक्कारा।
और वाजित्र अनूप, खुशिया घर घर में ॥३॥
बज रही नौबत खुशी के बाजे, खुशी होवें सब मित्र राजे।
ऐसा बंधा स्वरूप, खुशिया घर घर में ॥४॥

दो.— अद्‌भुत है सबने सुना, जनक सुता का रूप।
देखन आते चाव से, कइ तन पुण्य अनूप ॥
पुरी अयोध्या मे सुनी, नारद महिमा रूप।
किन्तु मन में जचा नही, मुनि के सत्य स्वरूप ॥

चौ. (नारद स्वगत विचार)

नारद ने सोचा राम से बढकर, सीता रूप नही पा सकती।
मेरा विचार तो ऐसा है, वह राम के मन नही भा सकती ॥
ऐसा न हो कि बिना खबर, कही विवाह अचानक आन पडे।
और देख कुरूप राम को फिर, करना न आर्त्तध्यान पडे ॥

दो (नारद)-मिथिला नगरी जाय कर, देखूं सीता अंग।
यदि तुल्य जोडी हुई, तभी विवाह का ढंग ॥

चौ.— तभी विवाह का ढंग बने, नहीं विघ्न डाल कोई दूंगा।
यदि कोई ना समझा तो मैं बुरा स्वयं बन लूगा ॥
लिये रामके राजकुमारी, और कोई देखूंगा।
चलू अभी मिथिला नगरी, छिन मात्र में पहुंचूंगा ॥

दौड— मुझे है काम राम से, ख्याल नहीं किसी वाम से।
पसद मैं खुद कर लूगा, तभी विवाह होने दूगा नही
उल्टा सब कर दूगा ॥

दो.-- मुनि रंगीले चल दिये, पहुचे मिथिला जाय।
वही बात वही ध्वनि, धसे महल के माय ॥

छन्द-- उस पुण्य तन को देखकर, नारद ने मुख अंगुली लई।
क्या नूर है या हूर है, या मेरी अक्ल ही मारी गई ॥
देखा भारत सब घूम कर, कहीं रूप इस सदृश नही।
क्या जन्मी आकर देव कुमरी, यह रूप मनुष्य का नहीं ॥
इन्द्राणी भी शर्मावती, यह रूप राशी देखकर।
शोभेगी अति विमान में, यह जायगी जब बैठकर ॥
दूर से ही देख आश्चर्य चकित है मनमेरा।
दू आशीस जाकर पास, पुत्री की अक्ल देखू जरा ॥

दो. (नारद-रूप) पीली आखे और भवें, अजब रग सब जान।
पीले ही शिर केश हैं, दाढी अद्भुत ज्ञान ॥

चौक— पडी नजर जब सीता की, डर करके भीतर भाग गई।
हा खाई मारी दौडो पकडो, ऐसा रोती राग गई ॥
बोले नये सेवक पकडो, यह भूत भाग न जाय कही।
काला मुह इसका करके, दो चार ठोक दो लात यही ॥

छंद— कोलाहल भृत्यों का बढा सब महल गुजारव हुआ।
शीघ्र ही अत पुर चमुपति, जाच को प्रस्तुत हुआ ॥
आया है घटना स्थानपर, देखें तो क्या नारद मुनि।
भयमान सब पीछे हटे, नीची करी मग्र ने ध्वनि ॥

कहने लगे सोचे बिना, आफत यह छेडी है तुम्हें।
ऐसा न हो महा कष्ट कहीं, जा करके दिखला दे हमें॥
बाल ब्रह्मचारी महा गुणी, नारद मुनि शुभ नाम है।
तोडा फोडी कर तमाशा, देखना यह काम है॥
रण वास आदि सब जगह, नही रोक इनको है कहीं।
भाई भले के सर्वदा, बद से बदी छोडें नही॥

दो — नारद मन में सोचता, किया मेरा अपमान।
इसका फल दूंगा इन्हें, सोचा लाकर ध्यान॥

चौ.— चित्र खीच कर सीता का, अब जल्द वहां से धाये हैं।
बेताड गिरी रथनुपुर जा, नारद ने जाल बिछाया है॥
जब नजर पडी भामडल पर, नारद को आश्चर्य आया है।
सीता की मानिन्द इस पर भी, क्या रूप रंग अति छाया है॥
भामंडलने देख मुनिनारदको शीश नमाया है।
आशीर्वाद पा—राज कुमरने, अयसे वचन सुनाया है॥
कहो मुनिमहाराज किधर से, आकर दर्श दिखाये हैं।
सब तरह कहो शान्ति तो है, और कहां घूम कर आये हैं॥

दो (नारद)-मिथिला नगरी से अभी, आया हूं राजकुमार।
काम हमारा घूमना, सर्व जगत मंझार॥

चौ -(नारद) आश्चर्य जगत इक चीज आपकी खातिर आज मैं लाया हूं।
है तेरा ही अनुराग मुझे, इसीलिये यहांपर आया हूं॥
चलो अभी तुम महलों में, हम भूप से मिलकर आते हैं।
देर नही कुछ पास तुम्हारे, अभी आन दिखलाया हैं॥

दो.— कुमर गया निज महलमें, मुनि खास दरबार।
देख मुनि को भूपति मन में खुशी अपार॥

गाना (चन्द्रगति का नारद मुनि से कहना)

कहिये मुनिजी भूल कर, यहा कैसे आना हो गया ।
या विचरना बद करके, स्थिर ठिकाना हो गया ॥१॥
शुभ दिन घडी है आज, जो आपके दर्शन मिले ।
कुल पवित्र आज मेरा, गरीब खाना हो गया ॥२॥
इस सिहासन पर विराजे, कीजिये अनुग्रह मुनि ।
रथनुपुर में आपको, आये जमाना हो गया ॥३॥
आज कल संसार में, कहिये कहां क्या हो रहा ।
चरणों का सेवक कौन से, नृप का घराना हो गया ॥४॥
दान सेवा का कभी, हम को भी दिलवाया करें ।
क्या खबर यहा किस तरह, तशरीफ लाना हो गया ॥५॥
हम सेवकों पर भी कृपा, दृष्टि जग रक्खा करें ।
क्या आपके दिल में भी, कोई अपना विगाना हो गया ॥६॥
'शुक्ल' अब यहां पर जरा, आराम कुछ दिन कीजिये ।
कारण वश जो आपका यहा, आबोदाना हो गया ॥७॥

चौ — भक्ति भाव से नारद को, सिहासन पर बैठाया है ।
वृतान्त पूछने पर नृप के, मुनिने कुछ भाष सुनाये है ॥
कहे भूप यहां कुछ दिन ठहरें, अब बहुत देर से आये है ।
क्या दोष हमारा बतलाइये, अब तक नही दर्श दिखाये है ॥

दो — आया था जिस काम को, मन में वही उचार ।
उधर महल में देखता, राजकुमार की वाट ॥
उसी समय नारद मुनि, भामडल पे जाय ।
फोटो सीता का तुरत, दिया मुनि दिखलाय ॥
असर नही कुछ कुमर को, हुआ समझ करफोक ।
गुणवर्तन कर मुनि ने, दिये मसाले ठोक ॥

गाना (नारद का भामंडल से कहना)

तर्ज — कवाली

जवां से कह नही सकता कि यह, जेसी दुलारी है।
मिले जोड़ी तेरे संग तो, खुले किस्मत तुम्हारी है॥
रूपपुरनूर है रौशन, शर्म खाती है इन्द्राणी।
हूबहू क्या कहू सूरत. चान्द की सी उजारी है॥
समझ भानु की मूर्त है, ढली मानो है साचे मे।
मुल्क सब छान कर देखा, नही सद्रश निहारी है॥
है चालि हस की मनिन्द, कला चौसठ सभीपूर्ण।
है मानिन्द मोर की गर्दन के नयनों की कटारी है॥

दो.— लगा पलीता मुनिजी, हुवे नीद में लीन।
भामडल यू तड़पता, जैस जल वीन मीन॥

चौक— राज कुमार का देख हाल, राजा रानी घबराये है।
वैद्य ज्योतीषी और सयाने, राजाने वुलवाये है॥
देख सभी ने बतलाया, नही इस को कोई बिमारी है।
किंतु है ख्याल कही जमा हुआ, यह आया समझ हमारी है॥

छन्द – तड़प भामंड़ल रहा, मोह लीन बीमारी हुई।
देखकर माता पिता को, बेदना भारी हुई॥
पुत्र के मित्रों से भी पूछा, हाल सब महाराज ने।
बोले दिखाया चित्र था, कलह प्रिय मुनिराज ने॥

सुनते ही गुण उस .कामिनी के, हो गया बेताब है।
समझाया बहु तेरा मगर, आइ नही वह आब है॥

सब ठीक समझा-भूपने, नारद मुनि का काम है ।
औषधी वही बतायेगें, खोजूं सही किस धाम है ॥

दो.— चन्द्रगति भूपाल झट, पहुंचे नारद पास ।
मन्दमन्द मुस्कराय कर, ऐसे बोले भाव ॥

छन्द (चंद्रगति)-सिर झुकाय चरण में, महाराज कृपा कीजिये ।
आलस्य व निद्रा के बहाने, छोड कर मन दीजिये ॥
किस कुमारी का यह चित्र, जिसके लाये आप है ।
कृपा तुम्हारी से मिटेंगे, जो किये सताप है ॥

दो.— नेत्रों को मलते हुवे, उठे मुनि अग तोड़ ।
काम बना मन में खुशी, यों बोले मुखमोड़ ॥

दो.-(नारद) मिथिला नगरी है भली, जनक तहां भूपाल ।
विदेहा के पैदा हुई, सीता रूप रसाल ॥

चौक-(नारद) क्या करूं भूप मैं गुण वर्णन, बस, भामडल के लायक है ।
बस देख कुमारी सम रूप सिया का, जोडी अति सुखदायक है ॥
अब हम महलों में जाकर, कुछ खाना खाकर आते है ।
और मन करता है चलने को, फिर पुरी अयोध्या जाते हैं ॥

❀ सीता स्वयबर वर्णन ❀

दो.— बोकर वीज महा क्लेश का, उड़गये आप आकाश ।
पुत्र को समझाय कर, दिया भूप विश्वास ॥

चौ.- - 'चपलगति' विद्याधर से, नृप बोले तुम मिथिला जाओ ।
श्री जनक भूप को रात्रि समय, निद्रागत यहा उठा लाओ ॥
आज्ञा पाकर जनक भूप को, रात ममय ले आया है ।
चन्द्रगति के पास महल मे लाकर तुरत सुलाया है ॥

दो.— खुली आँख जब जनक की, विस्मित हुआ अपार ।
देख देख चारों तरफ, करने लगा विचार ॥

दो -(जनक स्वागत विचार)
आश्चर्य मे लीन हो, मन में खिन्न महान् ।
सोया था निज महल मे, यहा सब और सामान ॥

छन्द (जनक)–सोया था मैं निज महल मे, कौन ले आया मुझे ।
सोऊ या जागूं हूं मैं क्या, या स्वप्न कोई आया मुझे ॥
नारी कहां पुत्री कहां, सेवक कहा वह दास है ।
अपना नही आता नजर, बैठा अपर कोई पास है ॥

छद (चंद्रगति)–चन्द्रगति कहने लगा, श्री जनक से कर जोडकर ।
कर दो क्षमा अपराध मम, कहता हूं मद को छोडकर ॥
पुत्री सुनी है आपके, सीता कुमारी नाम है ।
भामंडल से परणाओ उसे, केवल यही बस काम है ॥

दो (जनत)–पुत्री निश्चय है मेरे, सुनो भूप कर गौर ।
दशरथ सुत को दे चुका, छुटी हाथ से डोर ॥

चौ. (जनक)–स्वयं करो विचार मणि अब, शेष नाग के सिरपर है ।
वह दे सकता नही और किसे, सिर जब तक उसके धडपर है ॥
अब हाथ सिह की मूछों पर, सोचो तो भूप कौन डाले ।
ऐसा कहो कौन दुनियां में, कहे काल को आ खाले ॥

दो — सुनी बात यह जनक की, हुवे क्रोध में लाल ।
चन्द्रगति कहने लगे, आंखे लाल निकाल ॥

चौक (चन्द्रगति)–उस गीदड की धमकी से, मैं जरा न भय खाऊंगा ।
रखता हू व्यवहार नही, तब सुता उठा लाऊंगा ॥

देखूंगा बल दशरथ का, जब सुत व्याहने आऊंगा ।
मानिंद गरुड के भूचर नृप, सर्पों पर छा जाऊंगा ॥

दौड-- दिखा शक्ति दशरथ की, देख मेरे भुजबल की ।
सोच कर ले निज दिल, से, सीता का जो विवाह होगा
तो होगा भामंडल से ॥

दो. (जनक)-बुद्धिमानी आपकी, देख लई भूपाल ।
खाली बादल की तरह, बजा रहे हो गाल ॥

चौ. (जनक)-क्या योद्धापन दर्शाया है, चौरी से उठाकर लायेगें ।
कभी बतलाते है दशरथ को, अपनी शक्ति दिखलायेगें ॥
वार बार क्या दुनियां सब, चौरों का धोखा खाती है ।
कोई शक्ति और बुद्धिमानी की, बात नजर नही आती है ॥

दो.— तेजी आई भूप को, किन्तु जरी तमाम ।
सोचा ढंग वही करें, बने जिस तरह काम ॥

चौक (चन्द्रगति स्वगत)
बिगड जायेगा बातों में, क्योंकि चत्रीय कह लाता है ।
कर चुका सगाई लडकी की, नरमाइ से समझाता है ॥
कार्य से है मतलब मेरा, कोई खेलू इस से चाला है ।
देवाधिष्टित धनुष है दो, यही उपाय एक आला है ॥

दो — अनुचित है तुमने कहा, सुनो जनक भूपाल ।
क्या हाथ कंकन को, आरसी दिखलावें तत्काल ॥
वज्रावर्त, अरूणावर्त, धनुष है अतिशयवन्त ।
यक्षों से सेवित हुवे सुनो भूप मतिवन्त ॥

चौ-(चन्द्रगति) जा रचो स्वयम्बर लडकीका, सब उचितभूप बुला लेओ
यह धरो स्वयम्बर बीच धनुष फिर ऐसे शब्द सुना देओ ।

सम आयुष्य वाला राजकुमार जो, क्षत्रिय धनुष चढायेगा ॥
पड़े उसी गल वर माला, मम, पुत्री वही विवाहेगा ।
है पक्ष रहित यह बात किसी को करना चाहिये उजर नहीं
नही तो झगड़ा बढ़ जायेगा, इस ढंग बिन होगा गुजर नही ॥
एक बिना हमारे रामचन्द्र या, कोई भूप चढ़ावेगा ।
इन्कार नही हमको, कोई सीता को वही ले जावेगा ॥
यदि ऐसा न हुआ किसी से, तो पुत्र मेरा ही विवाहेगा ।
और न होगी बात को, चाहे भूमंडल चढआवेगा ॥
चलो अभी कुछ देर नही, तुमको पहिले पहुंचाते है ।
जा करो तय्यारी जल्दी से मिथिला नगरी हम आते है ॥

दो.— जनक भूप मन सोचता, मुश्किल बनी लाचार ।
समय क्षेत्र को देखकर, किया यही स्वीकार ॥
निश्चित बात करके सभी, जनक दिया पहुचाय ।
चन्द्रगति ने भी लिये, निज विमान सजाय ॥

चौ.— चन्द्रगती ने नियत स्थानपर, डेरा आन लगाया है ।
थे वडे २ योद्धा संग में, विद्याधर अति गर्माया है ॥
यहां भवन मे बैठे जनक भूप, मन में कुछ आर्तिभारी है ।
यह हाल देखकर भूपति का, रानी ने गिरा उचारी है ॥

दो. (रानी)-पहले प्रसन्न थे आप तो, अब हो गये उदास ।
किस कारण पति ले रहे, लबे लंबे सांस ॥

छंद (जनक)-क्या कहुं मैं रानी तुझे, बस कुछ कहा जाता नही ।
अशुभ कर्म प्रकट हुए, यह दुःख सहा जाता नहीं ॥
खेचर उठाकर रात, रथनुपुर मुझे था ले गया ।
तब चद्रगत्ति भूपाल ने, आकर के मुझ से यह कहा ॥

सीता को भामंडल से परणो, सब कहा समझाय कर।
नही तो तरह तेरी सिया को, भी मैं लाऊ उठाय कर ॥
अन्तिम स्वयम्बर फैसला, कर धनुष दो लाकर धरे।
मिथिलापुरी के बाहिर, आकर भूपने डेरे करे ॥

दो— सुनी अरुचिकर सभी, जनक भूप से बात।
रानी के हृदय पर हुआ, जैसे वज्राघात ॥

दो (विदेहारानी)-हा ! कर्म सब तुमको नही, लेकर पुत्र प्रधान।
लेनी चाहे पुत्रिका, बचें किस तरह प्राण ॥
स्वेच्छा से व्याहते सुता, होता हर्ष अपार।
बिन इच्छा के लेवे कोई, दारुण दुःख हरबार ॥

चौ (रानी)-रामचंद्र से धनुष यदि, कही नही चढाया जावेगा।
तो विद्याधर बताड़ गिरीपर, सीया को व्याह ले जावेगा ॥
हा ! राजकुमारी सीता के, फिर दर्शन कैसे पाऊंगी।
और इसी विरह में घुलकर, बस अपने प्राण गमाऊंगी ॥

दो (जनक)-रानी मन निश्चय धरो, धनुष चढावें राम।
पुण्य प्रबल बलवीर का, देखो मैं संग्राम ॥

दो— रानी को संतोष दे, लिये भूप बुलाय।
मंडप की रचना करी, दिये धनुष रखवाय ॥

छन्द— स्वयंवर मंडप में विराजे, आन कर सब भूपति।
वरमाला डालू रामगल में, ये ही सीता सोचती ॥
चिल्ला चढाया धनुष का, यदि राम से न जायगा।
तो जीव मेरा भी कही, ढूंढा न तन मे पायगा ॥

दो— दिव्याभूषण पहिन कर, साथ सखी परिवार।
धनुष पास जाकर लगी, पढन मंत्र नमोकार ॥

दो — (सीता) चढे धनुष श्री राम से, उस भवके वही नाथ।
संबंध नही वियोग से, किसी और के साथ ॥

चौक— सीता के अनिन्द्य सुन्दर तन पर, जब दृष्टि सबने डाली है।
क्या नखशिखढला जिस्म, साचे में अद्भुत झलक निराली है॥
कैसा भोलापन चेहरेपर, अद्भुत ही रूप दमकता है।
पुण्य उसी का जो व्याहेगा असली रत्न चमकता है॥
चन्द्रगति मन सोच रहा, कि बस भामंडल ही व्याहेगा।
दूर किनार है धनुष उठाना, पास न कोई भी आयेगा॥
जनक भूप उठ कर बोले, जो क्षत्रिय धनुष उठायेगा।
शूरवीर रणधीर आज, वो ही वरमाला पायेगा ॥

दो.— सुनकर वाणी जनक की, उठे भूप बलवान।
कपाते हुवे धरण को, मन में भर अभिमान ॥

चौ — बोले ये धनुष तो चीज है क्या हम वज्र इन्द्र का तोड़ धरें।
और मार गदा हम मेरू गिरी के, शिखर सभी है गर्द करें॥
तीर मार कर भूमि में, असुरो के भवन सब चूर करें।
मारें ऐसा अग्नि वाण हम, रवि विमाण को भस्म करें ॥
शतखण्ड करें एक हाथ से, इनके जैसे कि तोडे पताशा है।
फिर उसे चढाना चिल्ले पर, साधारण खेल तमाशा है ॥
हम क्षत्रिय बहादुर, किस गिनती में इनको लाते है।
अभी चढ़ाकर प्रत्यंचा पर, जनक सुत को व्याहते है॥

दो.— बैठे हुवे सब इस तरह, बजा रहे थे गाल।
तडक फडक करके उठे, अभिमानी भूपाल ॥

छं.— तय्यार थे क्षत्रिय सभी, शक्ति दिखाने के लिये।
पास आये धनुष के, चिल्ला चढाने के लिये ॥

ज्वलनसिंह कहने लगा, चिल्ला चढ़ाऊ भाजते ।
सीता को पटरानी करू, बाकी रहे सब झाकते ॥
पास में आया है जब, कोदंड़ लख घबरा गया ।
प्राण रक्षा के निमित्त सब, शक्ति को बिसरा गया ॥
थरथराता धरणि पर वह, धम्म से आकर पडा ।
कायर अधम कहते कई, उपहास्य करते है बड़ा ॥

दो— देख हाल यह नृप सभी, मना रहे निज इष्ट ।
शक्ति के धर्त्ता कई, योधा बडे प्रतिष्ट ॥

चौक— चिल्लेपर धनुप चढाने को, सब शक्ति निज दिखलाते है ।
जब बढे धनुष की तरफ देख, हालत मन में घबराते है ॥
शोभन स्थल पर धनुष्य, बनावट जिसकी असाधारण थी ।
यक्षों से थे सेवित अस्त्र सजावट, उनकी असाधारण थी ॥
प्रखर विद्युत समज्वाला जिनमें, अपनी दमक दिखाती है ।
चहुंओर लिपट रहे फणीयार,
विषधर नजर मौत ही आती है ॥
डर गये पड़े मुंह भार कई, और गये भाग घबराय कई ।
मान स्यान खोकर नीची, दृष्टि कर बैठ जाय कई ॥
कई कहें जनक नृपने देखो, कैसा ए जाल बिछाया है ।
यह धनुष नही उपहास्य किया, जो सबका मान घटाया है ॥

दो.— चन्द्रगति मनमें मगन, देखे सब नृप राय ।
क्या मजाल है राम की, धनुष सामने जाय ॥
देख हाल यह धनुप का, करता जनक विचार ।
न चढा धनुप यदि रामसे, मुश्किल फेर अपार ॥

चौ (जनक)-अब रहे रामचन्द्र बाकी, यदि नही चढाया जायेगा ।
तो सियाको ब्याहकर विद्याधर, वेताड गिरी ले जायेगा ॥
है शूरवीर दशरथ नन्दन, ताना कोई आज लगाऊं में ।
जिस तरह चढ़ावे धनुष, उसी से मनवांछित फल पाऊं मैं ॥
दो. (जनक)-शूर वीर क्या नहीं रहा, कोई दुनिया वीच ।
धनुष चढा नहीं किसी से, हुवे सभी क्या नीच ॥
चौ. (जनक)-लगा ताव मूछों पर बैठे, आन स्वयम्वर घर में ।
अच्छा है कही मरो डूब जा, पानी चुल्लु भर में ॥
क्षत्रिय कुल की लाज रक्खे, कोई आता नही नजर मे ।
आन चढ़ावो धनुप यदि, रखते कुछ जोश जिगर मे ॥
दौड़— बनो सब अभी जनाने, भेष छोडो मरदाने ।
माता का दूध लजाया, रल मिल के क्षत्रिय कुल को
क्यों वट्टा आज लगाया ॥
दो— जनक भूप की बात सुन, कोपा दशरथ नन्द ।
कहे लक्ष्मण श्री राम से, वाका वीर बुलन्द ॥
दो. (लक्ष्मण)-अय ! भाई नृप जनक ने, कही यह अनुचित बात ।
सूर्य के होते हुवे, दिन को समझी रात ॥
चौ (लक्ष्मण)-देवो आज्ञा धनुष चढाऊ, जरा देर नही करता ।
बोली की गोली सही समझ लो, सिर्फ आप से डरता ॥
वरना एक पलक का भी, अरसा न जनाब गुजरता ।
एक धनुष क्या और कहो, सब चढा किनारे धरता ॥

गाना नं. ४ (लक्ष्मण का कथन)

तर्ज-बहरे तबील—
'बोली की गोली से घायल किया,
क्षत्री आया कोई इस को नजर ही नहीं ।

सूर्य वशी है बेठे प्रबल सामने,
इसको इतनी भी देखो खबर ही नही ॥
कोई क्षत्रिय नही अब कहा सो कहा,
आगे लाना जबा ये जिकर ही नही ।
विना चिल्ला चढाये जो मैं पीछे हटू,
तो मैं दशरथ का समझो कुमर ही नही ॥

दो — अतुल तेज लख अनुज का, सोच रहे सुखधाम ।
दीर्घ दृष्टी गभीर नर, यों बोले श्री राम ॥

दो. (राम)-ठीक कथन लक्ष्मण तेरा, है तुझको शाबास ।
ऐसी क्या ताकत धनुष में, चलकर देखें पास ॥

चौ — क्षत्रिय है हैरान सभी, जा धनुष पास घबराते हैं ।
सब ग्रीवा नीची कर अपनी, शर्माकर वापिस आते हैं ॥
विद्याधर का धनुष समझ, लक्ष्मण नहीं कोई मामूली है ।
यदि हुवे यहां से वापिस हम तो, लोक हसाई शूली है ॥

दो. (राम)-सिद्ध सभी कार्य बनें, पढो मत्र नमोकार ।
धनुष मात्र यह चीज क्या, बने वज्र भी तार ॥

चौ — धीर विक्रम गज ललित गति से, चले राम सुखदानी है ।
पीछे चले सुमित्रानन्दन, जोडी थे लासानी है ॥
उद्धतपना नही कुछ तनमे, धीर गति से चलते है ।
और देख देख नृप चन्द्रगति, आदि हृदय में हंसते है ॥
नही चढा सके ज्या विद्याधर, ये लडके क्या कर लेवेंगे ।
चाप देख भयभीत भाग कर, हस्तपाद तुडवा लेंगे ॥

धनुषकी डोरी

कर रहे हंसी मनमानी सभी, न लक्ष्य राम कुछ करते है।
परवाह न ज्यों गजराज करें, जब श्वान भोंकते रहते है॥
देख अनूप शरासन मनमें, राम अति हर्षाते हैं।
और सारमंत्र उच्चार धनुप के, सम्मुख हाथ बढ़ाते है॥
वृद्धिगत पुण्य प्रताप से, अग्नि ज्वाला सब कापूर हुई।
और नाग रूप धारी यक्षोंकी, क्रोधानल सब दूर हुई॥
खिलोने को दारक† ज्यों लेवें, त्यों रामने धनुष उठाया है।
टहनी सम नमा शरासन, ऊपर प्रत्यचा को चढ़ाया है॥
आकर्ण चापको खीच रामने, खाली टंकारव शब्द किया।
ज्यों नभ में अति कड़के चपला,$ त्यों महा भयंकर शब्द किया॥
वज्रावर्तज धनुष दूसरा, लक्ष्मणजी ने उठा लिया।
और खींच राम की तरह, एकदम टंकारव घनघोर क़िया॥
हृदयस्थल कांपे नृप जनके, मूर्छित हो धरणी जाय परे।
नेत्र स्फारित§ कर देख रहे, आश्चर्य चकित कई होय रहे॥
चढे धनुष दोनों चिल्ले, जयकार बोल रहे नरनारी।
करें त्रिदश‡ वृष्टि कुसुमों की, हर्षोल्लसित जनता सारी॥
उसी समय श्री राम के गल वरमाला सियाने डाल दई।
गद्गद् हुवे जनक राजा, जब मनो कामना पूर्ण हुई॥

कविता नं. ५

ताल-त्रिताल—

चढाकर धनुष लोक हर्षित किये
जब चढाया धनुष्य घोर कड़की गगन इन्द्रदेव सब देव हो
गये मगन हां रचाया स्वयबर जभी इस लिये ॥१॥

---

† बालक $ बिजली § खोलकर ‡ देवता,

रामचन्द्र के चरणो में सीता झुकी, हार डाला गले हसी
सूर्य मुखी, दर्श करते ही मैं घुट अमृत पिये ॥२॥
सारंगी बजी लो रमे वंशरी, तबला बजने लगा नाची
हुरी परी, बस धनुष्य पर ही थी जनक की शर्तये ॥३॥
पुरी इन्द्र सें फुलों की वर्षा पडी, मेघ सावन की लगती
है जैसे झडी, धनुष्य सिद्ध रघुवरने दो कर लिये ॥४॥
गीत भाटोंने गाया जभी आनकर, कंठ आन दुर्गावसी
जानकर, राग ध्रूवपद तराने में वर्णन किये ॥५॥
धनुष उठाने जिनसे वे, शरमा गये लग चुका जोर सोर
ही घवरागये, सिर झुका बैठ गये और कापे हीये ॥६॥
गीत गाने लगी मिलकर कामन सभी, 'शुक्ल' सायर भी उत्सव
पर आये तभी, धीन धीन तृकटन् धीन तबला गावे सिये ॥७॥

गाना न ६ (धनुष चढाने की खुशी मे)

तर्ज - घर घर मगलः—

चढाना धनुष्य का भाइयों, मुबारिक हो मुबारिक हो ।
वीयाना रामको भाइयों, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥१॥
खुशी सव जन मनाते है, गीत मगलीक गाते है ॥
वाजित्र खुब बजाये है, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥२॥
अनाथों और गरीबों को, दई दिल खोल के माया ।
पिता दशरथजी थे दानी, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥३॥
खुशी में छोडे सव कैदी, फिरें आजाद होकर सब ।
देवें धन्यवाद राना को, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥४॥
वधाईया देत नर नारी, मिठाई खुब बाटी है ।
दिया धन सस्थाओं को, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥५॥

लहराया धर्म का झंडा, मिटाया शोक सब जनका ।
सीया ने राम को वरणा, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥६॥
रहे जोड़ी सदा कायम, रहे बाशाद ये दोनों ।
देश और धर्म के रक्षक, मुबारिक हो मुबारिक हो ॥७॥

दो— देख वीरता सकल जन, होते है हैरान ।
क्या छोटीसी उमर में, इतने है बलवान् ॥

चौ— अष्टादश लड़की राजोंने, लक्ष्मण को परणाई है ।
देख पुण्य शक्ति सबही ने, अपनी प्रीत बढ़ाई है ॥
श्री कनक भ्रात था जनक भूपका, पुत्री अति सुखदाई है ।
शुभ 'भद्रावली' नाम जिसका, वह भरत कुमरको व्याही है ॥
अति धूमधाम से विवाह किया, यहां कथने में नही आया है ।
और चन्द्रगति खो धनुष, आप हो कर उदास चल धाया है ॥
बाकी सबने प्रस्थान किया, मैदान रामने पाया है ।
बिदा समय विदेही ने सीता को वचन सुनाया है ॥

गाना नं. ७ (विदेही माता का सीता को शिक्षा)

तू बेटी ! आज से हुई पराई, तुझे अवधपुर जाना होगा ।
सास ससुर और परिजन सबका, पतिका हुक्म बजाना होगा ॥
नित्य नियम का साधन निशदिन, पतिव्रत धर्म निभाना होगा ।
पिछे सोना पहिले उठना, नित्य शुभ कर्तव्य कमाना होगा ॥
विधि सहित भोजन शुद्ध करना, पानी नित छान वर्तना होगा ।
निरर्थक बातों को तजकर, आत्म ज्ञान चरचना होगा ॥
कोध और माया ममता, इनको दूर भगाना होगा ।
कुल मर्यादा नही विसरना, लाज शरम मन धरना होगा ॥

ऐश्वर्य का गर्व ना करना, अन्न धन दान दिलवाना होगा।
सयोग मिले तुझको सुखदायी, पुण्य अखुट कमाना होगा॥
अपने सुख का ध्यान न रखना, दुखियों का दु:ख हरना होगा।
शील रतन का अमूल्य गहना, तुझ को अग सजाना होगा॥
पांच अणुव्रत पूर्ण पालो, शिक्षा पर ध्यान जमाना होगा।
पति सेवा में तन, मन, धन, क्या सभी निछावर करना होगा॥
पति कदाचित क्रोधित होवें, विनय सहित खुश करना होगा।
झूठे ढोंग सभी कुछ तजकर, जिनवर का शरणा होगा॥
विद्या पढ निज पर हित करना, देव गुरु धर्म लखना होगा।
मनुष्य जन्म का यहि सार, बेटी तुझको चखना होगा॥
समय पडे पर देश धर्म की, खातिर बेटी मरना होगा।
सद्ग्रन्थों को पढो पढाओं, ध्यान "शुक्ल" धरना होगा॥

— अनादिकाल का है यही, दुनियां का व्यवहार।
समयानुसार बेटी सभी, करते हो लाचार॥

गाना नं. ८

(राजा जनक का विदा के समय सीता को शिक्षा देना)

तू मेरी एक ही सीता बेटी है, और कोई नही दो चार नहीं।
फिर राज की सारी सृष्टी में, तुझ से बढ़ कर कोई प्यार नही॥
है पुण्यवान बेटी सीता, सुख पाया पूर्व ले जप तप से।
और मगलीक दर्शन तेरे, मम प्रजा रही नित उत्सव में॥२॥
तू जैन धर्म की वेत्ता है, सर्वस्व शास्त्र की ज्ञाता है।
नरनारी कहते होगें जनक, सूर्य को दीपक दिखाता है॥३॥
सब नय प्रमाण क्या स्याद्वाद् सप्तभगी मर्मकी माहीर है।
फिर चौसठ विद्या है प्रवीण, और क्षमाशील जग जाहिर है॥४॥

तव माता पिता के विरह का दुःख, सर्वज्ञ देव हीं जानते हैं।
व्यवहारिक लक्षण दृष्टिसे, नरनारी कुछ पहचानते है ॥५॥
अब पुत्री कहना यही मेरा, खुश हो निज पति के गृह जावो।
सुख संपतिवर संतान सर्वदा, शोभन निज पुण्यसे पावो॥६॥
बचपन में तूने अय बेटी, सुख जन्म गृह में पाये हैं ।
आगे पति के गृह सर्व सुख, तेरे सनमुख आये है ॥७॥
पति सेवा का महत्व लाडिली, सद् ग्रन्थों में गाया है ।
इस बात को अब चरितार्थ करे, सब सार आज तू पाया है ॥
सब मंत्र तंत्र टूणा जादू इनको, हृदय धरना न कभी ।
क्या भूत प्रेत डाकण शाकण, इन से बेटी डरना न कभी ॥९॥
ये प्राण जाय तो जाय किन्तु, बेटी न धर्म जाने पावे ।
छल छीद्र पोपलीला बेटी, तुझको न कोई छलने आवे ॥१०॥
निज सासससुर पति की सेवा, करना कर्तव्य तुम्हारा है।
सर्वज्ञ कथित करो धर्म 'शुकल' अन्तिम उपदेश हमारा है।११॥
एक आत्म और शरीर यह दो, रोग मुख्य संसार में है।
कम खाना गम खाना औषधी, दोनों तेरे अधिकार में है॥१२॥
वुत प्रस्ती एक वला मिथ्या, वह भ्रम ना हृदय धर लेना।
कभी देश धर्म आत्म समाज, कमजोर ना इसको कर लेना ।१३॥
कृत कर्मों का भोग कष्ट, आपत्ती सहसा आ जावे ।
समता दृढता से सब झेलो, रंचक ना दिल गिरने पावे ॥१४॥
अन्याय के आगे झुकना न कभी, सब सृष्टी चाहे उलट जावे
आत्म धर्म बचाओ अन्त्यम, चाहे सब कुछ लुट जावे ॥१५॥
क्या सीढ सीतला काली गोरी, भ्रम को दिल से ठुकराना।
किसी देव दानव या गंधर्व का, शरण न स्वप्न मात्र चाहना १६

ज्ञान दरस चारित्र से, तूने निज आतम पहचाना ।
तो करो धर्म की नित्य सेवा, जो इस भव परभव सुखपाना ॥
आतम मे अनन्ती शक्ति है, सच्चिदानंद बन सक्ती है ।
पूज्य काशीरामजी की शिक्षा, सब दु ख समुह हर सक्ती है॥

गाना नं. ९

राग ताल त्रिताल (विदा-समय सीता को कनक की शिक्षा)

वेटी सुन सीता ज्ञान मेरा तुम इसे भुल मति जाना॥स्थायी॥
प्रीतम आवतारी राम तेरा तू फूल कली यह भंवर तेरा ।
है रूतवा आला जवर तेरा, रघुवर के चरणों में ध्यान लाना ॥१॥
मत्र तत्र धागा तावीज ये झुठी है तीनों चीजें ।
इनको बरते वे तमीज तू इनपर ध्यान मति लाना ॥२॥
नमोकार नित पढना सीता, तू समझ प्रेम इसको गीता ।
तीन लोक उसने जीता, नमोकार ज्ञान जिसने माना ॥३॥
यह नष्ट करें दु खदायनको, ला प्रेम पढ़ो इस गायन को ।
इसभव परभव सुखदाई, तुझें शुभध्यान 'शुकल'भगवनध्यान ४

दो— रथ शकट हस्ती पीनस, अश्व दिये श्रृगार ।
मणि मुक्ता माणिक दिये, जिनका नहीं शुम्मार ॥

चौ— जिनका नही शुम्मार, जनकने बहुत दिया भूषण गहणा ।
विदा बाद सब कहे सहेली, अब नहीं चित लगता वहना ॥
विन सीता लगे मिथिला सूनी, मुश्किल हो गया अब रहना ।
आज विछुड गई हमसे सीता, कोकिल वैनी मृग नेना ॥

दौड— छोड गई जन्म भूमि को जा रही श्वसुर भूमि को,
अब सीता विन चित लगे ना. देख देख कर वाम भवन
को भर भर आवें नेना ॥

दो.— अवधपुरी में खुसी से, पहुंची जब बारात ।
स्वागत करने आ गये, नर नारी मिलकर साथ ॥

चौ— मंगल गायन सहित सखियोंने, सीता महल पहुंचाई है ।
धन्य कौशल्या भाग्य तेरे, सब ने दयी आन बधाई है ॥
दिल खोल दान तकसीम करो, नृप ने दिया हुक्म बजीरों को।
फिर प्रीति भोजन दिया भूपने, मुफलिस और अमीरों को ॥

गाना नं. १०

मिल वामन झगड़ा डाल रही, खोलो कगना बोली मार रही। टेर
सोचो मति तुम कंगना खोलो, समझ तुम्हें अवतार रही ।
धनुष की चाप नही कंगना है, रघुवर से हंस नार रही ॥१॥
चातुरनार कही सखियों से, वृथा कर तकरार रही ।
कगन खोल दिया रघुवर ने, यूंही बहस घडी चार रही ॥२॥

दो. – दशरथ नृप ने एक दिन, उत्सव दिया रचाय ।
मंगलीक शुभ कारणे, कलशे जल भरवाय ॥

चौ— भेज दिये रनवास कलश, पहला सेवक के हाथ दिया।
शेष कलश सब एक एक कर, दासी जनको बांट दिये ॥
निजनिज चेटी* ने निज निज रानी सिर कलश ढुलाया है।
यह देख हाल पटरानी कौशल्याको आमर्ष† आया है ॥

दो -(कौशल्या)मुझे कलश भेजा नही भेजा औरों पास ।
अपमान एक मेरा हुवा, बाकी रही हुलास ॥

चौ— कहने को तो पटरानी हूं क्या, इज्जत मेरी खाक रही ।
भेज दिया सब ही को जल, पहिला हक नृप को याद नही ॥

---

* दासी, † क्रोध,

प्रेम नही अब रहा, उन्हें, मैं गणना मे शुम्मार नही ।
इस बेइज्जति से मरना अच्छा, जीना मुझको दरकार नही ॥

दो— तुच्छ हृदय हो नारी का, भर लाई जल नैन ।
गद् गद् स्वर रानी कहे, उलट पुलट मुख बैन ॥

चौ.— इतने में आगया भूप, सब हाल देख घबराया है ।
बोले कहो कारण क्या रानी मरना पसंद क्यों आया है ॥
गद् गद् स्वर से क्या बोल रही, नयनों में जल भर लाई हो ।
क्या हुआ तेरा अपमान, या किसी दु ख से आज सताई हो ॥

गाना न. ११

राजा दशरथ का रानी कौशिल्या से पूछना-

महलों में शोक छाया, तेरे क्यों आज रानी ।
गुस्सेका कौन कारण, अए मेरी राजरानी ॥१॥
जागो या सो रही हो, व्याकुल क्यों हो रही हो ।
मुख जैसे की रो रही हो, किस गम में हो दिवानी ॥२॥
मगल है तेरे घर में, तू लीन किस फिकर में ।
इसका सुनु जिकर मैं, कैसी है गम कहानी ॥३॥
आर्त यह ध्यान छोडो, भ्रमता से मुख मोडो ।
उत्सव में मन को जोडो, वृथा क्या मन समानी ॥४॥

दो. (कौशल्या)-जान बूझ कर दु ख दिया, फिर बनते अन जान ।
भेज कलश सब को दिये, किया मेरा अपमान ॥

चौ— "यह लो जल महारानीजी", इतने में आकर बूढा बोला ।
झट लिया हाथ दशरथ नृपने, और रानी के सिरपर ढोला ॥
क्रोध हुआ उपशान्त अति प्रसन्न चित महारानी का ।
बोली महाराजा ने मुझ पर, खुद डाला कलशापानी का ।

दो— हाल देर का भृत्य से, पूछा नृप ने फेर ।
पहिले जल तुझ को दिया, कहां लगाई देर ॥

दो. (बूढा भृत्य)-मैं चाकर महाराज का, करू हुक्म तामील ।
जीर्ण मम काया बनी, लगी इस तरह ढील ॥

चौ. - धरता पैर उठा आगे, पीछे को पडता जाता है ।
जब उठे निरंतर खांसी, बलगम गले बीच अड जाता है ॥
क्या करूं है नारी कलिहारी, अविनीत पुत्र दु खदाई है ।
पुण्य उदय पिछली आयु में, शरण आपकी पाई है ॥

दो.— स्वयं अपना हाल कह, शर्माऊं महाराज ।
अपनी नारी के कहुं, कर्तव्य क्या सिरताज ॥

गाना नं १२ (बूढे भृत्यका)

फूहड़नार बहुत किलसावे, (टेर)
बांकी टेढी रोटी करती नीरस साग बनावे ।
भाग्यहीन अब रोटी खाले, ऐसे तो वचन मुझे प्यारसे बुलावे ॥
पहिले कहे बालन ला मुझसे, फिर पानी मंगवावे ।
क्षुधा के बस मांगु रोटी, सिरपर खांसडे चार टिकावे ॥२॥
दु.ख दर्द में कभी आनकर, पानी तक न प्यावे ।
वोली की मारे भर गोली, जख्मी जिगर पर तीर चलावे ॥३॥
क्षमा करो सब दोष मेरा, जो बना और बन आवे ।
मानिन्द बकरी शेर नारसे 'शुक्ल' मेरा यह मन घबरावे ॥४॥

दो. — झुरियां पड गई जिसपर, दान्त हुए सब दूर ।
यौवन सारा खो दिया, रहा बुढापा घूर ॥

चौ.— लगा कापने शीस श्वास पर, श्वास निरंतर आते है ।
हो गये हाथ मुर्दे समान, दो चरण मेरे थक जाते है ॥

पाप किया पिछले भव में, अब भी न धर्म कमाया है ।
अमोल समय भ्रम जाल में, फस कर मैने वृथा गंवाया है ॥

दो — व्यथा सुन कर वृद्ध की, दशरथ किया विचार ।
धिक् ऐसे ससार के, सिर पर डारो छार ॥

चौ — विरक्त हुआ मन दशरथ नृप का, बूढे पर उपकार किया ।
आयु पर्यन्त भोगे सुख पूर्ण, ऐसा नृप ने दान दिया ॥
सोचा कि यह अवस्था मुझ पर, भी एक दिन आ जावेगी ।
मनुष्य जन्म अनमोल समय, यह बात हाथ नही आवेंगी ॥

दो.— पुण्यवान् को झट मिले, जेसा होवे विचार ।
समवसरे आ बाग मे, सत्यभूति अनगार ॥

चौपाई - पूर्व पाठी आगम विहारी । चार ज्ञान तप सयम धारी ॥
पाच सुमति और पर उपकारी । प्राणी मात्र के हितकारी ॥

दो — जनता ने जब यह सुना, आये मुनिमहान् ।
हर्ष सहित पहुचे सभी, सुनते धर्म व्याख्यान ॥

चौक- परिवार सहित गये, दशरथ नप, मुनि जन को शीस नमाया है।
जब सुना धर्म व्याख्यान अति, आनन्द ज्ञान में आया है ॥
चन्द्रगति भ्रमण कारण, परिवार सहित था सैर गया ।
श्री मुनिदर्शन अर्थ अवधमें, वापिस आते ठहर गया ॥
थी ज्ञान की चर्चा यहा लगी हुई, मुनि भेद खोल दर्शाते है ।
कुकर्म संग हो मूढ फिरें यह जीव बहुत दु ख पाते है ॥
हो काम में अन्धे फिरें भटकते, राग मोह चित्त लाते है ।
देख मनोगम झुक लाभ, न होने पर पछताते है ॥
यह चिन्तामणि मनुष्य तन पाया. फेर हाथ नही आयेगा ।
अचक्षु वर्ण रस घ्राण, अनन्त चक्रमें रुल जायेगा ॥

दोहा— पुद्गल प्रावर्तक जब सुना, गये भव्य घबराय ।
कुमति छोड़ सुमति ग्रही, सम्यक्त्व दिल ठहराय ॥
उपदेश बाद भूपाल ने, प्रश्न किया तत्काल ।
पूर्व भव का हे प्रभु ! कृपा निधि कहो हाल ॥

दो. (मुनि)-कर्मों की विचित्रता, सुनो भूप धर ध्यान ।
भामडल सीता जन्म, युगल पने पहिचान ॥

छंद (मुनि)-बहन भाई आन जन्मे, यह विदेहा नार के ।
भाई को सुर हर ले गया था, द्वेष दिल में धार के ॥
रख इसे वैताड पर फिर, सुर गया निज धाम को ।
तूने उठाकर सुत वही, निज हाथ से दिया वाम को ॥
पूर्व जन्म का सुत तेरा, सरसा यह इसकी नार थी ।
तुम बने निर्ग्रन्थ मुनि, पुष्पावती भी लार थी ॥
अन्त तुम सुर पुर गये, सुख वैक्रिय भोगे अति ।
छोड सुर पद रथनुपुर, आकर बना चन्द्रगति ॥
संयोग वश आकर बनी, पुष्पावती पट नार है ।
भामंडल बना यह सुत तेरा, वास्तव में जनक कुमार है ॥

दो — भामंडल ने कथन सब, सुना लगा कर कान ।
अध्यवसाय* निर्मल हुवा, जाति स्मरण ज्ञान ॥
पूर्व जन्म का हाल सुन, गिरा मूर्च्छा खाय ।
हो सचेत कहने लगा, मस्तक जरा हिलाय ॥

चौक-(भामंडल) हू महापापी चांडाल अधर्मी दुष्ट आत्मा मेरी है ।
जो वांछा मैं संयोग अनुचित, दैव ने बुद्धि फेरी है ॥
ततकाल गिरा चरणों में सीया, के बोला अविनय माफ करो ।
मैं हूं अपराधी बहिन तेरा, मुझ दुष्ट पे कोई दंड धरो ॥

* मन के भाव-विचार-अतं करण का शुद्ध होना।

दो -(कवि) भ्रात विरह का शल्य सब, सीता का हुआ दूर।
न फूली समाती अंक में, मिला वह सुख भरपूर ॥

चौक— मिला देख भाई सीता की, खुशी का न कोई पार रहा।
श्री रामचन्द्रजी भामंडल को, देता अतितर प्यार रहा ॥
निज हाथ शीस धर सीता ने, भामंडल को आशीस दिया।
चिरंजीव रहो आए भाई, अब तक तैंने कहां वास किया ॥
फिर मिथिला नगरी रामचन्द्रने, झट यह खबर पहुचाई है।
यह सुनते ही वृतान्त जनक, और साथ विदेहा आई है ॥
देख पुत्र का मुख राजा का, हृदय कमल प्रकाश हुआ।
ग्रीष्म अन्त श्रावण में, जैसे सब जंगल में घास हुआ ॥
भामंडल ने माता पिता के, चरण न में, शीस झुकाया है।
निज सुत को देख दम्पति के, हृदय में आनद छाया है ॥
उस खुशी को कैसे बतलावें, न भाव कथन में आया है।
न शक्ति यश लेखिनी की, सर्वज्ञ देव ही ज्ञाता है ॥
नृप चन्द्रगति ने भामंडल को, रथनुपुरका राज दिया।
आप लिया संयम नृप ने, तप जप से आत्म काज किया ॥
अष्ट कर्म संहारण को, शुभ भाव सदा ही वर्तावे।
अहो भाग्य 'शुक्ल' उस प्राणी का, जो संयम मार्ग को चाहे ॥

दो.— आनन्द मंगल हो गया, पहुचे निज निज धाम।
जनक भूप का सिद्ध हुआ, मन वाछित सब काम ॥
सत्यभूति ज्ञानी मुनि, शुभ चारित्र विशाल।
शासन के शृंगार है, पट् काया प्रतिपाल ॥
विधि सहित करे वन्दना, बोले दशरथ भूप।
पूर्व जन्म का है प्रभु वर्णन करो स्वरूप ॥

प्रश्न सुन कर नर नाथ का, तब बोले मुनिराय ।
पूर्व भव की कथा तुम, सुनो श्रवण चित्तलाय ॥

❀ राजा दशरथ का पूर्व भव वर्णन ❀

दो. (मुनि)-सेवापुरवरनगर में, भावन सेठ सुजान ।
पत्नी उसकी दीपिका, सुनो लगा कर कान ॥

छंद— उपास्ति नामक तिनके सुता, साधु की जिस निन्दा करी।
जीव नृप वह ही तुम्हारा, अब सुनो आगे चरी ॥
चद्र गिरी भूपाल के, धन्य श्री शुभ नार थीं ।
वरुण नाम का सुत हुवा, संगति मिली सुखकार थी ॥
सेवा करे साधुजनों की, ध्यान दो शुभ नित्य रहे ।
दी छोड़ खोटी संगति, सब आत्मा को जो दहे ॥
उत्तर कुरुक्षेत्र में, वहा मर कर हुआ फिर युगलिया ।
फिर तीन पल्य की भोग आयु अन्तमें सुरपद लिया ॥

दो -(मुनि) पुष्कलावती नामक पुरी, पुष्कलावती विजयमझार ।
नन्दी घोष राजा भला, पृथ्वी नामा नार ॥

चौक- नन्दी वर्धन इक हुआ पुत्र, सुरगति से चव कर आया है
दे राज पुत्रको नदी घोषने, तप संयम चित लाया है ॥
श्री यशोधर नामक मुनि पास, संयम व्रत ले अनगार हुआ
नन्दी वर्धन भी पीछे से, श्रावक बारह व्रत धार हुआ ॥

दो.— गृहस्थ धर्म लेकर गयो, पचम स्वर्ग मंझार ।
आयुष्य क्षय कर देवकी, फिर लिया मनुष्य अवतार ॥
पूर्व महा विदेह क्षेत्र में, वैताढ्य गिरी सुविशेष ।
उत्तर श्रेणी मे भला, शशीपुर नामक देश ॥

चौक(मुनि) था भूप रत्नमाली विद्याधर, विद्युन् लता नारी तिसके।
एक सूर्यंयश पुत्र जन्मा, अति शूर वीर योधा जिसके॥
सिह पुरी के वज्रनयन, नृप से राजा का जग हुआ।
वहा विजय रत्नमाली पाई, और वज्रनयन नृप तंग हुआ॥

दो मुनि सिह पुरी को घेरकर, अग्नि लगा लगान।
पूर्व मित्र इक देव आ, लगा देन यों ज्ञान॥
भूरिनन्दन तू हुआ, पूर्व जन्म में भूप।
पड विलासितों में तजा, तूने धर्म अनुप॥

चौक— मुनिसे मास का त्याग किया, किन्तु कुसग ने घेरलिया।
भग किया तूने व्रत अपना फिर ढग उसी तर गेर लिया॥
मैं राज पुरोहित था तेरा, अब आगे हाल सुनाता हूं।
स्कंद राय के हाथ से फिर, मैं मरण वहां पर पाता हू॥
हस्ति यूथ में जन्म लिया, पर कर्म कही न तजते है।
भूरिनन्दन के भृत्यों द्वारा, वहा पर भी फंद में फसते है॥
मैं नायक किया हस्ति चमु में फिर होनी ऐसी बनती है।
अन्य एक नृप से, भूरिनन्दन की लढाई ठनती है॥

दोहा— उस घोर युद्धमें मैं तजे,, हस्ति योनि के प्राण।
पुण्योदय से फिर हुआ, इस का करू बयान॥
उसी भूरिनन्दन के थी, गाधारी नामकी पटरानी।
मैं उसी के जाके पुत्र हुआ, जो कहलाती थी महारानी॥
अरि सूदन नाम धरा मेरा, फिर जाति स्मरण ज्ञान हुआ।
लख करके पूर्वभव अपना, संसार से मुझे वैराग्य हुआ॥

दो — मुनि वृत्ति धारण करी. जनक की आज्ञा लेय।
ज्ञान प्रथम धारण किया फिर तप जप में चित देय॥

पांच सुमति और तीन गुप्ति, का दिलमें ध्यान टिकाया है।
और महाघोर तप अग्निमें, दहु कर्म समुहको खपाया है ॥
अब अष्टम स्वर्गमें हुआ, देव उपमन्यु नाम धराता हूं ।
अब सुनो हाल राजन् अपना, तेरा भी हाल सुनाता हू ॥

चौ.— तैने मरकर अजगर योनि लई, फिर दावानलमें भस्म हुआ ।
जा नरक दूसरी में पहुंचे, वहां कुंभिपाक में जन्म हुआ ॥
तू निकल नरक से भूपहुआ, रत्नमाली शुभ नाम कहाता है।
फेर नरक में जाने का यह, क्यों सामान बनाता है ॥
पाया देव से बोध नृप ने, पाप कर्म सब छोड़ दिया ।
फिर सूर्य यश पुत्र सहित, दुनियां से दिलको मोड़ लिया ॥
निज 'कुल-नंदन' को दिया राज्य, दोनोंने संयम धार लिया।
और स्वर्ग सातवें महा शुक्रमें, जिस्म वैक्रिय सार लिया ॥

दो.— स्वर्ग सातवें भोग कर, सुत सुख अति विस्तार ।
सूर्ययश आ कर हुआ, तू दशरथ भूप उदार ॥
रत्न माली आकर हुआ, जनक भूपति यह ।
कनक जनक भाई भला उपन्या सहज स्नेह ॥

चौ.— मुनि नन्दी घोष ने ग्रैवेगमें, भोगे सुर सुख अति भारी
सो सत्य भूति निर्ग्रन्थ हुआ में, चार ज्ञान महाव्रत धारी
सुना हाल जन्मान्तर का, वैराग्य भूप दिल छाया है
फिर पुरी अयोध्या में आकर, नृप ने दरबार लगाया है

दो— सुत मित्र पूछे सभी, और बडे मंत्रीश ।
भरी सभा के वीच में, भाखण लगे महीश ॥

चौ. (दशरथ)-अस्थिर तन धन संसार में,
है फिर इससे कहो संबंध ही क्या

जिन फूलों ने कुमलाना है,
फिर उनकी मस्त सुगंध ही क्या ॥
प्रकृति का तन बना सभी यह,
अवश्य मेव खिर जावेगा ।
अनमोल समय यह मिला,
'शुक्ल' फिर शीघ्र हाथ नहींआवेगी ॥

सब राज्यमहल द्रव्य दुनिया का, कुछ जाना मेरे साथ नही ।
है यही समय जो निकल गया, दुर्लभ फिर आना हाथ नही ॥
यह तृष्णा है आकाश तुल्य, न भरी न भरने पायेगी ।
अग्नि में जितना घी डालो, उतनी ही लपट दिखायेगी ॥
जो वस्तु अनित्य संसारमें है, उससे अनुराग बढाना क्या ।
मिल रहा सखीया जहर समझ, फिर उस भोजन का खाना क्या ॥
हो गया विरक्त अब मनमेरा संयम व्रत लेना चाहता हूं ।
सुत रामचन्द्र को राज ताज, निज कर से देना चाहता हूं ॥

दो(भरत) भरत कहे पिताजी सुनो, मैं व्रत लूं तुम लार ।
हित न जाने आपना, सो जन मूढ गवार ॥
पहिला दुःख दारुण बड़ा, विरह आपका होय ।
और संसार बढावना, कौन सहे दुःख दोय ॥

चौ — यह बात शीघ्र ही फैल गई, जैसे चिकनाई पानी पर ।
दासीने जो कुछ सुना हाल सो कहा कैकेयी रानीपर ॥
रामचन्द्र को राजतिलक, महारानी होने वाला है ।
और पुत्र तुम्हारा भरत भूपसग, संयम लेने वाला है ॥
दो — एक बात है सत्य तेरी, दूजी. बिलकुल झूठ ।
क्या कुभाव तेरे हृदय. डालन के है फूट ॥

चौक- पती देव संयम लेगें, यह बात तो सभी जानते हैं ।
उत्राधिकारी राम बनेगें, यह भी सभी मानते हैं ॥
पर संयम लेगे भरत कुमर, यह किसने तुजे सुनाया है ।
जिस बात का कोई संबन्ध नही, कहकर मम हृदय जलाया है ॥

दो.— दासी तेरी बात का मुझे नही इतवार ।
सिरपैर नहीं कुछ बात का, बांदी मूढ़ गवार ॥१॥

चौ — तू बांदी मूढगंवार सभी, बकवाद करे अपने मन की ।
यदि फेर मस्खरी की मुझ से, तो खाल उडा दूंगी तन की ॥
क्या तुझको कोई स्वप्न आया, या नशेवीच गल्तान हुई ।
यह भेद समझ में नही आता, सुन बात तेरी हैरान हुई ॥

दो (दासी)-सत्य सभी मैंने कहा, कर तेरा अनुराग ।
बार बार तुझ से कहूं, इस गफलत को त्याग ॥

चौ.— इस समय यदि प्रमाद किया तो, फिर पीछे पछतावेगी ।
भरत पुत्र के विरह में फिर, रो रो कर समय बितावेगी ॥
तू स्वामिनि है मैं दासी हूं, इस कारण कहना पडता है ।
और भरत कुमर का मोह राणी, मुझको भी आन जकड़ता है ॥

गाना नं. १३ (दासी का)

रागनी-तीन-ताल—

रनी तुझ को नहीं मन, ज्ञान खबर । स्थायी—
अभी शहर में पिटा, ढिंढोरा, राज तिलक का समय दुपहरा ॥
खुशियां में सब अवध नगर ।
रामचन्द्र को राज्य मिलेगा, तख्त नशीनी ताज मिलेगा ॥
धूम मची कर देख नजर ।

कहे दशरथ मैं संयम धारूं, भरत कहे मैं संग सिधारूं ॥
फिर रानी तेरी नही कोई कदर ।
सोच यत्न कुछ करले रानी, आलस्य में क्यों पडी दिवानी ॥
तू भरत से करले आज सबर ।

दो— सुन कर दासी के वचन, भुल गई रंग चाव ।
विरह पुत्र का न वनें, सोचन लगी उपाव ॥

चौ— लगी अकल भ्रमण करने, कोई ढग नजर नही आता है ।
विरक्त हुवे नृप नही रह सकते, सोचा सुत भी संग जाता है ॥
जो वर था मिला स्वयम्वर में नृप के भंड़ार रखाया है ।
अद्भुत यह ढग निराला अव, लेने का मौका आया है ॥

दो— पास वुलाई रानिये, बोले नृप समझाय ।
राज काज दे राम को, मैं सयम लूं जाय ॥

चौ— जो जो मन के भाव आप, वह प्रकट सभी कर सकती हो ।
यह जन्म मरण संसार अनित्य, तज सयम भी धर सकती हो ॥
श्रेष्ठ मुहूर्त सभी ज्योतिषी, देख हाल वतलाते है
कल रामचन्द्र को राज ताज दें, हम सयम चित्त लाते है ॥

दो— सुनते ही नृप के वचन, रानी सव हैरान ।
क्योंकि पति वियोग का समय दृष्टि लगा आन ॥

चौ - देख विरह नृप को सव रानी, यथा योग समझाती है ।
निजराग प्रेम दिखलाने को, नयनो से नीर वहाती हैं ॥
जव समझ लिया राजा आगे न पेश हमारी जाती है ।
तव शेर मौन हो गई, कैकेयी ऐसे वचन सुनाती है ॥

दो(कैकेयी) नम्र निवेदन है पिया, सयम लेना वाद ।
वर भंडारे है मेरा, स्वय करो प्रभु याद ॥

चौ.— स्वयं करो प्रभु याद गये थे, आप स्वयवर घर में ।
पंक्ति से थे वाहिर मैं लाई, वर माला जव कर में ॥
मचा घोर संग्राम अड़े, जव शूरे सभी समर में ।
करी सहाय मैं उठा होल था, जव आपके आन जिगर में ॥

गाना नं. १४ (केकेयी का दशरथ से कहना) वहर कव्वाली

अक्ल उस दिन मेरे स्वामी, गई थी कर किनारा है ।
अरिने सारथिके बाण जव सीने में मारा है ॥१॥
शत्रुओं ने तुम्हें आकर, युद्ध में जव दवाया था ।
बनी में सारथिन आकर, दिया तुमको सहारा है ॥२॥
पडी मैं दल में विजली सी, चलाई तेग फिर तुमने ।
हुए काफूर सब शत्रु रवि से, जैसे सितारा है ॥३॥
हो खुशी फिर अपने मुझ से, कहां मांगोगी सो दूंगा ।
न तोड़ूं वाक्य क्षत्रिय हू, वचन तुमने उचारा है ॥४॥
धरो भंडार में मैंने कहा, प्रीतम वचन लेकर ।
उऋण होवें मुझे देकर, आप सिर बोझ भारा है ॥५॥

दौड— सुनो स्वामी चित लाके, वचन दो मेरा चुका के ।
वचन क्षत्रिय नहीं हारे, जो हारे सो समझ पति,
नही पहुंचे मोक्ष द्वारे ॥

दो (दशरथ)-हां मैंने था वर दिया, कर तेरा अनुराग ।
बिना एक चारित्र के, जो मर्जी सो मांग ॥

चौ. (,,)-सब ठीक दिलाया याद, मुझे अये रानी तूने आ करके ।
मैं क्षत्रिय हूं नही तोड़ूं वाक्य, सब कहुं तुम्हें समझा करके ॥
जो कुछ इच्छा तुझ को रानी, सब देने को तैयार हूं मैं ।
निष्फल दुनियां में एक घडी, भी रहने से लाचार हूं मैं ॥

चौपाई- क्षत्रिय कुल रीत यही सुन रानी। वचन हेत तजते जिंदगानी॥
मेरु समुद्र चले यही मान। शूर वचन जाने सम प्राण॥

दो (कैकेयी)-आप तुल्य कोई है नही, दानी जन महाराज।
वर मुझ को भी दीजिये, जो कुछ मागु आज॥

चौ (,,)-भरत पुत्र को राज तिलक दो, यही मांगना चाहती हूं।
बस और नही इच्छा मुझ को, सन्तोष इसी मे लाती हूं॥
अब कृपया आप शीघ्रता से, मुख से यह वचन सुना दिजे।
तुम होकर उऋण सब तरह से, जिन भाषित तप संयम कीजे॥

दो — सुने वचन जब नारके, गया कलेजा कांप।
राजा को इस बात का, हुआ घोर सन्ताप॥

चौ — उड गये अकल के सब तोते, नृप दिल में अति उदास हुआ।
बस फसा वाम के जाल भूप वन, आर्तध्यानी निराश हुआ॥
फिर दीर्घ श्वास लेकर बोला, 'अच्छा' उपाय यह करदेंगे।
अब जावो तुम निज महलों में, हम ताज भरत सिरधर देंगे॥

दो — दशरथ मन में सोचता मुश्किल बनी अपार।
इधर कूआ खाई उधर, पडे किस तरह पार॥

गाना नं. १९ (दशरथ का विचार)

आज मुझ को किस तरह, धोका दिया इस वामने।
कैसे यह अधिकार तज दूं. राम सुत के सामने॥१॥
सर्प के मुख में छछूंदर, खाय या छोडे उसे।
हाल वह ही कर दिखाया. आज मेरा वामने॥२॥
छीन हक मैं राम का. कैसे भरत सुत को देऊ।
कर दिया हैरान इस बेमेल अनुचित कामने॥३॥

वचन को दारूं नही जो, आत्मा का धर्म है ।
कर दिया वे हाल मुझको, इस करज के दाम ने ॥४॥
तोड़ दूं व्यवहार सारा, न्याय कैसे छोड़ दूं ।
प्रसिद्ध हम सब को किया, दुनियां में जिस सुतरामने ॥५॥
तीर बीन छलनी किया, मेरा कलेजा नार ने ।
अब 'शुक्ल' मैं क्या करूं, युक्ति न आती सामने ॥६॥

दो.— सोच फिकर में इस तरह, हुआ भूप लाचार ।
इतने में आकर झुके, चरण न पद्म कुमार ॥

चौ.— आ नमस्कार की चरणों में. फिर मुख पर नजर टिकाई है
बैठे कुछ आज उदास भूप, सब चमक दमक मुर्झाई है ॥
यह देख पिता का हाल राम का हृदय कमल मुर्झाया है ।
दो हाथ जोड नम्रता से, यों शीतल वचन सुनाया है ॥

दो. (रामचन्द्र)-कारण आर्तध्यान का, बतलाओ महाराज ।
विकट समस्या आ गई, कौन सामने आज ॥

चौ (,,)-कौन सामने आज आपके, मन में बडा फिकर है ।
आज्ञा कर दई भंग किसी ने. या भय और जबर है ॥
शूर वीर रणधीर आपकी, जाहिर तेग समर है ।
कौन फिकर है पिता आपको, जब तक राम कुमर है ॥

दौड— भेद दिल का बतलावो, जो आज्ञा हो फरमावो ।
जन्म तुम घर लीना है, पिता रहे जो दु.खी फेर
धिक्कार मेरा जीना है ॥

दो (दशरथ)-बेटा तेरे वचन सुन, मिला मुझे आराम ।
जैसा तेरा नाम है, वैसा ही शुभ काम ॥

चौ— अय! बेटा मैं बडे बडे, संग्रामों में न घबराया था।
इन भुजबलों से शूरवीर, योद्धा का मान घटाया था॥
अब उलट फेर एक आन पड़ा, कोई रास्ता मुझे न पाया है।
और उसी दु:खने अय पुत्र, मेरा यह हाल बनाया है॥

दो— खान पान भाता नही, उड गये मेरे होश।
सोच रहा तजवीज में, बैठा यहां खामोश॥

छ— ककेयी रानी का, जब था, स्वयम्वर मडप रचा।
पहिनाई वरमाला मुझे, तब घोर युद्ध वहां पर मचा॥
तीर खा मम सारथी, धरणी गिरा मुर्झाय के।
रानी बनी तब सारथिन उस घोर युद्ध में आय के॥
शत्रु भगे मैदान से सब, रण विजय मैं कर लिया।
देख पराक्रम हो प्रसन्न रानी को था तब वर दिया॥
वचन कर रक्खा था, मेरे, पास वर मागा अभी।
जिव्हा नही आगे को चलती, कैसे बतलाऊ सभी॥
राज देवो भरत को मागा है, वर यह दु:ख मुझे।
ऋण मेरा उतरे नहीं, पुत्र मैं बतलाऊ तुझे॥

दो.— मन मे बडी उमग थी, लेऊं सयम धार।
इस झगडें ने आन कर, किया मुझे लाचार॥

चौ— क्षत्रिय अपना वचन सदा, सब पुरी तरह निभाता है।
महाशूर वीर नही हटे कभी, चाहे अपने प्राण लगाता है॥
कैसे करू वचन पूरा अब, यही मैं ध्यान लगाता हू।
यहां बैठा दु:ख में लीन हुआ, इस जीने से घबराता हू॥

दो (राम)-राज्य न कारी चीज पर, इतने है हैरान।
वर देने को है पिता, मागो हाजिर प्राण॥

गाना नं. १६ (रामचन्द्र)

पिता माता का कर्जा, सिर से तारनाजी ॥ स्थाई
तुम गल जिस पर माला पाई, फिर दल में आ जीत कराई।
इस से बढ कर और कोई उपकार नाजी ॥१॥
विपत् समय में करी सहाई, बडी मात की शूरमताई।
जो मागे दो जरा करो, तकरार नाजी ॥२॥
खिला आज यहा चमन हमारा, कृपा माता की करो विचारा।
धन्य कैकेयी मात सर्व, दुःख टारनाजी ॥३॥
क्षत्रिय का निज कर्म यही है, वचन न तोडे धर्म यही है।
हक बेहक का करो, आप इस रार नाजी ॥४॥
पिता आपने वचन दिया है, राज्य मात ने मांग लिया है।
लिये भरत के मुझे, खुशी का पार नाजी ॥५॥
भरत राम दो नही पिताजी, क्या नाचीज है ताज पिताजी।
जैसे मस्तक चक्षु, इन्हें विचार नाजी ॥६॥
पहिले भरत को राज तिलक दो, फिर जिन दीक्षा में निज दिल दो।
शुक्ल ध्यान निर्विघ्न, मोक्ष पद धार नाजी ॥७॥

दो (दश)-शावास मेरे सुत के हरी, विनय वान रणधीर।
तृषातुर को अय कुमर, प्याया शीतल नीर ॥

चौ. (,,)-ग्रीष्म अन्त श्रावण जैसे, या जैसे द्वीप समुद्र में।
शशि चकोर को सुख दायी, या औषधी रोग भगंदर में ॥
जैसे श्री जिन धर्म जीव को, सुख अनन्त दिखलाता है।
सच ऐसे मुझ को सुखदायी, तू पुत्र राम कह लाता है ॥

दो — उसी समय भूपाल ने, किया एक दरबार।
मंत्रीश्वर बुलवाय कर करने लगे विचार ॥

चौ (दश)-घडी पहर निष्फल मुझको वर्षों की तरह दिखाते है।
अब राज तिलक दे भरत पुत्र के, सिर पर ताज टिकाते है॥
तुम यथा योग्य सब तयारी, करने में अब न देर करो।
व्यवहार सभी यह ठीक वना, स्वतंत्र हमें भी फेर कर॥
यह नियत सभी कुछ हुआ, आज वर रानी का वर देते है।
सुत भरत अयोध्या पति वना, अब हम जिन दीक्षा लेते है॥
है यही सम्मति रामचन्द्र की, भरत भूप होना चाहिये।
और ऐसे पुत्र सुपुत्र के लिये, धन्यवाद देना चाहिये॥

दो — राज कुमर प्रस्ताव सुन, वोले भरत कुमार।
उदक विलोने से कभी, निकला है क्या सार॥

दो-(भरत) माता को मैं क्या कहुं, मुझे न चाहिये राज।
चारित्र आपके संग लू सारू आत्म काज॥

चौ (,,) अनुचित शब्द कोई माताको, कहना महा असभ्यता है।
और आश्चर्य में चकित हुआ, दिल मेरा वडा धडकता॥
क्या यही एक वरथा दुनिया में, जो माता ने मांगा है।
जो परम धर्म का मर्म शर्म, हक दोनों को ही त्यागा है॥

दो. (भरत) सरल स्वभावी पिताजी, तुम भोले भन्डार।
असुरो को भी न मिला, त्रिया चरित्र पार॥

चौ (,,) मोह कर्म के वशी भूत हो अपना आप भुलाती है।
और पुत्र के हित के कारण अपना सर्वस्व लगाती है॥
रोना जो इन्हें नहीं आवे तो, नेत्रों को लव लगाती है।
और फाड गलारो चुग टक, कर मन वेदना दिखाती है॥
धन में न सिंह से मचलाती, पर दुपहर से डर जाती है।
जो चढ विकट पर्वत ऊपर, घर देहली से डरपाती है॥

चौं (.,) सिर आखोंसे माता पिता का, हुक्म बजालाना चाहिये ।
और अपनी बुद्धि का परिचय, मौके पर दिखलाना चाहिये ॥
कर्तव्य है पुत्र शिष्य का जो गुरुजन का हुक्म बजाता है ।
अब कहो पुत्र मुख से उचार क्या, समझ तुम्हारी आता है ॥

दो. (भरत) बेशक मैं अविनीत हूं, दुर्बुद्धि दुःखकार ।
रामचन्द्र को राज्य दो, मुझे नही स्वीकार ॥

छ- (भरत) शोभता मुझ को नही, यह ताज अपने सिर धरू ।
धिक्कार चुल्लु भर कहीं पानी में न जाकर करूं ॥
चाकर का चाकर मैं बनू, राजो का राजा राम है ।
आज्ञा उन्हों की सिर धरे, ये ही हमारे काम है ॥
और जो मर्जी पिता आज्ञा, मुझे दे दीजिये ।
ताज शोभे राम के सिर, बेशक अभी धर दीजिये ॥
इस अयोध्या राज की, मुझ को पिताइच्छा नही ।
दीक्षा लेने के सिवाय मान् कोई शिक्षा नही ॥

दो - (राम) राम कहे भाई सुनो, बनों न तुम नादान ।
कुल के गौरव पर जरा, करना चाहिये ध्यान ॥

चौ (राम) तेरा महज हिलाना सिर, यह मुझको नही गवारा ।
प्रतिज्ञा हो भंग पिता की, कुछ तो करो विचारा ॥
आदिनाथ से चला आ रहा, शुद्ध कुल वंश हमारा ।
आप से बुद्धिमानों को है, काफी जरा इशारा ॥

गाना न. १७ (राम का भरत को कहना)

वचन पिता का भाई तुम मानो जरूर ॥ टेर ॥
सेवा कर कर हारें, सारी उमर गुजारें । ।
पिता का कर्ज उतारें, तब भी होता न पूर ॥१॥

पिता का धर्म बचाओ, सिर पे ताज टिकाओ ।
जल्दी कर के दिखावो, होवे दु ख सब दूर ॥२॥
तुमने हुक्म यह टाला, फिर कहां संयम पाला ।
यह क्या मुख से निकाला, होवो गुस्से में चूर ॥३॥
तू रण धीर शूरा, मेरा हम दर्दी पूरा ।
बेशक राज यह कूडा, धारो हो मजबूर ॥४॥

दौड— चलो अब देर न लावो, तख्त पर टिकावो ।
खुशी सब का मन होवे, राजतिलक मेरे करसे
तेरे मस्तक पर होवे ॥

दो (भरत)-क्यों करते हो हर घडी, भ्रात मुझे मजबूर ।
राज ताज शोभे तुम्हें, मैं चरणों की धूर ॥

चौक (भरत) आपके होने हुवे करू मैं, राज्य बडा नालयाक हूं ।
निश्चय हूं गुण हीन पिता माता, सब को दु ख दायक हू ॥
लाख कहो चाहे क्रोड हर समय, मैं तो यही पुकारूंगा ।
श्री राम के होते हुवे कदापि, राज ताज नही धारूंगा ॥

दो.— दशरथ का सिर डोलता, युक्ति सोची राम ।
चक्र में आया भरत बना समझ अब काम ॥

चौ. (राम) इस के मुख निकल चुका, नही राम सामने राज्य ।
तो पुरी अयोध्या छोड चलू, बस सैर अभी सामान करूं ॥
पीछे सब राज कार्य भरत, स्वयं आप कर लेवेगा ।
येही एक ढग निराला है, बस पिता बचन वर देवेगा ॥

दो.— मन में खूब विचार कर, बोले राम कुमार ।
पिता आपका भरत सुत है, विनयी आज्ञाकार ॥

चौ (राम) मेरे होते राज्य भरत ने, करना नही पसंद किया ।
फिर सोच समझ कर और एक, हमने ऐसा प्रबन्ध किया ॥
अपने वचनों का पास भरत को जो निकले कभी न तोड़ेगा ।
मेरे जाने के बाद करेगा राज, हुक्म नही मोड़ेगा ॥
हे पिता ! आपका ऋण उतरा, यह खुशी मेरे मन भारी है ।
अब जाता हूं वन सैर आज, लेवो प्रणाम हमारी है ॥
इस चरण रज निर्गुणी राम के, हाथ शीस पर धर दीजे ।
मैं सेवा न कर सका, आपकी क्षमा दोष सब कर दीजे ॥

दो.— रामचन्द्र के जब सुने, दशरथ नृप ने वैन ।
मूर्च्छित हो धरणी गिरा, नीर बहाता नैन ॥

चौ— झट गिरा भरत आ चरणों मे, नेत्रों से नीर बहाता है ।
हा खेद निकल गया क्या मुख से, गद्गद् स्वर अति पछताता है ॥
अब हो सचेत दशरथ राजा, दुःख सागर बीच समाया है ।
श्री राम ने जाकर माता के, चरणों में शीश झुकाया है ॥

दो (राम) माता मेरी लीजिये, चलत समय प्रणाम ।
साधन चौदह वर्ष मे, होगा वन का धाम ॥

छं— जब मात के चरणों झुका, पांचो ही अंग निमाय कर ।
मानिंद चंपक बेल झट गनी गिरी मुर्झाय कर ॥
कुछ चेत जब मन को हुआ, सुन राम से कहने लगी ।
और अश्रुधार इन दम नेत्रों से बहने लगी ॥

दो. (कौसल्या) दुःख दाई तूने कहा, शब्द विकट सा आन ।
बिना मौत मारा मुझे, लगा कलेजे बाण ॥

चौ (.) लगा कलेजे बाण यही अनि मेरे बदन के ।
अन्तरगत से नाद किया तेरे [illegible] ॥

पिता का धर्म बचाओ, सिर पे ताज टिकाओ।
जल्दी कर के दिखावो, होवे दुःख सब दूर ॥२॥
तुमने हुक्म यह टाला, फिर कहा संयम पाला।
यह क्या मुख से निकाला, होवो गुस्से में चूर ॥३॥
तू रण धीर शूरा, मेरा हुक्म दर्जी पूरा।
बेशक राज यह कूडा, धारो हो मजबूर ॥४॥

दौड— चलो अब देर न लावो, तख्त पर टिकावो।
खुशी सब का मन होवे, राजतिलक मेरे करसे
तेरे मस्तक पर होवे ॥

दो (भरत)-क्यों करते हो हर घडी, भ्रात मुझे मजबूर।
राज ताज शोभे तुम्हें, मैं चरणो की धूर ॥

चौक (भरत) आपके होने हुवे करूं मैं, राज्य बडा नालयाक हूं।
निश्चय हूं गुण हीन पिता माता, सब को दुःख दायक हूं॥
लाख कहो चाहे क्रोड हर समय, मैं तो यही पुकारूंगा।
श्री राम के होते हुवे कदापि, राज ताज नही धारूंगा॥

दो.— दशरथ का सिर डोलता, युक्ति सोची राम।
चक्र में आया भरत बना समझ अब काम ॥

चौ. (राम) इस के मुख निकल चुका, नही राम सामने राज्य।
तो पुरी अयोध्या छोड चलू, बस सैर अभी सामान करूं॥
पीछे सब राज कार्य भरत, स्वयं आप कर लेवेगा।
येही एक ढग निराला है, बस पिता बचन वर देवेगा॥

दो.— मन में खूब विचार कर, बोले राम कुमार।
पिता आपका भरत सुत है, विनयी आज्ञाकार ॥

चौ (राम) मेरे होते राज्य भरत ने, करना नहीं पसंद किया ।
फिर सोच समझ कर और एक, हमने ऐसा प्रबन्ध किया ॥
अपने वचनों का पास भरत को जो निकले कभी न तोड़ेगा ।
मेरे जाने के बाद करेगा राज, हुक्म नहीं मोड़ेगा ॥
हे पिता! आपका ऋण उतरा, यह खुशी मेरे मन भारी है ।
अब जाता हूं वन मैं आज, लेवो प्रणाम हमारी है ॥
इस चरण रज निर्गुणी राम के, हाथ शीस पर धर दीजे ।
मैं सेवा न कर सका, आपकी क्षमा दोष सब कर दीजे ॥

दो.— रामचन्द्र के जब सुने, दशरथ नृप ने बैन ।
मूर्च्छित हो धरणी गिरा, नीर बहाता नैन ॥

चौ— झट गिरा भरत आ चरणों में, नेत्रों से नीर बहाता है ।
हा खेद निकल गया क्या मुख से, गद्गद् स्वर अति पछताता है ॥
अब हो सचेत दशरथ राजा, दुःख सागर बीच समाया है ।
श्री राम ने जाकर माता के, चरणों में शीश झुकाया है ॥

दो (राम) माता मेरी लीजिये, चलते समय प्रणाम ।
साधन चौदह वर्ष में, होगा वन का धाम ॥

छ— जब मात के चरणों झुका, पांचों ही अंग निमाय कर ।
मानिंद चंपक बेल झट रानी गिरी मुर्झाय कर ॥
कुछ चैन जब मन को हुआ सुत राम से कहने लगी ।
और अश्रुधार उस दम नेत्रों से बहने लगी ॥

दो. (कौसल्या) दुख दाई तूने कहा, शब्द विरह का आन ।
बिना मौत मारा मुझे, लगा कलेजे बाण ॥

चौ ( ) लगा कलेजे बाण रही शक्ति मेरे बदन में ।
अन्धकार हो चार दिशा मेरे, [illegible] ॥

देख तुझे सुखकन्दचन्द, खुश रहूं हमेशा मन में।
हरगिज नही जाने दूंगी, पुत्र मैं तुझ को वन में॥

दौड़— मेरा तू एक कुमर है, छोड कर चला किधर है।
मरे रो रो कर मइया, विना विचारे किया कामतेने
क्या कुमर कन्हैया॥

दो (**राम**) जान बूझ कर मात तू, क्यों बनती अनजान।
यहां रहने से न रहे, कुल का गौरव महान्॥

छ (**राम**) राज्य मेरे सामने भाई भरत करता नहीं।
ऋण उतारे बिन पिता का, भी हमें सरता नही॥
तात प्रतिज्ञा होवे पूरी, सभी मम जाने से।
जैसे कलह उपशम बने, माता जरा गम खाने से॥
तन की खातिर धन तजो, दोनो के तज रख प्राणने।
धर्म की खातिर तजो, तीनों कहा जिन राजने॥
आबरू तन राज दौलत, सब हमारे पास है।
बस यह अलौकिक धर्म कारण ही बनों का वास है॥
प्रसन्न होकर मातजी, आज्ञा मुझे दे दीजिये।
सैर करने सुतगया यह, ध्यान मन धर लीजिये॥

दो (**कौसल्या**) अनजान पुत्र मैं हूं नही, रहा जो यों बहकाय।
छइया मइया से तेरा, विरह सहा नही जाय॥

छं (,,) परभव मुझे पहिले पहुंचा, कर फेर बन में जाइये।
उपकार कर मुझ पर कुमर, भारी यह दुःख मिटाइये॥
खेद अति माता का तू ने, ख्याल कुछ भी न किया।
दुःख सहा जिसने अतुल, और दूध है जिसका पिया॥

बेशक पिता का फिकर भी, तुमको मिटाना चाहिये ।
किन्तु मात का भी अय कुमर, दिल न दुखाना चाहिये ॥
या तो कर मेरा भी कहना, या किसी का भी न कर ।
क्या कहूं कैकयी को जो, आज यह मागा है वर ॥

दो.-(राम) शूरवीर की तू सुता, मत कायर बन मात ।
तू ही बतलादे मुझे, बने किस तरह बात ॥

चौ-(,,) तू ही बतला हमें आज, ऋण कैसे पिता उतारेंगे ।
इस झूठी दुनिया को तज कर, कसे शुभ संयम धारेंगे ॥
एक यही उपाय है बस माता, जिससे सब कार्य सिद्ध बनें ।
वर हो कैकेयी माता का, और पिता भी जिससे उऋण बनें ॥

दो (कौशल्या)-कहना तेरा ठीक है, क्या बतलाऊं लाल ।
हाल वही बतलायेगी, जिस फैलाया जाल ॥

चौ (कौशल्या) यह वर नहीं मागा पिछले भव की, कैकयी मेरी दुश्मन है ।
क्यों कि मुझको दुःख देने में, ही मानों उसको खुशमन है ॥
यह अच्छा था उसको वर में, मेरी ही जान माग लेती ।
पर राज खोस कर विरह, पुत्र का यह मुझको न दुःख देती ॥
हा ! कैसा जाल बिछाया जिसका, सुलझाना ही मुश्किल है ।
अफसोस जात औरत की होकर ऐसा जिसका संगदिल है ॥
देना किसने लेना किसने, फिर क्यों दखल हमारा है ।
तू दुःख भोगे वन में जाकर, सुन मुझको नहीं गवारा है ॥

दो (राम) मात बड़ों को चाहिये होना अति गम्भीर ।
जैसे गहन समुद्र में, नहीं उछलता नीर ॥

चौ (राम) निज पर का यह ख्याल मात ज्ञानी जन नहीं लाते हैं ।
यदि धर्म हेतु कोई पड़े काम तो खेल जान पर जाते हैं ॥

देख तुझे सुखकन्दचन्द, खुश रहूं हमेशा मन में।
हरगिज नही जाने दूगी, पुत्र मैं तुझ को वन मे॥

दौड़— मेरा तू एक कुमर है, छोड कर चला किधर है।
मरे रो रो कर मइया, विना विचारे किया कामतैंने
क्या कुमर कन्हैया॥

दो (**राम**) जान बूझ कर मात तू, क्यों वनती अनजान।
यहां रहने से न रहे, कुल का गौरव महान॥

छं (**राम**) राज्य मेरे सामने भाई भरत करता नही।
ऋण उतारे बिन पिता का, भी हमें सरता नही॥
तात प्रतिज्ञा होवे पूरी, सभी मम जाने से।
जैसे कलह उपशम वने, माता जरा गम खाने से॥
तन की खातिर धन तजो, दोनो के तज रख प्राणने
धर्म की खातिर तजो, तीनो कहा जिन राजने॥
आवरू तन राज दौलत, सव हमारे पास है।
वस यह अलौकिक धर्म कारण ही वनों का वास है
प्रसन्न होकर मातजी, आज्ञा मुझे दे दीजिये।
सैर करने सुतगया यह, ध्यान मन धर लीजिये॥

दो (**कौसल्या**) अनजान पुत्र मैं हू नही, रहा जो यों बहकाय।
छइया मइयां से तेरा, विरह सहा नही जाय॥

छं (,,) परभव मुझे पहिले पहुंचा, कर फेर बन में जाइये।
उपकार कर मुझ पर कुमर, भारी यह दुःख मिटाइये॥
खेद अति माता का तू ने, ख्याल कुछ भी न किया।
दुःख सहा जिसने अतुल, और दूध है जिसका पिया॥

वेशक पिता का फिकर भी, तुमको मिटाना चाहिये ।
किन्तु मात का भी अय कुमर, दिल न दुखाना चाहिये ॥
या तो कर मेरा भी कहना, या किसी का भी न कर ।
क्या कहुं कैकेयी को जो, आज यह मांगा है वर ॥

दो.-(राम) शूरवीर की तू सुता, मत कायर बन मात ।
तू ही बतलादे मुझे, बने किस तरह बात ॥

चौ-(,,) तू ही वतला हमें आज, ऋण कैसे पिता उतारेंगें ।
इस झूठी दुनिया को तज कर, कैसे शुभ सयम धारेंगें ॥
एक यही उपाय है वस माता, जिससे सब कार्य सिद्धबनें ।
वर हो कैकेयी माता का, और पिता भी जिससे उऋण बनें ॥

दो (कौशल्या)-कहना तेरा ठीक है, क्या बतलाऊं लाल ।
हाल वही बतलायेगी, जिस फैलाया जाल ॥

चौ (कौशल्या)-यह वर नही मांगा पिछले भवकी, कैकेयी मेरी दुश्मन है ।
क्यों कि मुझको दु ख देनेमें, ही मानों उसको खुशमन है ॥
यह अच्छा था उसको वर में, मेरी ही जान माग लेती ।
पर राज खोस कर विरह, पुत्र का यह मुझको न दुःख देती ॥
हा ! कसा जाल बिछाया जिसका, सुलझाना ही मुश्किल है ।
अफसोस जात औरत की होकर ऐसा जिसका सगदिल है ॥
देना किसने लेना किसने, फिर क्यों दखल हमारा है ।
तू दु ख भोगे बन में जाकर, सुत मुझको नही गवारा है ॥

दो (राम) मात बड़ों को चाहिये, होना अति गंभीर ।
जैसे गहन समुद्र में, नहीं उछलता नीर ॥

चौ (राम) निज पर का यह ख्यालमात, औदार चित्त नही लाते है ।
यदि धर्म हेतु कोई पडे काम तो, खेल जान पर जाते है ॥

तू राम को भरत, भरत को राम, समझ अपने दिल में मात।
यह राजपाट सब रहे यहां, एक धर्म आत्मा संगजाता॥
जब मात केकेयी ने रण में, पराक्रम अपना दिखलाया था।
मांगो जो मरजी खुश होकर, राजाने वचन सुनाया था॥
फिर मात कौनसा दोष कहो तो, पिता केकेयी माई का।
जो राज ताज न धरा शीस, पर खास ख्याल एक भाई का॥

दो (राम) दूर पिता का गम करें, कर्तव्य अपना मात।
अखिल शुभ फल सोच कर, धरो शीस पर हाथ॥

❀ रामचन्द्र और कौशल्या का प्रश्नोत्तर रूप गाना ❀

तर्ज—लावणी —

राम— माता मुझको जाना है अमर जरूरी।
क्या कहूं हाल यह बनी आन मजबूरी॥
मेरी मात सोच कुछ बहुत विचारा है।
कर्त्तव्य पालन के लिये, मात वनवास हमारा है॥टेर॥
अयि माता धरो मन, धीर नहीं घबराना।
बिन धर्म श्री जिन, नाशवान जग माना॥
दुःख भोग रहा मोह के, वश सभी जमाना।
धर ध्यान मुनि सुव्रत, स्वामी चित लाना॥
मेरी मात जन्म तेरे उर धारा है।
कर्तव्य पालन के लिये मात बनवास हमारा है॥१॥

कौशल्या- अय पुत्र ! फेर तैंने वही शब्द सुनाया।
गया निकल कलेजा जी जामा थर्राया॥
आंखों के तारे बेटा गुण सुख धाम।
लगे कलेजे बाण पुत्र मत ले जानेका नाम॥टेर॥

हे पुत्र ! बता कैसे दिल मेरा डरेगा ।
कर याद वाद तेरे मम, हृदय फटेगा ॥
वर्षो के समान एक क्षण, पल मेरा कटेगा ।
कैसे चौदह वर्षो का, काल घटेगा ॥
अय पुत्र बता कैसे, बचेगें प्राण ।
लगे कलेजे बाण, पुत्र मत ले जानेका नाम ॥२॥

राम— अय माता! वास नहीं चाहता मन बस्ती का ।
गया निकाल बाहर नही, छिपे दांत हस्ती का ॥
यही वक्त है इकमाता अब, धैर्य धारण का ।

आराम नही चाहता हू, अब मैं तन का ॥
है माता ख्याल एकासिर्फ पिता के ऋण का ।
मुझ को नही बिल्कुल, साधन में भय बन का ॥
है लिये धर्म के तुच्छ, मेरी जिन्द तिनका ।
फिर ध्यान कहां है, राजपाट और धनका ॥
मेरी माता ख्याल कहां गया तुम्हारा है ।
कर्त्तव्य पालन के लिये मात बनवास हमारा है ॥३॥

कौसल्या- हर बार कुमर दिल मेरा, मति दुखावे ।
पति धारें संयम, और तू बन को सिधावे ॥
मेरे पुत्र मैं दिल कैसे, थामूं कर ध्यान ।
तेरा कहना सहज, कलेजे मेरे लगता बाण ॥
क्यों सहे अतुल दुःख, बेटा, बाले पन में ।
तेरे बिन घोर अंधेरा, हो महलन में ॥
गया उछल कलेजा, रही न सत्या तन में ।
न रुके बह रहा जल, झरना नयनन में ॥

तोते दश्म की मानिन्द, तूने मोह तजा तमाम ।
लगे कलेजे बाण, पुत्र मत ले जाने का नाम ॥३॥

दो. (राम)-माता छोटा देख कर, मन अपने मत भूल ।
छोटा बच्चा सिंह का, मारे गज स्थूल ॥

चौ. (राम)-छोटासा वज्र बडे बडे, पर्वत भी तोड़ गिराता है ।
अकुश क्या देखो छोटासा, हस्ती को वश कर लाता है ॥
अन्धकार का नाश करे दीपक, या रवि जरासा है ।
मैं क्षत्राणीका शेर बबर, माता दिल धरो दिलासा है ॥

दो — छुटे बाण ज्यो धनुषसे, त्यो शूरवीर की बात ।
वापिस फिर लेते नही, जैसे दिन गत रात ॥

दो. (राम)- रवि शशि सागर टेर, व्योम न दे अवकाश ।
प्रण से माता मैं न डरू, जाय करू वनवास ॥

चौ. (राम)-शूरवीर का पुत्र नही, दुनियां से दहलाता हू ।
जन्म लिया तेरे माता, मैं क्षत्रिय कहलाता हू ॥
मरने का नही भय मुझको, प्रण का जितना खाता हूं ।
रघुवंशिन को आज नहीं, वट्टा लाना चाहता हूं ॥

गाना नं. १९ (राम का कौशल्या से कहना)

मुझे माता वनवास, जाना पडेगा ।
वचन यह पिता का, निभाना पडेगा ॥१॥
नही आती युक्ति, नजर कोई दूजी ।
अय माता तुझे मन टिकाना पडेगा ॥२॥
बनों का यह क्या दुःख चाहे जान जावे ।
जो प्रण है पिता का, निभाना पडेगा ॥३॥

पिता ऋण न उतरे, धर्म कैसे हारू ।
यह भव भव मे दु.ख फिर उठाना पडेगा ॥४॥
क्षमा दोष करके, धरो हाथ सिर पर ।
कहो 'पुत्र जा बन' सुनाना पडेगा ॥५॥

गाना न. २० रामचन्द्र और कौशल्या का प्रश्नोतर रूप

तर्ज-लावणी—

यह जबा नही बेटा मेरे इस मुख में ।
किस तरह कहू छोना, जाओ बन दु'ख में ॥
मेरे लाल अक्ल के तोते उडे तमाम ।
लगे कलेजे बाण कुमर मत ले जाने का नाम ॥टेर॥
आखो का तारा, जान जिगर से प्यारा ।
कभी आज तलक में किया न तुझको न्यारा ॥
गुलबदन चाद का टुकड़ा राज दुलारा ।
पुत्र ! माता को दु ख सागर मे डारा ॥
मेरे लाल शुक्र क्यों छोड़ चले बनधाम ।
लगे कलेजे बाण, पुत्र मत ले जानेका नाम ॥१॥

राम— लीजो माता प्रणाम झुकाऊ सिर को ।
तजता हू चौदह वर्ष तलक इस घर को ॥
मेरी मात करूं वनवास गुजारा है ।
कर्तव्य पालन के लिये मात वनवास हमारा है ॥२॥
है विनयवान मम भ्रात भरत सुत तेरा ।
उठ गया समझ यहा से अन्न पानी मेरा ॥
मानिन्द पछी दुनियां का रैन वसेरा ।
वही शुक्ल मनुष जिसने नही गौरव गेरा ॥

मेरी मात धर्म ही–एक सहारा है —
कर्तव्य पालन के लिये मात वनवास हमारा है ॥३॥

दो. (राम)–माता पुत्र की लीजिये, हृदय से प्रणाम ।
नीरस मोह को त्याग कर, कीजे आत्म काम ॥

छं— पीठ फेरी राम ने, इतने में सीता आगई ।
पकड लगा हृदय सासुने, गोद में बैठा लई ॥
नेत्र जल वर्षा से अति, सीता को मानों तर किया ।
चहुं और से आपत्तियों ने, जैसे आकर घर किया ॥
रोक मन को थाम दिल की, बात तब कहने लगी ।
अव्यक्त और गद् गद् शब्द, स्वर धार जल बहने लगी ॥

दो. (कौशल्या)–क्यों बधु श्रृंगार सब, तनसे दिये उतार ।
नमस्कार आकर करी, हुई किधर तयार ॥

चौ (कौशल्या)–हार गले से लालों का, किस कारण तैने उतार दिया ।
क्यों सच्चे मोती हेम जडित, साडी को आज विसार दिया ॥
नजर नही आता दामन जो, जवाहरात से जडा हुआ ।
वह कहां दो तर्फी मस्तक खीचे, था चन्द्रमा चढा हुआ ॥
कहां पायजब नेपुर झुमके, हीरे जिनमें थे जडे हुवे ।
मन मोहन माला पचरंगी, दाने जिनमें थे अडे हुवे ॥
निर्मल व्योम शशि जैसे तारागणमें दिखलाता था ।
ऐसे ही गुलबदन तेरा मुख, गहनों से मुस्काता था ॥

दो. (सीता)–क्या बताऊं लाऊं मैं तुझे, माता मुखसे भाष ।
जला हुआ जो दूध का, फूक लगाता छास ॥

छं (सीता)–बालपन में भ्रातकी, मैंने जुदाई है सही ।
फेर विद्याधर पिता को, लेगया गिरीपर कही ॥

दुःख नही पहिला मिटा, एक और ही गम आ मचा ।
लाचार मेरा पिताने था, स्वयंबर व्याह रचा ॥
दुःख स्वयबर का कहूं, शक्ति यह जिव्हा में नहीं ।
चरण स्पर्श आपके, कुछ पुण्य बाकी था कही ॥
अब विरह यह सामने, पति देव का आता नजर ।
साथ न छोडूं पिया का, फिर मिलें कब क्या खबर ॥

दो - (कौशल्या)-लगे घाव पर अय सिया, नमक दिया बुरकाय ।
मरती को मारा मुझे, जो तू भी बन जाय ।

चौ (,,)-जो तू भी बन जाय, फेर मैं कैसे करू गुजारा ।
दुःख सागर में लीन, गमों का चले जिगर पर आरा ॥
सुख दुःख की मैं कहु बात, किसने कर वधू विचार ।
मरने भी न कोई देता, मर जाऊं मार कटारा ॥

गाना न. २१ कौशल्या विलाप

कर्म हैं खोटे मेरे, आंसु वहाना हो गया ।
सुत वधू दोनों चले, सूना जमाना हो गया ॥१॥
क्या कहूं तकदीर आगे, पेश कुछ चलती नहीं ।
रात दिन पुत्र जुदाई, जी जलाना हो गया ॥२॥
तू वधू मत जा वनों में, मान ले मेरा कथन ।
राजधानी महल सब, गम का खजाना हो गया ॥३॥
घोर दुःख बन का, सिया तुझ से सहा नही जायगा ।
मानती नही क्या अशुभ, कर्मो का आना हो गया ॥४॥

दो. (सीता)-पति देव वन वन फिरें, मैं रहूं बैठ आवास ।
आज्ञा मुझ को दीजिये, नम्र निवेदन खास ॥

गाना २२ (सीता का कौशल्या से कहना)

पति का साथ छोड़ूं, यह मेरे से हो नही सकता ।
कोई कर्तव्य से चुके तो सुकृत वो नही सकतां ॥१॥
पति के तन की छाया हूं, कहे अर्धागिनी दुनियां ।
कोई छोडे धर्म अपना तो, वह सुख सो नही सकता ॥२॥
है जब तक दम में दम मेरा, करूं सेवा पति की मैं ।
लिये परमार्थ जो मरता कभी वह रो नही सकता ॥३॥
न इच्छा राज महलों की, तमन्ना है न कुछ धन की ।
योग्य सेवा बिना परमार्थ, कोइ टोह नही सकता ॥४॥
झुकाती हूं मैं सर अपना, आपके सास चरणों में ।
अपूर्व लाभ अपना ऐसा, कोई खो नही सकता ॥५॥

दो कौसल्या- बेशक पतिव्रता सती, पति से प्रेम अपार ।
नादान पता तुझ को नहीं, बन में दुःख अपार ॥

चौ (,,) यह कोमल वदन वधू तेरा, मक्खन समान ढल जायेगा ।
ज्येष्ठ भाद्रपद की धूपोंसे, दिल घबरायेगा ॥
घोर बड़े तूफान नदी नालों के दुःख का पार नही ।
हिंसक जन्तु शेर बघेरे चीते हस्ती पार नहीं ॥
तू फेर वहां पछतावेगी, जगल में सोना धरती का ।
जहां नित्य प्रति आर्तध्यान सहेगी, कैसे दुःख बन सर्दी का ॥
मक्खी मच्छर बिच्छु आदि, क्या दारुण भय वहां सर्पों का ।
विकट पहाड वनाऊ दुःख मैं, कैसे खूनी वर्फों का ॥
मैं वार वार समझाती हूं, अंजाम सोच इन हर्फों का ।
जहां थोडे दिन का काम नही, दुःख भारी चौदह वर्षों का ॥
फेर पति का पग वंधन, परदेशों में यह नारी है ।
कोमल गुल वदन वधू तेरा, यह कष्ट झेलना भारी है ॥

शोभनीय फल देख तुरत, खग वृक्षों पर छा जाते है।
कोई कष्ट न तुम पर आ जावे, यों हम नही भेजना चाहते हैं॥
तेरा जो है पति वधू तो, मेरा वह राज दुलारा है।
एक बिना तेरे सूना लगता, रणवास क्या महल चौबारा है॥
अतुल विरह का दु ख मुझ को, सुत इन हाथों से पाला है।
फिर और मुझे दुःख देने को, तूने भी झगडा आ डाला है॥
बिना यान न चरण कभी, तैंने भूमिपर रक्खे है।
फिर अभी दूध के दांत तेरे, बन दु ख स्वाद नही चक्खे है॥
सारी उमर पति की सेवा, जो कोई नार बजाती है।
बस उतना फल एकबार, ससुकी सेवा से भर पाती है॥

दो सीता-जैसे बिजली मेघ में, मस्तक मणि भुजग।
तन छाया ऐसे ससु, सियाराम के सग॥

चौक (सीता)-गृहस्थ धर्म का प्रथम कर्तव्य, जो पतिव्रत धर्म निभाऊंगी
जो कोई आपत्ति पडी आन तो, अपनी जान लगाऊगी॥
किंचिन्मात्र भय नही मुझको, बनचर या और तूफानोंका।
अमर आत्म मरे नही, मरना तो जिस्म मकानों का॥
जलमें डूब नही सकती, अग्नि न इसको जला सके।
जो निज गुण ज्ञान आतमाका, शस्त्र न इसको हटा सके॥
है मिट्टी का यह तन पुतला, मिट्टीमें ही मिल जायेगा।
जो कर्म शुभाशुभ किये, आतमा उसे सग ले जायेगा॥

गाना न. २३ (सीता का कौशल्या से कहना)

मुझे घर बार तज बनवास, जाना ही मुनासिब है।
पति सेवा में तन मन को, लगाना ही मुनासिब है॥१॥
लाज रखनी स्वयम्बर की, मुझे जाने से मत रोको।
सती का धर्म जो कुछ है, निभानाही मुनासिब है॥२॥

सभी यह महल सुखशय्या, मुझे शूलों की मानिन्द है।
फिरूं वन वन पिया संग तन, सुकाना ही मुनासिब है ॥३॥
पति वन जावे दुःख भोगें मैं, कैसे महल सुख भोगूं।
पति संग जो मिले सुख, दुःख उठाना ही मुनासिब है ॥४॥

दो.— भय उनको कैसे लगे, शील व्रत जिन के पास।
जिस की शक्ति से आ बनें, देवपति भी दास॥
नमस्कार करके हुई, सीता झट तय्यार।
महारानी पर मानो गिरा, आपत्ति की भार॥

छं— आशा निराशा होय रानी, शोक सागर में पड़ी।
नेत्रों से आंसु बरसते, जैसे कि श्रावण की झड़ी॥
देखकर यह दृश्य सखीया, भी सभी रोने लगीं।
प्रचारिकायें आंसुओं से, अपना मुह धोने लगीं॥
बोली सभी कि प्रेम भी, ऐसा ही होना चाहिये।
आगे को ऐसा ही सब को, पुण्य बीज बोना चाहिये॥
जैसा हर्ष था विवाह में, वैसा हर्ष वनवास है।
है सती पूरी नही, छोडा पति का साथ है॥
सुख अवध के सब तज दिये, एकदम से ठोकर मार के।
सेवा करन को साथ ही, वन में चली भर्तार के॥

दो— सीता का है पति से, निश्चय प्रेम अपार।
दुनियां में ऐसी सती, विरली है दो चार॥
धन्य जन्म इसका हुआ, धन्य मात और तात।
धन्य जिसे व्याही उसे, धन्य विदेहा मात॥
कष्ट बडा वनवास का, भय नहीं लगार।
दोनों कुल उज्वल किये, सीता उत्तम नार॥

दो.— सीता को समझावने, आया सब रण वास ।
संग अवध की नारियां, आकर बोली पास ॥

गाना नं. २४ (सब रणवास और नगर की प्रधान स्त्रियो का सीता को समझाना)

तर्ज–छोडो न धर्म अपना जब प्राण तन से निकले !

सीता न वन में जावो, रहना यहीं भवन में ।
क्यों दु ख सहे तू बन के, बैठी रहे अमन में ॥१॥
मत जा जनक दुलारी, सीता ऐ प्राण प्यारी ।
क्यो व्यर्थ कष्ट सहती, दु खदायी है वन में ॥२॥
कंकर उपल बडे है, कही काटे ही पडे है ।
दरियायें जल चढे है, गरजे है शेर बन में ॥३॥
पेदल का रस्ता भारी, न कोई भी सवारी ।
भूलेगी सुध तुम्हारी, उस धूप की अग्न में ॥४॥
अन्न तक नही मिलेगा, भूखी का दिल हिलेगा ।
फल फूल ही मिलेगा, किसी खास ही चमन में ॥५॥

दो.— सुन कर सब ही के वचन, प्रफुल्ल चित सिया नार ।
मृदु मधुर प्रेमालाप से, यों बोली गिरा उचार ॥

गाना नं २५ (सीता का उत्तर सब अन्त पुर वासी स्त्रियो और अन्य प्रमुख स्त्रियों से कहना)

तर्ज–छोडों न धर्म अपना जब प्राण तनसे निकले ।

रोंके न आप मुझको, जाऊ मैं संग बन में ।
जहा चरण हो पतिके, वहां ही रहूं अमन में ॥१॥
वहां दुःख नही है कुछ भी, जहां होवे प्राण प्यारे ।
उनकी करूंगी सेवा, जाकर के साथ बनमें ॥२॥

काटे भी फूल बनते सत्यपथ को धारण से।
कोमल कली बनेगें, कंकर सुतीच्ण बनमे ॥३॥
कर्तव्य धारणेपर, दुखों की क्या है परवाह।
दुख का ही सुख बनेगा, पतिप्रेम हो जो मनमे ॥४॥
करिके हरी द्वीपि भालु, विच्छु व नाग अजगर।
पतिसेवा से भगेंगे, ज्यो अंधकार दिन मे ॥५॥
चिन्ता नही जिस्म की, पतिव्रत पे होवे अर्पण।
उत्सर्ग देही करके, प्रसन्न हूंगी मनमे ॥६॥

दो.— लक्ष्मण यह वृत्तान्त सुन, रह न सके चुपचाप।
कुछ तेजी में आनकर, ऐसे बोले आप ॥

चौ. (लक्ष्मण) अच्छा वर मांगा माताने, महा भग रंगमें डाला है।
जो राज ताज दे भरत वीर को, बाहर राम निकाला है ॥
पहिले वर भंडारे मे रक्खा, अब यह मिसल निकाली।
वर नही मांगा माता की, यह भी कोई चाल निराली है ॥

दो.— सरल स्वभावी है पिता, कपट कारिणी मात।
भरत वीर भी था भला, फंसा वचन बसतात ॥

चौ— फसा वचन बसतात, किन्तु मैं देखूं तेज सभी का।
क्या होता है देख रहा था, बैठा हाल कभी का ॥
अफसोस हुआ वर्ताव, देखकर ऐसा आज सभी का।
राज्य राम को देऊ भरत, बालक है, कौन अभी का ॥

दौड— जहा तक मेरा दम है, राम को फिर क्या गम है।
नही जाने दूं बन में, राम करेगें राज रहूंगा,
मैं सेवक चरणन में ॥

दो.— दहकती अग्नि की तरह, देख अनुज का रोष ।
शीतल बचनों से लगे, तब देन राम सतोष ॥

चौ. (राम)-अय लक्ष्मण कुछ सोच समझ, मन में क्यो रोष बढाया है।
अत्यन्त खुशी का समय आज, यह अपने कर में आया है ॥
मात पिता की आज्ञा पालें, मुख्य कर्त्तव्य हमारा है ।
करें सेवा तन मन से जिनकी, अनुचित क्रोध तुम्हारा है ॥
जैसा राम भरत वैसा, लक्ष्मण या वीर शत्रुघ्न है ।
वचन पिता का करें न पूरा, तो हम सभी कृतघ्न है ॥
यह राज खुशी से भरत वीर, को मैं लक्ष्मण ? दे जाता हूं ।
कर्त्तव्य अपना पले पिता ऋण टले, यही दिल चाहता हू ॥

गाना न २५ (रामचन्द्र का लक्ष्मन को समझाना)

तर्ज-लगी लौ जान जानां से तो जाना ही मनासिब है—

राज्य के वास्ते अपना वचन, हरगिज न हारेगें ।
करेगें सैर वन बनकी, पिता का ऋण उतारेगें ॥१॥
रोष को दूर कर मन से, सुनो लक्ष्मण मेरे भाई ।
मात कैकेयी के चरणों में, यह अपना शीश डारेंगे ॥२॥
प्रतिज्ञा पालने वाले, हुए सब सूर्यवशी है ।
इसी में जन्म धारा तो, वचन हम भी न हारेंगे ॥३॥
भरत के शीस सोभे ताज, मैं शोभूंगा का वन जाकर ।
पिता शोभें मुनि दीक्षा, जन्म अपना सुधारेंगे ॥४॥
राज्य धन मित्र सुत दारा, मिलें कई वार प्राणी को ।
है दुर्लभ धर्म का मिलना, इसी से तन शृगारेंगे ॥५॥

दो— सुना कथन जब राम का, ठडा हो गया जोश ।
गूढ रहस्य को सोचकर, रहे लखन खामोश ॥

मन ही मनमें सोचकर, निजको किया उपशात ।
कुछ समय भाव को जानकर, बोले अनुज इम भात ॥

चौ (लक्ष्मण)-मुझे फेर क्या राम खुशी से, राज्य छोड़ वन जाता है।
तो फिर अब खाना अवध पुरी का, हम को भी नही भाता है॥
झगड़ा और वढाकर सब का, दिल भी सिर्फ दु:खाना है।
यदि दूल्हा ही निज सिर फेरे तो, फिर किसका व्याह रचाना है॥

दो.— यही सोच के लखन फिर, गये पिता के पास ।
नमस्कार कर चरण मे, कहा इस तरह भाष ॥

दो. (लक्ष्मण)-पानी में मछली सुख चकवा चकवी साथ ।
राम चरण लच्मण वहां, ज्यो रवि साथ प्रभात ॥

चौ (,,)-पिता मुझे आज्ञा दीजे, मैं राम संग वन जाऊंगा ।
सेवा कुछ होगी भाई की, दु:ख मैं निजशीस उठाऊंगा ॥
ताज मुबारिक भरत वीर को, आपका ऋण उतरा सिर से।
तात मात खुश हम भी खुश, जैसे किसान खुश जल चर से॥
छिन पल विरह राम का मुझ से, पिता सहा नही जाता है।
अपूर्व प्रेम स्वाभाविक है, जिस कारण लक्ष्मण जाता है॥
क्षमा करो अपराध सभी, अविनीत पुत्र दु खदानी का।
केवल एक साथ राम के है, आधार मेरी दिलगानी का॥

दो. (दशरथ)-विनय वान मेरे कुमर, नही कोई हमारी बात।
किन्तु रो रो मर जायेगा, बडी तुम्हारी मात ॥

छं— रहने को समझाया बहुत, भूपाल ने हरबार है ।
लेकिन न माना एक भी, सुमित्रा का सुकुमार है ॥
मस्तक झुका कर पिता को, फिर वीर लक्ष्मण चलदिया।
माता सुमित्रा पास आ, प्रणाम चरणों में किया ॥

दो — माता खुश हो पुत्र के, धरोशीस पर हाथ।
जाता हूं बनवास में, मात भ्रात के सात ॥

चौ (लक्ष्मण)-हे मात! ज्ञात है ही तुमको, दुष्कर बिन राम मेरा जीना।
बस कल नही पडती दर्श बिना, फिर कहां रहा खाना पीना ॥
मैं तन मन से बनमें भाई का, निशदिन हुक्म बजाऊगा।
जहां गिरे पसीना भाई का, वहां अपना रक्त बहाऊंगा ॥

दो (सुमित्रा)-धन्य धन्य मेरे सुत केहरी, शूरवीर रणधीर।
निर्मल है बुद्धि तेरी, पान किया मम क्षीर ॥

चौ. (,,)-पान किया है क्षीर मेरा, कर्तव्य पालन कर देना।
तन बेशक लग जाय किन्तु, नही दगा भ्रात को देना ॥
पडे कष्ट जो आन कोई, आगे होकर सह लेना।
मानिन्द पिता के रामचद्र, माता सीता को कहना ॥

गाना नं. २५ (सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश)

प्रेम हृदय नही जिसके, वह है शत्रु न भाई है।
प्राण चाहे चले जायें, न छोडे सग भाई है ॥१॥
नाश दुनियां सभी जानों, शेष इस में न कोई है।
रहने की वही सग में, जिस्म की भी सफाई है ॥२॥
सहारा कष्ट में देना, यह है कर्तव्य भाई का।
यदि आंखे चुराये तो, लगेगी मुंह पे काई है ॥३॥
करो तन मन से बन जाकर, मेरे सुत राम की सेवा।
मेरी शिक्षा कुमर तू ने, यहि हृदय जमाई है ॥४॥
रहा अब तक तो तू भाई, चाकर होकर के अब रहना।
हुक्म सियाराम का लेना, कुमर मस्तक उठाई है ॥५॥

दौड— मिलो जल्दी से जाकर, करो सेवा मन लाकर ।
प्रसन्न तन मन है मेरा, बडे भाई की करे सेव
निर्मल हृदय है तेरा, ॥

दो (लक्ष्मण) माता तन मन खुश हुआ, सुने तुम्हारे बैन ।
करू मैं, सेवा राम की, जैसे मस्तक नैन ॥

चौ (,,) जैसे माली पोदे को, जल देकर के खुश रखता है ।
या किसान के लिये समय पर, वादल आन वरसता है ॥
ऐसे खुश रक्खु भाई को, जैसे कि माता फूल खिला ।
वह चीज नही कोई दुनियां में, जैसा कि मुझ को वीर मिला ॥
जब तक जीता हूं भाई को, मैं कष्ट नहीं पहुंचन दूंगा ।
पहिले होगी आज्ञा पालन, कुछ मन में नहीं सोचन दू ॥
सब देव खुशी होते है, जैसे देख सुमेरु नन्दन वन ।
बस ऐसे हम सब को होगा, वन में माता आनंद अमन ॥

दो. (लक्ष्मण)-सूर्य वंशी मात मैं, क्षत्राणी का शेर ।
अब इस मुख से क्या, कहूं वतलाऊंगा फेर ॥

चौ (,,)-वतलाऊगा फेर अयोध्या, जब वापिस आऊगा ।
कष्ट जो होगा सिया राम का, अपने सिर उठाऊगा ॥
तैल बिन्दु सम नाम राम का, जग में फैलाऊंगा ।
तब ही मात सुमित्रा का मैं, नंदन कहलाऊगा ॥

दौड— शीस जब तक धड पर है, राम को कौन फिकर है ।
चरण जहां जहा धरेगें, बडे बडे भूपति मात चरणों
में आन गिरेगें ॥

छ— पीठ ठोकी मात ने, सर पर धरा शुभ हाथ है ।
फिर जा के चरणन में गिरा, जहां थी कौशल्या मात है ॥

सर झुका कर अनुज ने, जो बात थी सारी कही ।
सुन दुखी रानी हुई, कुछ होश न तन की रही ॥
चेत जब मन को हुआ, लक्ष्मण से यों कहने लगी ।
आसुओं की धार भी, आंखों से तब बहने लगी ॥

दो (कौशल्या)-गोला टूटा गजब का, मेरे ऊपर आन ।
राम संग तू भी चला, जाने नही यह प्राण ॥

बहरतवील गाना नं. २७ कौशल्या लक्ष्मण से प्रश्नोत्तर

कौशल्या-बेटा तू भी चला सीयाराम गये,
हो उदय कौन से आये मेरे कर्म ।
मुझे छोड़ अकेली इधर तुम चले,
पीछे पति देव धारेंगे संयम धर्म ॥
पीछे किसका सहारा मुझे है बता,
कैसे थामू जिगर है मुझे यह भर्म ।
रामचद्र के सग क्यों तू बन में चला,
नहीं होता है कहने से तू भी नर्म ॥

लक्ष्मण-माता क्षत्राणी होकर तु कायर बने,
यह समझ तेरी मुझको भी भाई नहीं ।
भरत शत्रुघ्न दोनों तेरी सेवा मे,
राजधानी व प्रजा पराई नही ॥
यह मालूम तुझे बस बिना राम के,
मेरे जिने की कोई दवाई नही ।
कैसे तान प्रतिज्ञा हो पूरी बता,
तैने गौरव पे दृष्टि जमाई नही ॥

दो (लक्ष्मण)-क्षमा दोष सब कीजिये, चरण नमाऊं माथ ।
जाऊंगा मानूं नही, मात भ्रात के साथ ॥

चौ (,,) छोड़ कहो चाहे लाख मेरा दिल, वनवास के अन्दर है ।
श्री राम कलंदर समझ मात, लक्ष्मण तो पालतू बन्दर ॥
दिल डोरी है पास राम के, मरजी जिधर घुमावेगें ।
एक बिना राम के प्राण मात, मेरे तन में नही पावेगें ॥

दो— सुन बातें सब अनुज की, रानी मन हैरान ।
रहना इसने है नहीं, समझा दिल दरम्यान ॥

चौ.— मौन आकृति देख माता की, लक्ष्मण ने प्रणाम किया ।
श्री रामचन्द्र के पास गये फिर, चरण कमल में ध्यान दिया ॥
प्रेम भाव से रामचन्द्रजी, सीता को समझाते है ।
वनवास के दुःख भयानक है, सब भेद खोल दर्शाते है ॥

दो (राम)-अयि सीते मेरी तरफ, जरा कीजिये गौर ।
महलों में बैठी रहो, बन खंड में दुःख घोर ॥

चौ (राम)-वन खड में दुःख घोर, देख भय जान निकल जावेगी ।
जनकपुरी में मात तुम्हारी, सुन के घबरायेगी ॥
कहा मान अय जनक सुता, जाकर के पछतावेगी ।
चौदह वर्ष का लम्बा, काल वहां दारुण दुःख पावेगी ॥

गाना नं. २८ (रामचन्द्र का सीता को समझाना)

बैठी राजमहल सुख भोगो, वन खंड में दुःख पावोगी ।
जहां गर्जत है सिंह वघेरे, दारुण दुःख तुफान घनेरे ।
शयन जमी का रात अंधेरे, कैसे प्राण बचाओगी ॥१॥
ज्येष्ठ भाद्रपद धूप करारी, वर्षा नदी गहन अति भारी ।
गिरि गुफा दुर्गम दुःखकारी, देख देख दहलावोगी ॥२॥

इतर फूलेल न अटवी घन में, भोजन मन वांछित कहा वन में।
चमच दमक यह रहे न तन में, फिर क्या यत्न बनाओगी।।३।।
आदम की न मिले शकल है, कहीं खारा कही कडुआ जल है।
यह सुख वहा नहीं बिलकुल है, कैसे दिल बहलाओगी।।४।।
दासी सेवक न संग सहेली, उस बनमें फिर फिरे अकेली।
कहा मान सुन्दर अलबेली, नाहक दुःख उठाओगी ।।५।।
मात पास तुम रहो पियारी, श्री जिनधर्म करो सुखकारी।
सोचो मनमें जनक दुलारी, 'शुक्ल' परम सुख पाओगी।।६।।

दो — शिक्षा सुन श्री राम की, सियाने किया विचार।
विनय पूर्वक फिर इस तरह, बोली वचन उचार॥

गाना २९ (सीता का श्रीराम को कहना)

यह क्या बनों का दुःख पिया, अन्तक मुझे हन जायेगा।
जो भी मुख से कह चुकी, मेरा न वह प्रण जायेगा ।।१।।
राज मदिर और दास दासी, सब यहां रह जायगें।
राख मुट्ठी जिस्म चमकीला, मेरा बन जायगा ।।२।।
संग की सारी सहेली, मात पितु सासुश्वसुर।
काल फासी दे लगा संग, कौन साजन जायगा ।।३।।
धर्म मेरा है पति के सग, सुख दुःखमें रहु।
इससे हुआ विपरीत तो, दुःख में यह तन भुन जायगा ।।४।।
तन है सेवक हर मनुष्य का, प्रेम इससे जो करे।
एक दिन देगा दगा बस, बन यह कृतघ्न जायगा ।।५।।
दुःख पति! या सुख का मिलना, पूर्व कर्म अनुसार है।
भागें कर्म पुरूषार्थ आ, जब सामने तन जायगा ।।६।।

दो — राम यहां वहा पर सिया, इस में भेद न जान।
जावोगे यदि छोड कर, तो नही बचें प्राण ।।

दो — सीता का प्रस्ताव सुन, हुए राम लाचार ।
खडे खडे चुप चाप ही, ऐसा किया विचार ॥

चौ. (राम)-सीता से चौदह बर्षों का, विरह सहा नही जायेगा।
अब यदि और कुछ अधिक, कहा तो इसका तन मुर्झायेगा ॥
पृथक नही घन से विजली, या जैसे तन की छाया है ।
भरे स्वयबर में मुझ को, इसने निज पति बनाया है ॥
है पतिव्रता सती प्रेम, मेरे सग है इसका भारी ।
यावज्जीवन पर्यन्त पति के, शरणागत होती नारी ॥
क्षत्रिय का यह धर्म नही. शरणागत को दुःख में डारे।
जिसका लिया साथ उसको, देना सुख दु ख निज सिर धारे॥
फिर बोले अच्छा वैदेही, मन में न सोच विचार करो ।
यदि चलो बनों में खुशी आपकी, या घर में आराम करो ॥
सन्तोष जनक सुन वचन सिया ने, अपना शीस नमाया है।
फिर रामचंद्र ने अनुज भ्रात को, ऐसा वचन सुनाया है ॥

दो (राम)-कारण वश मैं तो चला, भाई वन मझार ।
किस कारण तुम भी खडे, पहले ही तैयार ॥

चौ (राम) सतोष दिलाना मात को, और सावधान होकर रहना ।
तुम अवधपुरी में करो सैर, किस कारण बन का दु ख सहना ॥
चौदह वर्ष समय लम्बा, बन का दु ख लक्ष्मण भारी है ।
यहा पुरी अयोध्या में झुर झुर, दु ख पायेगी महतारी है ॥
और जिनके सग प्राणि ग्रहण किया, वह सब उदास हो जायेगी।
अयभाई लक्ष्मण विन तेरे, वह कैसे समय वितायेगी ॥
सब राज कार्य साथ भरत के, भाई तूने करना चाहिये ।
और तेरे विन माताओ ने भी, सबरन दिल में धरना है ॥

गाना न ३० (राम का लक्ष्मण से कहना)

मत जावो मेरे संग भाई लखन ॥टेर॥

चौदह वर्ष हमें बन में रहना, मान हमारा वीरन कहना।
वह है जंगल बेयाबान कठिन ॥१॥

भेस सादगी तनपर धारूं, प्रण किया सो कभी न हारू।
जर बक्तर में सब, उतारे बसन ॥२॥

दो — लक्ष्मण ने ऐसे सुने, रामचन्द्र के बैन।
शीस झुका कर जोडकर, लगा इस तरह कहन ॥

चौ (**लक्ष्मण**)-आज्ञा आपकी न मानूं, मेरा यह दुष्ट विचार नही।
किन्तु विरह आपका सहने को, भाई मैं भी तय्यार नही ॥
जिस तरह राम वहां लक्ष्मण है, बिन राम मेरा नही जीना है।
इस पुरी अयोध्या का मुझ को, नही भाता खाना पीना है ॥
किसी शून्य चितको समझाने में, निष्फल समय विताना है।
कृपण से कोई करे याचना, तो वहा से क्या पाना है ॥
कर्ण बधिर को सुरताल सहित, निष्फल गायन सुनाना है।
वृथा क्यों अंधे के आगे, नयनों से नीर बहाना है ॥
बस ऐसे ही लक्ष्मणको समझाने में, वृथा समय बिताना है।
अब लाख कहो या क्रोड, आप बिन मेरा नही ठिकाणा है ॥
चलो देर मत करो संग, चलने को मैं हूं खड़ा हुआ।
यह धनुषबाण कर सह शस्त्रों के, वक्तर तन पर पड़ा हुआ ॥

दो. (**लक्ष्मण**)-आप वनों में भ्रातजी, यदि अकेलें जाय।
सेवा में कुछ न करू, तो मम तात लजाय ॥

दो (**राम**)-बोले राम अय भाई, जैसी तेरी भी इच्छा है।
क्या समझावे और तुझे, खुद बन बैठा जब बच्चा है ॥

कम खाना और गम खाना, इनको हृदय धरना चाहिये ।
और सभी कार्यों से पहिले, परमेष्ठि का शरना चाहिये ॥
तीनों तुम यहां से जाते हो, तीनों खुस हो वापिस आना ।
यदि इस में त्रुटी होगी तो, मुझको न कोई मुख दिखलाना ॥
कोई कष्ट आन कर पडे तो, बन गंभीर वीरता से सहना ।
गौरव हीनता की बातें, मुख से कभी भुल नही कहना ॥
मैदान क्षत्रियों का घर है, जंग विग्रह से नही डरना है ।
चाहे संसार उलट जावे, पर पीछे कदम न धरना है ॥
बेटा मेरी कुक्षी और, धारों को नही लजा देना ।
न्याय नीति दया धर्म देश, कुछ सब का भाग जगा देना ॥
सब गुण सागर जगत उजागर, बहितर कला के माहिर हो ।
क्या शिक्षा देऊ बेटा तुम, खुद शुर वीर जग जाहिर हो ॥
नर्क कुंड पर नारी और, पर पुरुष दुखों का सागर है ।
शुक्र अन्त्य शिक्षा मेरी, शुभ सदाचार सुख आगर है ॥
मूल विनें शुद्ध प्रेम ऐक्यता, सब सुख इस में समा रहे ।
स्वाधीन सभी सृष्टी उसके, यह त्रक जिस हृदय जमा रहे ॥
मैं पुत्रवती हूं समझ लिया, मैंने सब आज परीक्षा से ।
पुण्य प्रबल तुम्हारा होगा, बेटा मेरी शिक्षा से ॥
मेरी सेवामें भरत पुत्र है, आप ना फिकर कोई करना ।
इसभव परभव सुखदाता है, बेटा परमेष्ठिका शरना ॥

दो.— सार भरी शिक्षा सुनी, माता की जिसवार ।
गम लखन सीता हुवे, तीनों खुशी अपार ॥

दो — रंग ढंग सब सोच के, हुए गम तय्यार ।
शोकाकुल चहु ओरसे, आ पहुंचे नरनार ॥

चौ — वस्त्र शस्त्र पहिन रामने, धनुपबाण निज हाथ लिया ।
इस कष्ट समयमें सग राम के, लक्ष्मणजीने प्रयाण किया ॥
फिर माता कैकेयी के चरणों में, तीनोंने सिर नाया है ।
और अन्त दिलासा दे सबको, श्री रामने कदम बढ़ाया है ॥

दो.— छोड़ राज और ताज को, चले राम वनवास ।
नरनारी सब ले रहे, लंबे लबे श्वास ॥

चौ.— जब चरण रामने बाहर किया, सहसा सन्नाटा छाया है ।
तब पत्थर दिल नरनारी के भी, जल नेत्रोंमें आया है ॥
व्यापार शीघ्र सब बन्द हुआ, क्या दफ्तर और कचहरी है ।
नयनों की माला खडी हुई, चले राम करी न देरी है ॥
मत्री और राज कर्मचारी सब, पीछे है हज्जूम बडा ।
और आगे का कुछ पार नही, सब जन समुह अति अडा खडा ॥
सब नत मस्तक हो खडे हुवे, तन मन से सेवा चाहते है ।
दक्षिण कर से कर स्वीकार राम, आगे को बढ़ते जाते है ॥
बाजार दो तर्फी छज्जों पर, अगणित माताए बहनें खडी ।
नयनों से आसु बरस रहे, जैसे श्रावण की लगी झडी ॥
यह दृश्य देख कैकेयी रानी का, हृदय कमल उछलता है ।
बस मौन चित्र की तरह खडी, मुख से नही बोल निकलता है ।

छं — आश्चर्य सीता की खूशी को, देखकर नर नार है ॥
मन ही मन में कैकयी, को दे रहे धिक्कार हैं ॥
महा जन समुह नर नार का, सिया राम संग चलने लगा ।
तब देख कौशल्या-कुमर, यह हाल यूं कहने लगा ॥

दो (राम)-नेत्रों से जल वहा रहे, बनते क्यों नादान ।
निष्कारण तुम खुशी में, लाये आर्त्तध्यान ॥

चौ (,,)-क्यों यह आर्त्तध्यान, सैर मैं तो बन को जाता हूं ।
तुम जावो वापिस अवध, पुरी में सब को समझाता हूं ॥
कर्त्तव्य पालन करो सदा, हृदय से यह चाहता हूं ।
है प्रजा पुत्र दशरथ की, मैं भी सुत कहलाता हूं ॥

दौड — रक्खो सभी एकता, ध्यान शुभ सत्य विवेकता ।
एक दिन वह आवेगा, इसभव परभव लाभ गौरव,
दुनियां में छा जावेगा ॥

दो.— ग्राम धर्म की व्यवस्था, शुद्ध करो सब कोय ।
नगर धर्म कहा दूसरा, प्रेम सभी संग होय ॥

चौ.— धर्म तीसरा राष्ट्र लिये, अर्पण सब कुछ करना चाहिये ।
यदि कोई विपत्ति आ जावे तो, देशके हित मरना चाहिये ॥
चौथे पाखण्ड को काट छाट, व्रत रक्षा करना अच्छा है ।
जो भी इनसे विपरीत चले, वह निर्बुद्धि या बच्चा है ॥
निज कुल के गौरव को देखो, यह धर्म पाचवा सुखदायी ।
सब त्यागी और गृहस्थ का, इसीमें समावेश दोनो का ही ॥
समुह धर्म छट्ठा बतलाया, क्यों कि इसमें शक्ति है ।
जिसने इसको कर दिया भंग, समझो उसकी कमबखती है॥
फिर सघ धर्मका पालन करना, सप्तम बुद्धिमानी है ।
और किसी अशमें श्री संघ की, आज्ञा भी आप्तवाणी है ॥
अष्टम है श्री श्रुतधर्म, क्यों कि यह ज्ञान खजाना है ।
वस इसके पालन रक्षण से ही, सर्व सुखों का पाना है ॥
सम्यक्त्व चारित्र धर्म नवमां, सब कर्म मेलको धोना है ।
विषक्रोध मानमद काट, फैंक कर अमृत फलको बोना है ॥
जो विपरीत चले इन धर्मों से, न उन्हें कभी सुख होना है ।
अज्ञान तिमिर में फंसे हुवो को, रहे शेष बस रोना है ॥

दशवां आस्तिक धर्म कहा, निश्चय बिन कुछ नही बनता है।
एक सम्यग् ज्ञान दर्श चारित्र ही, उत्तम फल को जनता है॥

दो -(राम) विघ्न सभी पद्रह कहे, पडे अगाडी आय।
निराकरण इनका करे, सो शूरा जग मांय॥

चौ.— प्रथम स्वास्थ्य ही ठीक नही, वह कहो तो क्या कर सकता है।
फिर खानपान में असयम, वह कब दु खसे बच सकता है॥
सदेह तीसरा विघ्न कहा, भ्रम जाल की यह बिमारी है।
चौथे सच्चे गुरु का अभाव, जिनके उनकी मति मारी है॥
और पंचम नियम कायदे पर, जिनको न चलना आना है।
वह लीन दुःखों में रहे सदा, चाहे उनकी तरफ विधाता हो॥
और छठे प्रसिद्धि करने में, सारांश नही कुछ रहता है।
महा विघ्न कुतर्क सातवां है, अमृत को तज विष गहता है॥
कोई लक्ष्य बिना जो काम करे, उसका पुरुषार्थ निष्फल है।
बिनमूल के ब्याज असंभव है, और सभव होना मुश्किल है॥
मन शिथिल बने जिस प्राणीका, यह नवमां विघ्न कहाता है।
शुभ स्वर्ग मोक्षके सुख यह, आत्म मन शक्ति से पाना है॥
सन्तोष स्वल्प शुभ कार्यमें, दशमा यह विघ्न महाभारी।
धर्म ज्ञान और मोक्ष सभी का, सतोषी नही अधिकारी॥

एकादश में अशुभ कामना, विघ्न का कारण बनती है।
द्वादश में कुशील परायण आत्म, कुभिपाक में गलती है॥

जो पडे कुसगति में प्राणी तो, विघ्न तेरहमा आता है।
सब शुभ धर्मो से बंचित होकर, अन्त समय पछताता है॥

और पर छिद्रान्वेषण मे जिनकी, दृष्टि नित्य ही रहती है।
यह विघ्न चौदहमा लाभ कीर्ति, सब ही पानी में बहती है॥

और विघ्न पद्रहमा महा बुरा, होना पत्तान्ध कहाता है।
फिर बंचित सब लाभो से, होकर नीच गति जा पाता है॥

दो (राम)-उन्नत होने में सदा, शक्ति ही प्रधान।
शक्ति हीन नर को गिना, बिलकुल पशु समान॥
ग्यारह है शक्ति सभी, पुण्यवान में होय।
जिस में न हो एक भी, वृथा जन्म रहा खोय॥

चौ (राम)-शक्ति हीन का दुनियां में, गौरव एक तुच्छ तमाशा है।
घुल जाय जरा से पानी में, जैसे कि बड़ा पताशा है॥
शक्ति हीन मनुष्य इस जग में, सब की ठोकर खाते है।
और न्याय न्याय कहते कहते, बेइज्जत हो मर जाते है॥

दो. (राम)-ध्यान लगा करके सुनो, ग्यारह शक्ति महान्।
जो इन को धारण करे, अन्त लहे निर्वाण॥

चौ.-(राम) आदर्श गुणों को ग्रहण करे, वह गुण महातम्या शक्ति है
गुणीजन की सेवा करना, शक्ति योग्य दूसरी जचती है॥
स्मरणशक्ति तृतीया है, उपकार कभी न भुलाना है।
कृतघ्न बन कर सर्वस्व हार, आत्म को नही रुलाना है॥
छोटेसे छोटा चल होकर, यह दास्या शक्ति चौथी।
नही तजा मान जिस प्राणीने, तो उसकी किस्मत सोती है॥
शुभ संख्याशक्ति पचम है, सबसे कुछ मैत्री भाव करो।
है क्रान्ति तेज प्रभाव छठे, निज निर्बलता का पाप हरो॥
शुभ वात्सल्यता प्रेम भाव, सप्तम सबका सम्मान करो।
है आत्म समर्पण अष्टम शक्ति, शुभ धर्म पे सब कुर्बान करो।
तल्लीन कही नवमी शक्ति, सब कार्य सिद्ध कर देती है।
बस और तो क्या उस प्राणी को, शिवरमणी तक वर लेती है।

धर्म समाज ज्ञानहानी का, जिसके दिल में खेद नही ।
ऐसे छद्मस्थ प्राणी में, और पशुमें कोई भेद नही ॥
सर्वज्ञ अवधिमन पर्यय ज्ञानी, दृष्टिवाद पूर्वधारी ।
इनके बिच्छेद होने पर समदृष्टि, को होता दुःख भारी ॥
उक्त साधनों के वियोग का, जिस प्राणीमें सचार नहीं ।
इन शक्तिहीन मूढातमका, होता कही बेडा पार नही ॥
एक रूपा शक्ति कही ग्यारहवी, वरते सब व्यवहारों में ।
तन जन क्या कारोबार रूप बिन, आब नही घरबारों में ॥

दो -(राम) आप्त वाणी हृदय घर, लगो सभी निज काम ।
अवध पुरीमें तुम सुखी, हमको सुख बन धाम ॥

चौ.-(राम) निर्भयता से अवध पुरीमें, भरत भूपकी शरण रहो ।
और जैसा राम भरत वैसा, इसमें न रचक फरक लहो ॥
बस न्याय पथपर डटे रहो, सोचो उपाय नित्यवृद्धिका ।
शुभ उद्यमशील बनों सारे, अमोघ शस्त्र यह सिद्धि का ॥
शिक्षा दी श्री राम ने, किया गमन में ध्यान ।
जन समुह ने भी किया, संग ही सग प्रस्थान ॥

चौ — मकना तीस खेंच लोहे का, अपने संग मिलाता है ।
ऐसे ही अवध वासियों का दिल, राम संग ले जाता है ॥
हम कैसे हाल कहें सारा, न शक्ति कलम जबां में है ।
शुद्ध क्षीर नीर सम प्रेम राम, प्रजामें सहज स्वभाव में है ॥
मुश्किल से वापिस करके फिर, आगे चरण बढ़ाये है ।
यह शोक विरह रूपी सागर में, सब नर नार समाये है ॥

दो — ग्राम ग्राम के अधिपति, विनती करें अपार ।
प्रभु यहा कृपा करों, आप का सब घर बार ॥

चौ.— श्री राम सबको समझा कर, आगें को बढ़ते जाते हैं।
सब ग्राम नगर पुर पाटन तज, रजनी जहां आसन लाते हैं॥
अब इधर अवध में दशरथ नृपने, भरत पुत्र बुलवाया है।
और राजभार देने को नृप, मंत्रीश्वरने समझाया है॥

भरत का राज्य

दो— राज्य न लेवें भरत जी, आक्रोशें निजमात।
सियाराम और लखन का, विरह सहा नही जात॥

छं— चारित्र लेने के लिये, भूपाल शीघ्रता करें।
हरबार समझाया भरत नही, ताज अपने सिर धरे॥
यत्न सब निष्फल हुआ, कुछ काम बन आया नहीं।
सुत भी गया दशरथ कहे, मुनिव्रत मुझे पाया नहीं॥
परिवार सब दुःख में पड़ा, रानी का हाल खराब है।
राम लक्ष्मण के बिना, सुत भरत भी बेताब है॥
अब भूपने सोचा कि वापिस, राम को बुलवाय लूं।
सोचकर युक्ति कोई, चारित्र में चित लाय लूं॥

दो.— आज्ञा पा महाराज की, हो झटपट तैय्यार।
मन्त्रीश्वर वहां से चला, जरा न लाई वार॥

चौ.— जरा न लाई वार तुरत, पश्चिम दिशि को है धाया।
मिले दूर कानन में जा, मंत्री ने शीष नमाया॥
जो था मतलब खास, अवध का सारा हाल सुनाया।
बोले अवधपुरी में नृप ने, तुमको जल्द बुलाया॥

दौड— चलो अब देर न लावो, क्लेश उपशान्त बनाओ।
ख्याल कुछ करो इधर का, होवें सब दुख दूर चरण
जहां हो गरीब परवर का ॥

दो-(राम) वापिस जा सकता नहीं, हूं मंत्री लाचार।
अब कुछ वर्षों के लिये, है बन का आधार ॥

चौ— तुम जाओ अवध में भरत वीर को,
वचन मेरा यह कह देना।
अब तू अपने को राम समझ
और मुझको भरत समझ लेना ॥
श्री दशरथ नृप घर हम चारों, सुत एक सरीखे जाये है।
हम सबको यह स्वीकार भूपति, भरत वीर शोभाये है ॥
मातपिता को आजतलक का, क्षेम कुशल बतला देना।
सब यथायोग्य प्रमाण तात, माताओंको जतला देना ॥
तुम भरत वीर को गद्दी पर, समझा करके बैठा देना।
और धूमधाम से छत्र लगाकर, उपर चमर झुला देना ॥

छं.— मानना भाई भरत को, तात के मानिंद सभी।
मेरा भी हृदय सर्द सुनसुन, करके होवेगा तभी ॥
वचन यह कह कर चरण, श्री रामने आगे धरा।
सामन्त मंत्री जन सभीके, नेत्रों में अति जल भरा ॥
प्रेम हृदय में भरा सब, संग ही संग में चल रहे।
विनती न मानी राम ने, सौ सौ खुशामद कर रहे ॥

दो.— चलते चलते आ गई, नदी वह रहा नीर।
फेर राम कहने लगे, बैठ नदी के तीर ॥

गाना नं ३१ (राम का मन्त्रीगण एवं सामन्त गण को समझाना)

बहुत आ गये दूर मन्त्री, लौट अवध जाओ ॥टेर॥
वापिस रथ ले जाओ मन्त्री, मत न घबराओ।
तुम समस्त राज परिवार को, जाकर धीरज बंधवाओ ॥१
सामंत होश कर मत रोवो, न नीर नैन लावो।
वापिस तुम चले जाओ, अयोध्या हुक्म मेरा पावो ॥२॥

दो.— समझा कर यों रामजी, बढे नाव की ओर।
निषाद राज अति खुश हुओ, ज्यों चन्द्र देख चकोर॥

गाना नं० ३२

आज प्रभुने दर्श दिखाये सफल कर्म मेरे, हों सफल कर्म मेरे।
भिरन भिरन आरही वेडी गाय रही है महिमा तेरी
संग सिया लेरे, हों संग सिया लेरे ॥१॥
दादुर मोर पपईया बोला श्रीराम कुमार का सादा चोला
देव पवन देरे हां देव पवन देरे ॥२॥
केवट को अति खुशीयां हो रही राम कृपा सब कष्ट खो रही
उदय भाग्य तेरे हा उदय भाग्य तेरे ॥३॥

दो— तीनों प्राणी हो गये वेडीमें अस्वार।
इधर खडी जनता सभी, रोवें जारो जार॥
खुशियों में निषाद सब, गावें जावें गीत।
पुल का रास्ता छोडकर, हम से पाली प्रीत॥

गाना नं. ३३ (दादर) (सब मल्लाहो का)

दीनानाथ दयाल आज दर्श हमने पायें।
देख देख नैन सब के, प्रफुल्लित थाये ॥टेर॥
सहज सहज चालत नाव, आपके ही गीत गाव।
मन में नाविकों के चाव, प्रभु घर आयें ॥१॥

राम नाम से आराम, लखन करे सिद्ध सब काम ।
जपत रहे आठों याम, सीता सुखदाये ॥२॥
तजा सत्य खातिर राज, वन को आप चले महाराज ।
हमारे भी संवारन काज, प्रभु इधर आये ॥३॥
नित्य धर्म शुक्ल ध्यान, उदय होवे भाग्य आन ।
रंक घर आये महान, दर्शन दिखलायें ॥४॥

दो— नदीपार जब हो गये, रामचन्द्र भगवान् ।
जनक सुता श्री राम से, बोली मधुर जबान ॥
मुद्रा मेरी निषाद को, दे दीजे महाराज ।
केवट को कर दो खुशी, प्राण पति सिरताज ॥
श्रीराम का था यही विचार, उनका दरिद्र हर लेने का ।
सरकारी जो कुछ था महसूल, वो सभी माफ कर देने का ॥
उस जनक सुता का भी कहना, श्रीराम को था मंजूर सभी ।
दो नेन उठाकर केवटों को, औदार चित्तनें कहा तभी ॥

दो (राम)–निषाद राज आवो इधर, यह लो आप इनाम ।
सुन केवट कहने लगा, अर्ज सुनो श्रीराम ॥

चौ (निषाद) रघुकुल दिनेश काटो कलेश, तुम केवट जग अवतारी हो ।
मैं क्या इनाम तुमसे मांगू, भव तारण आप खरारी हो ॥
मैं पार किया जलसे तुमको, तुम पार करो दु खोंसे हमको ।
जब केवट से केवट मिलगये, अब भेट दिया मेरे गमको ॥

दो.— केवट को करके खुशी, चले अगाडी राम ।
पार खडे जन कह रहे, वह जाते सुखधाम ॥

चौ— जब राम दूर हुवे दृष्टिसे तो, जनता सभी निराश हुई ।
मुख मंडल सबके मुर्झाये, जैसे ग्रीष्म की घाम नई ॥

जब वियोग की अग्निभभक उठी, तब नेत्र वर्षा करने लगे।
और लंबे लंबे श्वास छोड़, सन्तोष हृदय में भरने लगे॥

दो.— परम विरहा शुभ शक्तिवान्, थे सुयोग्य नरनार।
प्रजा और श्रीराम में, प्रेम था गूढ अपार॥

चौ— सब हुए उदास अवधमें, वापिस आते है और रोते हैं।
हृदय में प्रेम उबल उठे तो, अश्रुओं से मुंह धोते है॥
मुश्किल से चरण धरे आगे, है प्रेम राम में अड़ा हुआ।
यह आ तो रहे हैं अवधपुरी, पर मन भ्रमता में पडा हुआ॥

छं.— प्रणाम करके बाद नृप को, वार्ता सारी कही।
हाल सुन राजा की जो थी, सब अक्ल मारी गई॥
भरत को अति प्रेम से, नृप फेर समझाने लगा।
विघ्न मत डालो कुमर, सब भाव बतलाने लगा॥
मान ले बेटा कथन, हित शिक्षा समझाऊँ तुझे।
कर उऋण मुझको धरो, सिरताज बतलाऊँ तुझे॥

गाना नं. ३४ (राजा दशरथ का भरत को समझाना)

लाल मेरे बेटा, धारो सिर पे यह ताज। टेर॥
मानों वचन हमारा, कर्तव्य पहिला तुम्हारा।
देवो मुझको सहारा, धारूं संयम आज।१॥
राम बनको सिधारा संगमें लक्ष्मण प्यारा।
सबने यही उचारा देवो, भरत को राज॥२॥
यह सूर्यवंश कहाया, सबने वचन निभाया।
तुझे ख्याल न आया, सारा विगडे यह काज॥३॥
मस्तक तिलक सजाओ, आर्ति दूर नसाओ।
शुक्ल ध्यान ध्यावो, भापा श्री जिनराज॥४॥

दो. (भरत)-लाख कहो चाहे पिता, नही धारू सिरताज ।
मैं चाकर बन के रहूं, राम करेंगे राज ॥

चौ. (भरत)-राम करेंगे राज्य अभी, वापिस बन से लाऊंगा ।
चलना जिस ने चलो, नही मैं अभी चला जाऊगा ॥
रामचन्द्र के दर्श किये बिन, अन्न जल नही पाऊगा ।
रामचन्द्र को लाकर, सिहासन पर बेठाऊंगा ॥
दौड— मुझे हर वार सताते, जले को और जलाते ।
भ्रात बन बन दुःख पावे, मुझे फेर बतलावो,
कैसे राज काज सुख भावे ॥
छं — यह देख हालत कैकेयी, यों दिल ही दिल कहने लगी ।
और आंसुओं की धार नेत्रों से, अधिक बहने लगी ॥
राज्य यह बिन राम के, चलता नजर आता नही ।
सोचा था जिस के वास्ते, सो भरत कुछ चाहता नही ॥
अवध क्या ससार में, निन्द हमारी हो गई ।
जो कीर्ति अनमोल थी, वह आज सारी खो गई ॥
अपयश हुआ सब जगत में, फिर कार्य न कोई सरा।
भग डाला रंग में उसका, यह फल भरना पडा ॥
दो.— कर विचार यह कैकेयी, आई दशरथ पास ।
हाथ जोड कहने लगी, जो मतलब था खास ॥

दो (कैकेयी)-आज्ञा मुझ को दीजिये, प्राण पति जग नाथ ।
लाऊ राम बुलाय के, चलूं भरत के साथ ॥
चौ. कैकयी-अब जैसे भी हो सका रामको,
पुरी अयोध्या लाती हूँ।
और बने काम जिस तरह नाथ,
वैसा ही करना चाहती हूँ ॥

यह राज ताज दे रामचन्द्र को, आप मुनिव्रत ले लीजे
श्री राम लखन सीताको लाऊं, आज मुझको दे दीजे।

दो — कैकेयी के सुन वचन, बोले दशरथ भूप।
अक्ल ठिकाने आई तेरी, सोची युक्ति अनूप॥

दो. (दशरथ)–बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
व्यवहार यहाँ बिगडे सभी, अशुभ कर्म बंध जाय॥

गाना न. ३५ (राजा दशरथ का कैकेयी को उपालम्भ देना

गजब तूने किया किसका, यह किसको हक दिलाया है
मैं जिसके दर्श से जीऊ, उसी का दिल दुखाया है॥१॥
समझ कर मागती वरदान, तू क्यों हो गई नादान।
अन्त पछतायगी क्यो आज, गौरवको गिराया है॥२॥
नियत यह हो चुका सबकुछ, तिलक श्रीराम को होगा।
अवध की शुद्ध भूमी में, यह क्यों उल्लु बुलाया है॥३॥
भरत को राज देने से नियम सब भग होते हैं।
तू मगल में अमंगल करके, क्यो हृदय जलाया है॥४॥
तेरा अपयश मरण मेरा, न इसमें है कोई सशय।
आज व्यवहार को तजकर, 'शुक्ल' को क्यो लजाया है॥

दो.— आज्ञा ले निज नाथ की, चली राम के पास।
भरत मन्त्री और कैकेयी, हो रहे अति उदास॥

चौ — चपल गति रथ बैठ सभी, अति तेजगति से धाये है।
थे तीनों तरु की छाया में, और नजर दूरसे आये है॥
उधर राम सीता लक्ष्मण ने, दिलमें यही विचार किया।
वह मात कैकेयी आती है, झट आगे आ सत्कार किया॥
फिर उतर यान से मिले परस्पर, खुशी का न कोई पार रहा।
लघु भरत राम के चरणों में, रो रो के आंसु डाल रहा।
और बोले अय भाई मन से, तुमने क्यो मुझे विसारा है॥

अब चलो अवधमे राज करो, चरणो का हमें सहारा है ॥
श्री रामचन्द्र ने माता के चरणों में, शीश झुकाया है ।
फिर बोले माता किस कारण, इतना यह कष्ट उठाया है ॥
सीता आन झुकी चरणों में, विनय भाव दर्शाती है ।
फिर लक्ष्मण ने प्रणाम किया, कैकेयी जल नैन बहाती है ॥

छ — हाथ सब के सिरपे धर धर, प्रेम माता कर रही ।
आसुओं की धार भी, नेत्रों से नीचे झर रही ॥
बोली नही है दोष अन्यका, मेरा ही खोटा भाग्य है ।
जिन्दगी पर्यन्त मुझको, लग चुका यह दाग है ॥
अवध में चलकर कुमर, आर्त्त सभी हर लीजिये ।
तप्त हृदय मात का शीतल, कुमर कर दीजिये ॥
मुझ सी पापिन और, न दुनियां में कोइ नार है ।
रात दिन झुरती कौशल्या, अवध-दुःख मझार है ॥

दो. (कैकेयी)-मेरी गलती पर नही, करना चाहिये ध्यान ।
सागरवत् गम्भीर तुम, मेरे सुत पुण्यवान् ॥
उल्टी मति हो नार की, तुम सागर गभीर ।
मात पिता की अय कुमर, चलो बधाओ धीर ॥

चौ — अब कहना मानों भरत वीर का, चलो अवध का राज्य करो ।
मैं है निपट नादान मेरा अपराध, क्षमा सब आज करो ॥
सुत भरत न लेवे राज्य अवध का, सभी तरह समझाया है ।
इस कारण बेटा आकर के, तुम को वृत्तान्त सुनाया है ॥

दो (राम)-अय माता सब कर फैसला, फिर आया वनवास ।
किस कारण फिर हो गया, भाइ भरत उदास ॥

चौ (राम)-भरत राम में फरक समझ मेरी में कुछ नहीं आता है ।
दे दिया पिता ने ताज भरत को, नहीं क्यों हुक्म बजाता है ॥

पितु प्रतिज्ञा पूर्ण करने को, यह ढंग वनाया था।
सब राज्य भरत को देकर के, मैं सैर वनो की आया था॥
अवधपुरी में अव जाने को, माता मैं तैयार नही।
शुद्ध क्षत्रिय कुल को दाग लगे,
तुमने कुछ किया विचार नही॥
कर्तव्य हमारा वचन पिता का,
जो भी कुछ हो सिर धरना है॥

दो. (भरत)-भरत भरत क्या कह रहे, कहा न मानू एक।
अय भाई मुझको कहां, हुआ राज्य अभिषेक॥

चौ. (,,)-मुझे कहां अभिषेक राजका, हुआ जरा वतलाओ।
फंसुं न हरगिज झगड़े मे, चाहे लाखों चाल चलाओ॥
मंत्री लक्ष्मण ताज आप सिर, चाकर मुझे वनाओ।
अब चलो अवध मे अय याई! सवआर्त्त ध्यान हटाओ॥

दौड— ध्यान मेरा चरण न में, नही जाने दू वन में।
चलो अब देर न लावो, सिहासन पर वैठ मुझे भी
ड्योढीवान बनाओ॥

दो.— उसी समय श्रीराम ने, करी इशारन वात।
सीता ने कलशा नीर का, दिया राम के हाथ॥

चौ.— भरत वीर के शीस रामने, कलशा तुरत दुलाया है।
कहा अवधपुरी का नाथ, भरत राजा यह शव्द सुनाया है॥
यह मत्रीश्वर भी साक्षी है, जो राज्याभिषेक किया हमने।
जो भ्रम भूत सब दूर हुआ, अब तो स्वीकार किया तुमने
अब अवधपुरी में जाकर मंत्री, उत्सव अधिक रचा देना।
और खुश खबरी यह मातपिताको,
जाकर प्रथम सुना देना॥

सब अवध पुरी का मिलजुलकर, नीति से अपना राज्य करो।
कोई कष्ट आन के पडे हमें, दो खबर न चित्त उदास करो॥
अविनय जो कुछ हुआ माता, सो क्षमा सभी अब कर देना।
हम चलने को तैयार अगाडी, हाथ शीस पर धर देना॥
प्रणाम हमारी माताओंको, क्षेम कुशल सब कह देना।
तज कर आर्तध्यान शुक्ल, शुभ ध्यान हृदय में धर लेना॥

दो— प्रेम भाव से देर तक, हुई परस्पर बात।
माता ने लाचार हो, धरा शीसपर हाथ॥

चौ.— अब यथा योग्य प्रणाम किया, फिर आगे को चल धाये है।
यह विरह देख श्री रामका, सब नयनोंमें जल भर लाये है॥
हो गये लुप्त जब दृष्टि से, फिर पीछे चरण हटाये है।
सब बैठ यान में तेज गतिसे, पुरी अयोध्या आये है॥
यहां आदि अन्त पर्यन्त भूपको, सभी वार्ता बतलाई।
हो गया वचन पूरा ऋण उतरा, खुशी वदनमें भर आई॥
फिर उसी समय अति धूमधाम से, भरत पुत्रको राज्य दिया।
और अपना फिर इस दुनियासे, राजाने चित्त उदास किया॥

छं— प्रजा को पुत्रों की तरह, अतिप्रेम से नृप पालता।
देव है अरिहन्त और निर्ग्रन्थ गुरु निज मानता॥
धर्म श्रद्धा है दयामय, ध्यान लेश्या शुभ सभी।
वीताराग कथित शास्त्रों में, न है शंका कभी॥
सूर्य वंशी सुयश पाया, नाम उज्ज्वल कर दिया।
वचन पूरा कर पिताका, कष्ट सारा हर लिया॥
देख शोभा कुमर की, कष्ट राजा का हृदय मर्द है।
पूरी ही कर दिखला दिया, पुत्रो का जो कुछ फर्ज है॥

दो.— संयम लेने के लिये, दशरथ हुआ तयार ।
हाथ जोड़ कहने लगी, आन कौशल्या नार ॥
चौ -(कौशल्या) सुत राम गये बनवास नाथ, तुम भी मयम ले जाते हो।
क्यों बने एक दम निर्मोही, कुछ ख्याल नही दिल लाते हो ॥
महारानी और वजीर सभी, पुत्र आदि समझाते है ।
प्रभु उमर आखिरी में लेना, यदि संयम लेना चाहते हो ॥
दो-(दशरथ) रानी उमर संसार की. इसका आदि न अन्त ।
आरम्भ करू अवस्था धर्म की, लहुं मोक्ष आनन्द ॥
चौ -(दशरथ) लहु मोक्ष आनन्द तजु, अब ख्याल सभी इस घरका।
इस ससार का संबध समझ, जैसे है मणि विषधरका ॥
कारीगर लें काढ़ इस तरह, जैसे कि फूल कमल का ।
तजु कषाय भजूं समता, जैसे स्वभाव चन्दनका ॥
दौड — सभी सयोग अनित्य हैं, ज्ञान गुण इसका नित्य है ।
करू आत्म निर्मल है. पाकर केवल ज्ञान मोक्ष सुख ॥
भोगू सदा अटल है ॥
चौपाई-सत्यभूति मुनि पाससिधाये । चरण कमल में शी झुकावे ॥
बोले भव दु ख से प्रभु तारो । जन्म मरण का कष्ट निवारो ॥
दो— नृप का जब अणगारने, देखा दृढ़ विश्वास ।
तब ऐसे मुनिराजने, किये वचन प्रकाश ॥
चौपाई (सत्यमूनि)-आश्रव रोक संवर को धारो ।
बंध जान निर्जरा विचारो ॥
खम दम सम त्रिक हृदय लाओ ।
तप जपकर अरिकर्म उड़ाओ ॥
दो — (,,) पांच महाव्रत धार लो, पांच ही सुमति मान।
राजन् ? गुप्ति तीन कर, पहुँचों पद निर्वाण ॥

चौ — सुना मूल गुण संयम का, वैराग्य मजीठ का रग चढ़ा।
चरणों में करी प्रणाम फेर, ईशान कोणकी तर्फ बढ़ा॥
आभूषण सभी उतार भूपने, केश लूंच कर डारे है।
मुखपत्ति मुंह पर बांध मुनि हो, चार महाव्रत धारे है॥
दीक्षा उत्सव के बाद सभी जन, निज निज कारोबार लगे।
तजकर झूठा संसार मुनि, तप सयम के व्यवहार लगे॥
इस तरफ अवध का राज भरत, नीति से खूब चलाते है।
वनवास में फिरते उधर, रामसिया लक्ष्मणका हाल बताते है॥

दो — फिरते है नित्य चाव से, मन में अति हुलास।
चित्रकूट में पहुंचकर, किया रामने वास॥

चौ — शुभ समय विताते है अपना, सध्या और आत्म शोधन में।
श्री राम महात्म्य प्रगट हुआ, इस कारण सारे लोकन में॥
फिर वहाँ से भी चल दिये राम, जब सीता का चिड दास हुआ।
अब ऋतु वसन्त भी आ पहुची, सारे जगल में घास हुआ॥

वज्रकरण सिहोदर वर्णन

दो — आगे फिर इक आ गया, अवन्ती नामक देश।
शुद्ध एक स्थान में, ठहरे राम नरेश॥

चौ. — वट वृक्ष तले आसन लाये, जहा अति गहन शुभ छाया है।
कुछ देख हाल उस जगल का, मन ही मन ध्यान लगाया है॥
क्या बाग और उद्यान यह दोनों, अद्भुत रग दिखाते है।
फूलो पर यौवन वरस रहा, पर मनुष्य नजर नही आते है॥

दो (राम) उज्जड़ अब ही का हुआ, अय लक्ष्मण यह देश।
कोई मिले तो पूछिये, कारण कौन विशेष॥

चौ — थोडी देर के बाद, पथिक एक नजर सामने आया है।
कुछ हाल पूछने लिये अनुजने, अपने पास बुलाया है॥

बोले अहो पथिक यह बतलावो, किस कारण उज्जड़ देश हुआ।
सब आदि अन्त पर्यन्त कहो, तेरा भी क्यों दुर्बल हुआ॥

दो (पथिक)-दारुण दुःख सुन लीजिये, पथिक कहे तत्काल।
जिस कारण उज्जड़ हुआ, बतलाऊँ सब हाल॥
उज्जयनी एक नगर मे, सिहोदर राजान।
भूपति आचरण न गिरें, आज बड़ा बलवान्॥

दो-(पथिक) वज्रकर्ण एक और है, दशांगपुर का भूप।
सिहोदर ने आनकर, घेरा नगर अनूप॥

चो (,,) घेरा नगर अनूप हाल, अब कहूं बैठकर सार।
मुझे मिले आराम और, संशय मिटजाय तुह्मारा॥
खेलने लिये शिकार एकदिन, नृप उद्यान सिधारा।
खड़ा देख "मुनि जैन" सामने, मुखसे बचन उचारा॥

दौड़ — खडे किस कारण बनमें, तजा क्यों घर यौवन में।
नाम क्या कहो तुम्हारा महाकष्ट क्यों भोगरहे,
क्या दिल में ख्याल विचारा॥

दो — मुनिराज कहने लगे, राजन् सुनकर गौर।
कर्म काटने के लिये, करें तपस्या घोर॥

चौ.— प्रीतिवर्धन नाम मेरा, व्यवहारिक शब्द कहाता है।
सब छोड गठ निर्ग्रन्थ बने, आनंद ज्ञानमें आता है॥
जो द्विविध धर्म कहा सर्वज्ञने, उसकी तुमको खबर नहीं।
निरपराधी को हनना यह, क्षत्रिय कुल का धर्म नही॥
अब सुनो जराकर ध्यान धर्म, द्विविध का तुम्हें बताते है।
सम्पूर्ण धर्म कहा मुनियो का, पहिले सो दर्शाते है॥
पांच सुमति और तीन गुप्तिको, हरदम हृदय रखना है।
शुद्ध मग्ग्म नीरग्म जो मिले आहार, सब समप्रणामे खाना है॥

शुद्धाचार महाव्रत धार मूल गुण, चार कषाय निवारत है।
सब कष्ट सहे सहर्ष सदा, परकार्य मुनि सवारत है॥
उत्तम गुण के धारक त्यागी, आत्म ध्यान लगाते है।
शुभ तपजप कर अरि कर्म काटकर, अक्षय मोक्षपद पाते है॥
अव आगे सुनो ध्यान लाकर, जो वीतराग का फरमाना।
कुछ गृहस्थ धर्म का भी वृत्तान्त, राजन् है तुमको वतलाना॥
पाच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत, धारण करते है।
और सातो कुव्यसन तजें तनमन, धन से पर कार्य करते है॥
देव गुरु शुभ धर्मशास्त्र, चारों की पहिचान करें।
रत्नत्रय को धार, श्री मुनिसुव्रत को प्रणाम करें॥
नव तत्त्व पदार्थ धार हृदय, अरि दुष्ट कर्म सव दूर करें।
अवहिसा दोष वताते है, इस पर भी जरा विचार करें॥
मदिरा मांस के खाने वाले, अधो नरक मे जाते है।
जो करें शिकार अनाथों का, वह जन्म मरण दु ख पाते है॥
दु ख होता है दु ख देने से, यह सर्वज्ञों का कहना है।
कोई जैसा वोवे वीज, उसीका वैसाही फल लेना है॥

गाना न. ३६ (मुनिराज का राजा वज्रकरण को उपदेश देना)

तर्ज–नाटक की—

तुम सत्य धर्म को पालो, हरदम जान जान जान॥ टेर
जो सत्य धर्म को पाये, वह नरकादिक दु ख टाले।
जहा खडे है तिरछे भाले, सत्य तू मान मान मान॥१॥
यह राजपाट सुत भ्राता, नही संग किसीके जाता।
फिर परभव में दु ख पाता, सुन धर कान कान कान॥२॥
जो विमुख धर्म से होता, वह सिर धुन धुन कर रोता।
कुछ मतलव सिद्ध नहीं होता, सुन धर ध्यान ध्यान ध्यान॥३॥

जिन क्रोध मान मद मारा, और अष्ट कर्म को ढारा।
हुआ शुक्ल ध्यान सुखकारा, मिले निर्वाण बाण बाण ॥४॥

दो.— राजाने ऐसा सुना, आतम धर्म अनूप।
सम्यक्त्व शुद्ध धारण करी, बैठा हृदय स्वरूप ॥

चौ -(राजा) सिवाय देव अरिहन्त देव, दूजा नही चित्त लगाऊंगा।
निर्ग्रन्थ-गुरुके बिना नही, किसी अन्य को शीस झुकाऊंगा ॥
यावज्जीव पर्यन्त काम कोई, दुष्ट नहीं दिलमें धारूं।
शुभ धर्म हेत तन मन धन, इज्जत राज्य न्योछावर कर डारूं ॥
यह लिया नियम शुभ धार, भूपने मुनिको शीस झुकवाया है।
झट चरणोंमें प्रणाम किया, फिर राज सभामें आया है ॥
फेर विचार किया ऐसे, यदि सिहोदर सुन पावेगा।
इस मेरी कठिन प्रतिज्ञा पर, वह भूप अति झुंजलावेगा ॥
यदि शीस झुकाऊं राजा को, तो नियम टूट मम जावेगा।
अब कौन उपाय करूं इसका, जब मेरे सनमुख आवेगा ॥

छ — आगार के उपयोग बिन, हुई थी सोच यह भूपाल को।
बनवा लई इक मुद्रिका, उस दम बुलवाय सुनार को ॥
नाम श्री अरिहन्त अंकित, पहिन अंगुली में लई।
यह ही बना कर ढंग नृपने, धीर निज मन को दई ॥
जब समागम हो कही, अरिहन्त गुण हृदय धरे।
हस्त मस्तकको लगा, प्रणाम नृप ऐसे करे ॥
एक व्यक्तिने सभी यह, रहस्य एक दिन पा लिया।
और पास सिहोदर के जाके, हाल सब बतला दिया ॥

दो— वज्रकर्ण के विरुद्ध सब, दिया चुगलने भाप।
बोला अब तज दीजिये, वज्रकर्ण की आश ॥

चौ -(पिशुनक) तुम्हें नही वह नमस्कार, अरिहन्त देवको करता है।
पागल तुम्हें बना रखा, निज वक्र भाव दिल धरता है ॥

निश्चय मैंने किया तुम्हें, वोह कब खातिर मे लाएगा ।
अगूठी कर से हटा कभी नहीं, आपको शीस झुकाएगा ।।

दोहा— पिशुन पुरुष के वचन सुन, जल बल हो गया ढेर ।
क्रोधित सिहोदर हुआ, जैसे भूखा शेर ।।
सिहोदर कहने लगा, अब आ पहुची रात ।
प्रात काल जाकर करू, वज्रकरण की घात ।।
सिंहोदर जाकर लगा, करने भोजन पान ।
किसी पुरुषने कहा दिया, वज्रकर्ण को आन ।।

चौ –(रामचन्द्र–पथिक से)

बोले राम वह कौन मनुष्य, जो गुप्त भेद सब पाया है ।
वज्रकर्ण के पास पहुच, जिन सभी हाल बतलाया है ।।
ज्ञात तुम्हें है तो यह भी, कह दो, हम सुनना चाहते है ।
बोला पथिक सुनो यह भी, हम सभी खोल दर्शाते है ।

दो. (पथिक) कुन्दन पुरमें सेठ के, सुन्दर यमुना नार ।
विद्युत् अग पुत्र हुआ, शशीवदन सुखकार ।।

चौ (,, -शशिवदन सुखकार सेठ सुत नगर उज्जयनी आया ।
रूप कला नही पार द्रव्य, उज्जयनी खूब कमाया ।।
कामलता वेश्या देखी, रगरग में इश्क समाया ।
खोटी संगत में पड करके, सारा माल गंवाया ।।

दौड— पास जिसके न पेसा, मेल फिर उसके कैसा ।
लगी दिखलाने पौलो, वर्ताव देख विद्युत अंग
वैश्या से ऐसे बोला ।।

दो (विद्युत अग)-अय प्यारी तेरे लिये, तजे मात और तात ।
लाखो की दौलत करी, तुझ कारण बरबाद ।।

छं. (,,)–लाल हीरे रत्न प्यारी, मार सब तुझ को दिया।
विश्वास घातिन बन के धक्का आज क्युं मुझ को दिया॥
अब विना तेरे ठिकाना, और न मुझको कही।
क्षुधा निवारण के लिये, पैसा कोई पल्ले नही॥
वैश्या कहे तु कौन है, बक बक खडा क्यों कर रहा।
रोती बना सूरत अभागा, नेत्रो में जल भर रहा॥
बोला अय प्यारी देख मैं, वह ही तो विद्युत् अग हू।
करती थी जिससे प्यार अब, कुछ ख्याल कर मैं तंग हू॥
वैश्याने सोचा कि कहूं, रानी के कुंडल चोर ला।
खुद ही मारा जायगा, सब दूर टल जाय बला॥

दो (वैश्या)–कुडल कानो के ले आ, यदि चाहे सयोग।
नही तो दिलमे सोच ले, सारी उमर वियोग॥

चौ (विद्युतअग)-फिर बोल विद्युत् विना, द्रव्यके, कैसे कुंडल आयेगें।
यह बातें अद्भूत सुनकर तेरी, प्राण हमारे जायगें॥
न पास हमारे कौडी है, तुमने यह और सवाल किया।
तन धन यौवन सब छीन आज, किस तरह मुझे पामाल किया॥

गाना (विद्युत् अग का कामलता वेश्या की बातोंसे निराश होकर अफसोस के साथ कहना और वेश्या की कृतघ्नता प्रगट करना)

जिनको जूतीके तले, पलकें बिछाते देखा।
आज मुंह देखते ही, नाक चढाते देखा॥ १॥
झूठे टुकडों से मेरे, पलता था कुनबा जिनका।
सरे बाजार उन्हें, धमकी सुनाते देखा॥ २॥
पखर जिनको था मेरे, चरण दबाने में कल।
क्रोधसे आज उन्हें, आँखे दिखाते देखा॥ ३॥

मेरे दरपे जो कुत्तों की, तरह फिरते थे कल ।
आज विपरीत उन्हे, दात चबाते देखा ॥ ४ ॥
न प्रेम न धीरज न वो, बुद्धि आकार रहे ।
'शुक्ल' पैसे को सभी, नाच नचाते देखा ॥ ५ ॥

दो.-(वैश्या) आ भूपण विन द्रव्य ही, तस्कर लावें लूट ।
ऐसे भी न जिसे मिलें, तो किस्मत गई फूट ॥

चौ -(,,) आज ही रात अंधेरी में, राजा के महल घुसो जाकर।
रानी के कान पडे कुडल, जल्दी लावो झटका लाकर॥
ऐसा सुनकर जा घुसा, महल में राजारानी जाग रहे ।
सोचा छुपकर बैठूं महलों मे, क्योकि जल सभी चिराग रहें॥
जो एक पलका भी सो जावें, तो मुझे फिकर न एक रहे ।
विद्युत अतर से छिपे हुवे, रानी के कुंडल देख रहे ॥
नीद न आती राजा को, मनमें रानी यों विचार रही ।
निश्चय करने को महारानी, चपा यू वचन उचार रही ॥

दो.(चंपारानी)-इधर उधर तन पलटते, सुनो पति महाराज ।
किस उच्चाट में लग रहे, नीद न आती आज ॥

दो (सिंहोदर)-क्या रानी तुझको कहूं, वैरन हो रही रात ।
दिन चढते कल जा करू, वज्रकर्ण की घात ॥

चौ (,,)-प्रणाम नही करता मुझको, फल इसका उसे चखाऊंगा ।
मैं दशाग पुर को कल जाकर, चहु ओर से घेरा लाऊगा ॥
इसी विचार में अभी तलक अय रानी मैं हू लगा हुआ ।
यह मन चिता ने घेर लिया. इस कारण मैं हू जगा हुआ ॥

दो.— होनी आगे ही खडी. कारण रही मिलाय ।
वलिहारी कुव्यवसन की, वने चौर कहा जाय ॥

चौ — विद्युत अंगने सोचलिया, हरगिज नहीं कुंडल पाऊं मैं।
इससे अच्छा है वज्रकर्ण को जाकर के समझाऊं मैं॥
सोच समझ के ऐसा मनमें, विद्युत अग सिधाया है।
रात समय आ वज्रकर्ण को, सारा हाल सुनाया है॥

दो (पथिक)- सिहोदर का हाल सुन, घबरा गया नरेश।
सावधान हो किले, में बैठा सजा विशेष॥

चौ (,,)—सामान सभी ले दुर्ग बीच, पहरा चहु ओर लगाया है।
अब सिहोदर ने उधर आन, दलबल से घेरा लाया है॥
जैसे तरुवर चन्दन पे, भमरे भुजंग छा जाते है।
ऐसे जंगी दल पडा देख, सब नर नारी घबराते है॥
सिहोदर ने भेज दूत नृप को, यह वचन सुनाया है।
अवकाश नही तुमको बचने का, हमने घेरा लाया है॥
मुद्रिका हटा गिरो चरणनमें, यदि जान बचाना चाहते हो।
किस कारण फसकर धर्म, भ्रममें जान मालसे जाते हो॥

दो. नं (वज्रक)–वज्र करण उत्तर दिया, सुन लीजे दरख्वास्त।
राज पाट धन मालकी, मुझे नही कुछ ख्वास्त॥

चौ नौ–देव गुरु को छोड नही, नमने का सिर मेरा है।
रस्ता दीजे तजू देश, यदि कोई हर्ज तेरा है॥
क्यों दुख देते प्रजा को, ला चहुं ओर घेरा है।
तजूं न हरगिज धर्म, जब तलक दममें दम मेरा है॥

दौड— नियम अपना नही तोडू, और सब कुछ ही छोडूं।
क्षत्रिय कहलाता हू, नही हारुंगा धर्म नर्म
बचनों से समझाता हूं॥

दो. (पथिक)–उत्तर सुन सिहोदर को, चढ़ा रोश विकराल।
मारे बिन छोडू नही, कहे बचन भूपाल॥

छं (पथिक)–लूट प्रजा को लिया, लाई कही पर आग है ।
छोड कर घर वार नर नारी समूह गया भाग है ॥
लूट निर्धन कर दिये, धनी क्या सभी नर नार है ।
मेरा भी सब कुछ खुस गया, बस माल और घरवार है ॥
उज्जड हुआ तत्काल का, यह समृद्धि शालि देश है ।
वस्त्र भी मेरे खुस गये, वस रह गया यह खेस है ॥
नार ने मुझ से कहा, जो कुछ मिले घर से ले आ ।
भय पिछाडी नार का, आगे भी डरता है जिया ॥
आपके दर्शन किये, आराम कुछ मुझ को मिला ।
क्या करूं जाऊँ किधर, दोनो तरफ डरता दिला ॥

दो — पथिक के सुनकर वचन, यों बोले श्रीराम ।
रत्न मयी यह तागडी लेजा कर निज धाम ॥

चौ — लाखो का ले द्रव्य पथिक, चरणों में शीस झुकाता है ।
और हुआ बहुत प्रसन्न धूल, चरणों की मस्तक लाता है ॥
रामचद्र कहे लक्ष्मण से, अय भ्रात जल्दी पुर में जाओ ।
यह कष्ट पडा एक धर्मी पे, जल्दी से उसे हटा आओ ॥
हाथ जोड कर नमस्कार, ले धनुष लखन उठ धाये है ।
कौन सिंह को रोक सके, चल वज्र करण पे आये है ॥
सेवा की अति लक्ष्मण की, सब भेद भूप ने पाया है ।
वन में बैठे सियाराम हाल, सब लक्ष्मण ने समझाया है ॥

दो - उसी समय श्रीराम को, ले गये महल बुलाय ।
भोजन पानी सब तरह, सेव करी चित लाय ॥
भेजा लक्ष्मण सामने, सिंहोदर के पास ।
लक्ष्मण जा कहने लगा, जो मतलब था खास ॥

दो. (लक्ष्मण)-निष्कारण के क्रोधसे. होते है अन्याय।
हर व्यक्ति को हर जगह, न्यायपंथ सुखदाय॥

चौ (लक्ष्मण)-समझ लिया हमने सब कुछ, इस लिये तुम्हें समझाते है।
मिल चुका दंड कर लो संधि, क्यों आगे राड बढाते हो॥
इस झगडे का भेद कहीं, यदि भरत भूप सुन पावेगा।
मिल जायगा धूल में सब शक्ति, और जानमाल से जावेगा॥

दो.— लक्ष्मण का प्रस्ताव सुन, तडप उठा भूपाल।
कौन है तू मुझको बता, बोला आख निकाल॥

चौ (सिंहोदर)-हृदय नेत्र दोनो के अंधे किसको धौंस दिखाई है।
करी मिसाल वही लाडो की, भूआ बनकर आई है।
भरत भरत कर रहा बता क्या, नाता लेकर आया है॥
जिसका कोई सम्बन्ध नहीं, उसका प्रसंग चलाया है।
धुरसे है मात तात हमारे, भरत क्या इसका मामा है।
यह धौंस वृथा क्यो दिखलाई, यहा क्षत्रिय कुल का जामा है॥
सब मान भंग करके इसका चरणो मे आज गिराऊंगा।
क्यों तेरी भी होनी आई, परभव इसको पहुंचाऊंगा॥

दो - सुनी काट करती हुई. बात सुमित्रानन्द।
गर्ज तर्ज कहने लगा, बाका वीर बुलन्द॥

चौ (लक्ष्मण)-नीच भाव राजन् तेरे, मैं भी तो दूत भरत का हूं।
नाग पवनिया दिया छेड मैं, नही वीर गफलत का हूं॥
मान सभी मर्दन करके, अन्याय का मजा चखाऊगा।
जो वचन कहे मुख से पूरे, बिन किये न यहा से जाऊगा॥

छं (लक्ष्मण)-है खेद इस अन्याय पर. क्षत्री का तू जाया नही।
धर्मी को तैने दुःख दिया, कुछ भय भी मन लाया नही॥

हर वार उसने है कहा, सव ही यह कुछ ये लीजिये ।
धर्म को छोड़ं नही, रस्ता मुझे दे दीजिये ॥
कौन कारण से वता फिर, जान का दुश्मन वना ।
समझ ले अव भी नही, मैदान मे होगा फना ॥

दो -- वातो वातो में वढी, दोनो में तकरार ।
सुभटों को कहने लगा, सिहोदर ललकार ॥

दो (सिहोदर)-पकडो इस अज्ञानी को, वोले शब्द कठोर ।
धसो एकदम दुर्ग में देखें सव का जोर ॥
कडा— प्यारे जी सुनते ही सव, सूर एकदम खरे ।
उस तर्फ सुमित्रा नन्द, नाहर सम घूरे ॥

दो — लक्ष्मण को जव पकडने, गये एकदम शूर ।
उधर सुमित्रानन्द को, चढ़ा जोश भरपूर ॥
चौ — दलमें कूद पडा ऐसे, जैसे कोई शेर वकरियो में ।
वसन्त अन्त जैसे ग्रीष्म, ऐसे ही अनुज क्षत्रियो में ॥
हो गया साफ मैदान कई, मर गये और दल भाग पडा ।
फिर वोल दिया नृपने हल्ला, और हस्ती ऊपर आप चढा ॥
जैसे नर नाचे वासोंपर, करता कमाल अपने फनमें ।
ऐसे ही लक्ष्मण वीर वली, करता कमाल गज्जा रणमें ॥
देख जौहर नृप दहलाया, लक्ष्मण होदे पर कूद पडा ।
मुश्कें वाध लई राजाकी, दल वाकी सव वेकार खडा ॥
श्री रामचंद्र के पास अनुज, नृपकी मुश्कें कस लाया है ।
और आदि अन्त पर्यन्त सभी, रण का वृतान्त सुनाया है ॥
श्री राम सिया और लक्ष्मण हैं, यह भेद सिहोदर पाया है ।
फिर वारम्वार क्षमा मांगी, चरणोंमें शीश झुकाया है ॥

दो. (लक्ष्मण)–निष्कारण के क्रोधसे, होते है अन्याय ।
हर व्यक्ति को हर जगह, न्यायपंथ सुखदाय ॥

चौ (लक्ष्मण)-समझ लिया हमने सब कुछ, इस लिये तुम्हें समझाते है।
मिल चुका दड कर लो संधि, क्यो आगे राड बढाते हो ॥
इस झगडे का भेद कही, यदि भरत भूप सुन पावेगा ।
मिल जायगा धूल में सब शक्ति, और जानमाल से जावेगा ॥

दो.— लक्ष्मण का प्रस्ताव सुन, तडप उठा भूपाल ।
कौन है तू मुझको बता, बोला आंख निकाल ॥

चौ (सिंहोदर)–हृदय नेत्र दोनों के अधे किसको धौंस दिखाई है ।
करी मिसाल यही लाडो की, भूआ बनकर आई है ।
भरत भरत कर रहा बता क्या, नाता लेकर आया है ॥
जिसका कोई सम्बन्ध नही, उसका प्रसग चलाया है ।
धुरसे है मात हत हमारे, भरत क्या इसका मामा है ।
यह धौंस वृथा क्यों दिखलाई, यहां क्षत्रिय कुल का जामा है ॥
सब मान भंग करके इसका चरणो मे आज गिराऊगा ।
क्यों तेरी भी होनी आई, परभव इसको पहुंचाऊगा ॥

दो - सुनी काट करती हुई, बात सुमित्रानन्द ।
गर्ज तर्ज कहने लगा, बाका वीर बुलन्द ॥

चौ (लक्ष्मण)-नीच भाव राजन् तेरे, मैं भी तो दूत भरत का हूं ।
नाग पवनियां दिया छेड मैं, नही वीर गफलत का हूं ॥
मान सभी मर्दन करके, अन्याय का मजा चखाऊंगा ।
जो वचन कहे मुख से पूरे, बिन किये न यहा से जाऊगा ॥

छं (लक्ष्मण)-है खेद इस अन्याय पर, क्षत्री का तू जाया नही ।
धर्मी को तैने दुःख दिया, कुछ भय भी मन लाया नही ॥

हर बार उसने है कहा, सब ही यह कुछ ये लीजिये ।
धर्म को छोड़ूं नहीं, रस्ता मुझे दे दीजिये ॥
कौन कारण से बता फिर, जान का दुश्मन बना ।
समझ ले अब भी नही, मैदान मे होगा फना ॥

दो-- बातों बातों में बढी, दोनो में तकरार ।
सुभटों को कहने लगा, सिहोदर ललकार ॥

दो (सिंहोदर)-पकडो इस अज्ञानी को, बोले शब्द कठोर ।
धसो एकदम दुर्ग में देखें सब का जोर ॥
कडा— प्यारे जी सुनते ही सब, सूर एकदम रूरे ।
उस तर्फ सुमित्रा नन्द, नाहर सम घूरे ॥

दो — लक्ष्मण को जब पकडने, गये एकदम शूर ।
उधर सुमित्रानन्द को, चढ़ा जोश भरपूर ॥

चौ— दलमें कूद पडा ऐसे, जैसे कोई शेर बकरियों में ।
बसन्त अन्त जसे ग्रीष्म, ऐसे ही अनुज क्षत्रियो मे ॥
हो गया साफ मैदान कई, मर गये और दल भाग पडा ।
फिर बोल दिया नृपने हल्ला, और हस्ती ऊपर आप चढा ॥
जैसे नर नाचे बासोंपर, करता कमाल अपने फनमें ।
ऐसे ही लक्ष्मण वीर बली, करता कमाल गरजा रणमें ॥
देख जौहर नृप दहलाया, लक्ष्मण होदे पर' कूद पडा ।
मुश्कें बांध लई राजाकी, दल बाकी सब बेकार खडा ॥
श्री रामचद्र के पास अनुज, नृपकी मुश्कें कस लाया है ।
और आदि अन्त पर्यन्त सभी, रण का वृतात सुनाया है ॥
श्री राम सिया और लक्ष्मण है, यह भेद सिहोदर पाया है ।
फिर बारम्बार क्षमा मागी, चरणोंमें शीश झुकाया है ॥

दो (सिहोदर)-क्षमा मुझे अब कीजिये, यही मेरी अरदास ।
राजपाट सब आपका, मैं चरणों का दास ॥

चौ. (राम)-बोले राम सुनो अच्छा, अब मेरें सभी बखेडा यह ।
दोनो के राज्य मिला करके, बस अर्धम अर्घ निवेडा यह ॥
सेवक मालिक नही कोई, अब दोनो भ्रात बराबर के ।
है यदि तुम्हें मजूर फैसला, करू कहू समझा करके ॥

दो.— सिहोदर और वज्र करण, गिरे चरण में आन ।
हमें सभी स्वीकार है, जो भाया भगवान ॥

चौ.— श्रीराम ने कुंडल मगवा कर, विद्युत् अग के हाथ दिये ।
और बना दिया अधिकारी नृप ने, सब नगरो के नाथ किये ॥
फिर बोले राम से सिहोदर, एक बात आप से चाहता हू ।
हे नाथ! करें मंजूर मैं निज पुत्री, लक्ष्मन को विवाहता हू ॥

दो. (राम)-लक्ष्मण से लो सम्मति, यों बोले श्रीराम ।
यदि लखनजी मान लें, बने तुम्हारा काम ॥

दो.— लक्ष्मणजी से फिर कहा, सिहोदर ने आन ।
सुनते ही फिर अनुज यों, बोले मधुर जबान ॥

छ (लक्ष्मण)-अब नही समय विवाह का, बोले अनुज सुन लीजिये ।
परणेंगे वापिस आन कर, जाने हमें अब दीजिये ॥
हो विदा उज्जैन को, सेना ले सिहोदर गया ।
धर्म के प्रताप से, नृप का उपद्रव टल गया ॥
राम लक्ष्मण भी विदा हो, ध्यान चलने में किया ।
विश्राम करते उस जगह, जहापर कि थक जाती सिया ॥

दो -- मलयाचल आगे बढे, जब श्री राम नरेश ।
चलते हुवे आया वहां, निर्जल नामा देश ॥

तृषा सीता को लगी, लिया जरा विश्राम ।
पानी लाने के लिये, लक्ष्मण धाया ताम ॥
एक सरोवर जल भरा, देखा अधिक अनूप ।
जल क्रीडा करने वहां, आया है एक भूप ॥
कुबेर पुर का अधिपति, कल्याण नाम सुकुमाल ।
देख सुमित्रानन्द को, खुशी हुआ तत्काल ॥
उसी समय कर प्रेम भाव, लक्ष्मण से हाथ मिलाया है ।
फिर करता अनुज विचार, लगे औरत दिलमें मुस्काया है ॥
कल्याण भूपने लक्ष्मणजी का, स्वागत किया अतिभारा है ।
और दिया आमत्रण चलो महल, मुख से यू वचन उचारा है ॥

दो. नौ.-इश्क मुश्क गुफिया खुरक, द्वेष खून मद पान ।
भेद न मूर्ख को लगे, लेते चतुर पहिचान ॥
चौ. नौ-लेते चतुर पहिचान, भेद लक्ष्मणने सब जाना है ।
तेजी से नही पडे कदम, यह औरत का जामा है ॥
नक्त पडे सब महिला के, एक वाना मर्दाना है ।
काम बाण से हुई चूर, मेरी इसको चाहना है ॥
दौड— उमर छोटी बिल्कुल है, हुस्त्त चेहरा खुशदिल है ।
रहस्य कुछ पाना चाहिये, सियाराम बैठे वन में,
यह भी दर्शाना चाहिये ॥

दो. (लक्ष्मण) सिया राम बैठे वहां, बोले लक्ष्मण लाल ।
बिन आज्ञा कैसे चलू, महल सुनो भूपाल ॥
उसी समय सेवक जन को, राजाने हुक्म चढ़ाया है ।
सियाराम को बुला सग ले, अपने महल सिधाया है ॥
भोजन पान से की सेवा, और समझा परउपकारी है ।
अवसर देख कुबेर पति ने, मुख से बात उचारी है ॥

दो. (कल्याण राजा) चरण दास की विनती, सुन लीजे महाराज।
परोपकारी तुम प्रभु, सभी जगत् के ताज ॥
वालि खिल्य है पिता मेरा, पृथ्वी नामा महतारी है।
गर्भवती थी पृथ्वी रानी, सुन लीजे व्यथा हमारी है ॥
आया इक गिरोह डाकुओं का, सहसा वालिखिल्य बांध लिया।
नही लगा पता कई मासों तक, दुर्गम नग बीच तलाश किया ॥
सुता हुई पीछे रानी के, और नही कोई लडका है।
वृद्धावस्था वालीखिल्य की, कुछ यह भी दिल में धडका है ॥
वालिखिल्य है किस हालत में, यह हमको कुछ खबर नही।
यदि करें लडाई जाकर के, दस्यु दल से हम जबर नही ॥
फिर सोचा कि पुत्री जन्मी, कही सिहोदर सुन पायेगा।
राज पाट सब के ऊपर, अपना अधिकार जमायेगा ॥
इस हानी से बचने के लिये, रल मिल एक वात वनाई है।
'पुत्र जन्मा महारानी के' यह वात, प्रसिद्ध कराई है ॥

दो.— सिहोदर को यह खबर, पहुंचाई तत्काल।
सहित बधाई उत्तर यों, भेज दिया भूपाल ॥

राज तिलक दो राज कुमर को, सिहोदर ने फरमाया है।
मंत्रीने अपनी बुद्धि से, यह सारा ढंग रचाया है ॥
पल्लीपति को लालच भी, हम द्रव्य वहुत सा देते है।
फिर भी न तजते अपना हठ, इस लिये महा दुःख सहते है ॥

दो.— वज्रकर्ण का जिस तरह, दीना कष्ट निवार।
नाथ हमारा भी जरा, कीजे तनिक बिचार ॥

चौ.— यों बोले राम यह भेष पुरुष का, अभी तन से दूर करो।
बालिखिल्य को छुडवा देगें, तुम अपने मन में धीर धरो ॥

देकर के सन्तोप राम फिर, नदी नर्मदा आये है ।
निर्भयता से विंध्य अटवी की, ओर आप चल धाये हैं ॥

दो.— अटवी में एक भीलनी कर रही मार्ग साफ ।
कभी कहती है "हे प्रभो! कटे किस तरह पाप" ॥

चौपाई—शब्द भीलनी के सुन राम। निज मन माही विचारा ताम ॥
भीलनी जपे जिनेश्वर नाम। क्या सत्संग हुआ इस धाम ॥
या जाति स्मरण हुआ ज्ञान। कारण कोई मिला शुभ आन ॥
क्या सुन्दर करती गुण गान। सुन जिन नाम टलें सब मान ॥

दो.— देख रामको भीलनी, हर्पित हुई अपार ।
चरणों में आकर गिरी, सबको किया जुहार ॥
एक वृक्ष तले बैठा करके, फिर पानी उन्हे पिलाया है ।
जो चुनकर रक्खे थे पहिले, बेरोंपर हाथ जमाया है ॥
मीठों की परीक्षा कारण कुछ, निज दांतोसे काटती थी ।
फिर छांट छांट अच्छे अच्छे, सीयाराम लखन को बांटती थी ॥

दो.— सादर प्रेम के वह बेर खा, मिला अपूर्व स्वाद ।
जनता को वह प्रेम सब, आज तलक है याद ॥

चौ— वह बेर नहीं एक अमृत था, सब तीन लोकमें बढ़ करके ।
शुभ है पांचों रस दुनियां में, पर इनमें था बढ चढ़ करके ॥
अब बाप बेटे में नफरत है, तो औरो से फिर प्रेम कहा ।
एक दूजे में जहां प्रेम नही, वहां वर्तेगा सुख क्षेत्र कहा ॥
जो दशा आज भारत की है, किसी बुद्धिमान् से छिपी नही ।
चोटों पर चोटें सहते है, फिर भी हैं आंखों मिची हुई ॥

दो— पा करके मानुष्य तन, करो जरा कुछ ख्याल ।
अन्त सभी तजना पडे, परिजन तन धन माल ॥

दो. (कल्याण राजा) चरण दास की विनती, सुन लीजे महाराज ।
परोपकारी तुम प्रभु, सभी जगत् के ताज ॥
वालि खिल्य है पिता मेरा, पृथ्वी नामा महतारी है ।
गर्भवती थी पृथ्वी रानी, सुन लीजे व्यथा हमारी है ॥
आया इक गिरोह डाकुओं का, सहसा वालिखिल्य बांध लिया ।
नही लगा पता कई मासों तक, दुर्गम न ग बीच तलाश किया ॥
सुता हुई पीछे रानी के, और नहीं कोई लडका है ।
वृद्धावस्था वालीखिल्य की, कुछ यह भी दिल में धडका है ॥
वालिखिल्य है किस हालत में, यह हमको कुछ खबर नहीं ।
यदि करें लडाई जाकर के, दस्यु दल से हम जबर नही ॥
फिर सोचा कि पुत्री जन्मी, कही सिहोदर सुन पायेगा ।
राज पाट सब के ऊपर, अपना अधिकार जमायेगा ॥
इस हानी से बचने के लिये, रल मिल एक वात वनाई है ।
'पुत्र जन्मा महारानी के' यह वात, प्रसिद्ध कराई है ॥

दो.— सिहोदर को यह खबर, पहुंचाई तत्काल ।
सहित बधाई उत्तर यों, भेज दिया भूपाल ॥
राज तिलक दो राज कुमर को, सिहोदर ने फरमाया है ।
मंत्रीने अपनी बुद्धि से, यह सारा ढग रचाया है ॥
पल्लीपति को लालच भी, हम द्रव्य वहुत सा देते है ।
फिर भी न तजते अपना हठ, इस लिये महा दुःख सहते है ॥

दो.— वज्रकर्ण का जिस तरह, दीना कष्ट निवार ।
नाथ हमारा भी जरा, कीजे तनिक बिचार ॥

चौ.— यों बोले राम यह भेष पुरुष का, अभी तन से दूर करो ।
बालिखिल्य को छुडवा देगें, तुम अपने मन में धीर धरो ॥

देकर के सन्तोष राम फिर, नदी नर्मदा आये है ।
निर्भयता से विध्य अटवी की, ओर आप चल धाये हैं ॥

दो— अटवी में एक भीलनी कर रही मार्ग साफ ।
कभी कहती है "हे प्रभो ! कटे किस तरह पाप" ॥

चौपाई—शब्द भीलनी के सुन राम । निज मन माही विचारा ताम ॥
भीलनी जपे जिनेश्वर नाम । क्या सत्संग हुआ इस धाम ॥
या जाति स्मरण हुआ ज्ञान । कारण कोई मिला शुभ आन ॥
क्या सुदर करती गुण गान । सुन जिन नाम टलें सब मान ॥

दो.— देख रामको भीलनी, हर्षित हुई अपार ।
चरणों में आकर गिरी, सबको किया जुहार ॥
एक वृक्ष तले बैठा करके, फिर पानी उन्हे पिलाया है ।
जो चुनकर रक्खे थे पहिले, बेरोंपर हाथ जमाया है ॥
मीठों की परीक्षा कारण कुछ, निज दांतोसे काटती थी ।
फिर छांट छांट अच्छे अच्छे, सीयाराम लखन को बांटती थी ॥

दो.— सादर प्रेम के वह बेर खा, मिला अपूर्व स्वाद ।
जनता को वह प्रेम सब, आज तलक है याद ॥

चौ— वह बेर नहीं एक अमृत था, सब तीन लोकमें बढ़ करके ।
शुभ है पाचों रस दुनियां में, पर इनमें था बढ चढ़ करके ॥
अब बाप बेटे में नफरत है, तो औरो से फिर प्रेम कहां ।
एक दूजे में जहां प्रेम नहीं, वहां वर्तेगा सुख क्षेत्र कहां ॥
जो दशा आज भारत की है, किसी बुद्धिमान् से छिपी नही ।
चोटों पर चोटें सहते है, फिर भी हैं आखों मिची हुई ॥

दो— पा करके मानुष्य तन, करो जरा कुछ ख्याल ।
अन्त सभी तजना पडे, परिजन तन धन माल ॥

गाना नं० ३७ (जनता को उद्बोधन)

तर्ज-खिदमते खल्क में जो कि मर जायगें:—

करके नेकी जो दुनियां में मर जायगें ।
यहां अमर नाम अपना, वह कर जायगें ॥ टेर
उठो भारत वीरो, कमर कस के अपनी ।
तजो नकली माला, तजो नकली जपनी ।
करो पुण्य दुःख सारे, टर जायगे ॥ १ ॥
रहो प्रेम से आप, हिल मिल के सारे ।
करो संप धारण तो, हों वारे न्यारे ।
नही द्वेपानल में, ही जर जायेगें ॥ २ ॥
यह चारो वर्ण का, मनुष्य तन समुह है ।
करो प्रेम सबसे बढे, पुण्य समुह है ।
नही सच्चे मोती, बिखर जायगें ॥ ३ ॥
पतित हो के अपने, ही घातक बनेगें ।
धर्म अपवर्ग के भी, बाधक बनेगें ।
शत्रु बन कर म्लेच्छों के घर जायेंगे ॥ ४ ॥
इस समय क्या सदा से कहा धर्म ये ही ।
करो मैत्री सब से है सद्धर्म ये ही ।
'शुक्ल' काम सारे ही सर जायगे ॥ ५ ॥

दो — भारतवासी तुम इसे, सोचो हृदयमांय ।
श्रीराम भीलनी को, उधर यों बोले हर्षाय ॥

दो (राम) कहां तेरा पतिदेव है, और सभी परिवार ।
क्या नाम आपका भीलनी, मिला धर्म कहां सार ॥
दो (भीलनी) सम्बन्ध नही कुछ पति से, सम्बन्धी दिये छोड ।
नाम उर्ध्वमिका है मेरा, मन सबसे लिया मोड ॥

परोपकारी मिला मुनि, जिन को मैं मारन धाई थी।
हानी न उसको पहुचा सकी निजशक्ति सभी लगाई थी॥
फिर महापुरुष निर्ग्रन्थ मुनिने, मुझे अपूर्व ज्ञान दिया।
जो आत्म का कल्याण करे, सम्यक्त्व रत्न यह दान दिया॥

दो. (भीलनी) अरिहंत सिद्ध आचार्य, उपाध्याय मुनिराज।
गुण इनका हृदय धरो, महामुनि सिरताज॥
शरणा भी उत्तम बतलाया, अरिहन्त सिद्ध साधु जनका।
वचन कायको शुद्ध करो, और पाप हरो अपने मनका॥
मत मारो निरपराधी को, प्राणी मात्र पर दया करो।
चोरी जारी जुआ मदिरा, अभक्ष्य मासको परिहरो॥
नित्य ध्यान करो अपने हक पर, यह धर्म मुख्य है आत्म का।
बाकी स्वप्ने की माया है, नित्य ध्यान धरो परमात्म का॥
मैत्री भाव रखो सबपर, गुणियों का आदर भाव करो।
कृपा करो दुर्बल जीवों पर, विपरीत पे माध्यस्थ भावधरो॥

दो— आत्म शुद्धि के लिये, जपा करो यह जाप।
सोऽहं सोऽहं जपन से, कटे दुष्ट सब पाप॥

पृथ्वी पानी वायु अग्नि क्या, वनस्पति सोहं सोहं।
तिर्यंच नारकी देवगति, सोहं सोहं सोहं सोहं॥

जलचर थलचर खेचर उरपर, भुजपर जाति सोहं सोहं।
नर जन्म अनन्ति वार मिला, नही मिली सुमति सोहं सोहं॥
सच्चिदानंद जो परमात्म, सोहं सोहं सोहं सोहं।
कर्मान्तर फक्त है पडा हुआ, सोहं सोहं सोहं सोहं॥
पुण्य सहायक आत्म का, निर्जरा फेर हो कर्मों की।
सम्यक्त्व शुद्ध जब आ जावे, निवृत्ति होय सब कर्मों की॥

सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र, जब शुद्ध जीव के होते हैं ।
बारूद क्या दण्ड रत्न वत् बन. कर्मों के वंश को खोते है ॥
बस लीन जाप में हो जावो, यह मत्र है आनंद पानेका ।
कर्तव्य न छोड कभी अपना, यह समय फेर नहीं आने का ॥
अब चलते है अय भीलनी हम, किसी और को जा समझायेगें ।
या 'शुक्ल' ध्यान में लीन बने, निज आत्मध्यान लगायेगें ॥
देकर शुभ ज्ञानामृत मुझको, वह महा तपस्वी चले गये ।
तब शस्त्र फैंक दिये मैंने, जब दुष्ट भाव सब चले गये ॥

दो.— सदुपदेश देकर मुनि, कर गये उग्र विहार ।
उस दिन से मुझको, प्रभु मिला यह शोभन ज्ञान ॥
जब मैंने निज सबंधी जन को, यह शोभन उपदेश दिया ।
किन्तु कर्मोदय से सबने, उल्टा ही उपदेश लिया ॥
मुझ को पगली कह कह कर, सम्बन्ध सभी ने छोड दिया ।
और भारी कर्मी समझ उन्हे, मैंने निजमन,को मोड लिया ॥
किसी आये गये मुसाफिर को, मैं सावधान कर देती हूं ।
पुरुषार्थ करके अपना यह मैं, उदर नित्य भर लेती हूं ॥
और नही कुछ धर्म बने, यह जन्म वृथा ही जाता है ।
क्या खबर कर्म कब छूटेगें, ये ही दु ख मुझे सताता है ॥

दो — अपना जो वृतान्त था, सद्दोप से दिया बताय ।
औदार चित्त प्रसन्न हो, यों बोलें रघुराय ॥

दो (राम) अब से नाम सुधर्मिका, तेरा गुण संपन्न ।
सार धर्म धारण किया, तेरा जन्म सुधन्य ॥

दो (राम) भक्ति ही संसार में, करे भवोदधिपार ।
वह नवधा भक्ति तुम्हें बतलाते है सार ॥

नवधा भक्ति- (श्री रामचन्द्र का भीलनी को उपदेश देना)

चौपाई- प्रथम साधु शक्ति सुखदानी। विनय सहित भक्ति मुख्यमानी ॥
सुविनय मूल धर्म का माना। यही मोक्ष का पथ वखाना ॥
द्वितीय पढो सर्वज्ञ की वानी। अथवा शास्त्र कथा सुनो कानी ॥
सम्यग्ज्ञान दर्शचारित्र। इससे करो निज जन्म पवित्र ॥
देवगुरु धर्मशास्त्र में प्रेम। निष्कपट भक्ति तृतीये शुभ नेम ॥
आश्रव रोक संवर को धारो। पुण्य ग्रहण कर पाप निवारो ॥
उत्तम चौथी भक्ति पहिचानों। आत्मतुल्य सभी को जानो ॥
शरणे उत्तम चार बताये। इसमें पंच परमेष्ठी समाये ॥
दृढ विश्वास रक्खो मनमांही। पचम भक्ति कही सुखदाई ॥
गृहस्थ धर्म बारह वतलाये। नित्य कर्म जिनके मनभाये ॥
अतिथि संविभाग मुनिजन सेवा। अष्टम भक्ति आत्मसुख देवा ॥
आत्म में जग नाटक देखो। सोहं सोहं कर निज लेखो ॥
परमात्म सम इसको मानो। कर्म मैल का अन्तर जानो ॥
सच्चिदानद रूप अविनाशी। आप्त कथित शास्त्रमें भाषी ॥
सप्तम भक्ति यह कही अनूप, जानो इस विध आत्म स्वरूप ॥
जो आत्म सन्तोष उसीमें, राग न द्वेष न मोह किसीमें ॥
मान अरु माया लोभ से डरना, परहित जीना परहित मरना ॥
देश धर्म हित अर्पण करना, लो अष्टम भक्ति का शरणा ॥
मन वच काय सरल वरताओ, विषम भोगी कभी भूल न लावो ॥
सत्य धर्म लिये शीस चढाओ, निर्मल श्रेणीपर चढ जाओ ॥
करुणा भाव हृदयमें लाओ, परहित कारण प्राण लगाओ ॥
नवमी भक्ति इस विधमानो, शोभन पंथ मुक्ति का जानो ॥

दो.— नवधा भक्ति सुन हुई, सुधर्मिका खुशी अपार।
पुण्य उदय से कर लिये, सभी वचन स्वीकार ॥

श्री रामचन्द्रजी जब हुवे, चलने को तैयार ।
कहन लगे यो भीलनी,-सें मृदु वचन उचार ॥

दो (राम)-वालीखिल्य नृपका पता, यदि तुम्हें कुछ होय ।
तो हमको बतलाइये, पुण्य तुम्हें स्वच्छ होय ॥

दो. (भीलनी) पन्द्रह सोलह सालकी, पूछी आपने बात ।
वालीखिल्य नृप कैदमें, रहता है दिनरात ॥
किन्तु मुश्किल है महाराज, वालीखिल्य को छुडवाना भी ।
नृप वालीखिल्य को वहां पीसना, पडता है कुछ दाना भी ॥
चोरोंने वालीखिल्य नृप से, यह अपनी रडक निकाली है ।
एक इसका ही क्या जिकर करें, कइयो पर विपदा डाली है ॥

दो — परोपकारी चल दिये, विपमस्थल की ओर ।
चलने को तैयार थे, उधर महाभट चोर ॥
राम जिधर को जा रहे, कंटक तरू अति भूर ।
रस्ता न कोई मिले, जाते मार्ग चूर ॥
शकुन अपशकुन गिनते नही, गिने न वाट कुवाट ।
दुर्वल को यह सोच है, बलिजन को उज्जड बाट ॥
सेना चोरों की प्रबल, शूर वीर बलवान ।
देश लूटने को चले, मिले सामने आन ॥
देख सिया का रूप तरुण, सेनापति हुक्म सुनाता है ।
देखो हीरे का टुकडा यह आज सामने आता है ॥
अतुल अनुपम रूप हमें, यह जगदम्बा ने भेजा है ।
राज खजाने तुच्छ सभी बस, येही जान कलेजा है ॥

दो.— आज्ञा पाते ही कई, बढे अगाडी शूर ।
हंसते हंसते जा रहे, दिल में अति गरूर ॥

जा पहुचे जब पास राम के, झट शस्त्र चमकाये हैं ।
उधर राम लक्ष्मण ने भी, निज धनुपबाण कर उठाये हैं ॥
तब कहे अनुज हे भ्रात रहो, तुम सिया पास हुश्यारी से ।
करता हू नाश अभी इनको, ज्वाला को जैसे वारि से ॥

दो— आज्ञा पा श्रीराम की, लक्ष्मण बढे अगार ।
धनुष प्रत्यचा खैंचकर, किया एक टंकार ॥

चौ— किया धनुष्य टंकार अनुजने, मानों बिजली कडक पडी ।
हो गये अधीर सभी शत्रु, चोरों की सेना धडक पडी ॥
सैनापति सामंत सहित, यह हाल देख रहे खडे खडे ।
फिर डाल दिये हथियार सभी, कर जोड राम के शरण पडे ॥

दो (दस्यु सेनापति)-प्राक्रम से अज्ञात था, मुझे कीजिये माफ ।
हाल सभी सुन लीजिये, कहु जी बीती साफ ॥
कौशाम्बी नगरी भली, वैश्वानर पितु जान ।
सावित्री माता मेरी, आगे सुनो बयान ॥
नाम है मेरा रूद्र देव, करता कर्म करूर ।
खोटी संगत मे लगा, बाजे अपयश तूर ॥
चोरी करता पकड मुझे, नृप ने शूली का हुक्म दिया ।
महापापी है यह मरने दो, नहीं जरा किसी ने तरस किया ॥
तब एक पुरुष धर्मी ने आकर, मेरी जान बचाई थी ।
कोई दुष्ट काम फिर न करना, यह भी शिक्षा समझाई थी ॥

दो (,,) जान बचा कर मैं भगा, मिला न कही सुधाम ।
दौड भाग पाया इ नी, पल्ली में विश्राम ॥
पल्लीपति अब मैं हुआ, तेज प्रताप प्रचड ।
कोई न आवे सामने, वरते आन अखड ॥

मैं इस फन का ज्ञाता पूर्ण, नही काबू में आ सकता हू ।
एक सिवा आपके नही किसी को खातिर में ला सकता हू ।।
अब चरणों में आ गिरा प्रभु, शरणागत को माफी दीजे ।
बन चुका आपका दास कोई, सेवा मुझको काफी दीजे ।।

दो.— नम्र निवेदन सेनानी का, सुना जिस समय राम ।
औदार चित्त गंभीर नर, यों बोले सुखधाम ।।
छोडो तुम बालीखिल्य नृप को, यह पहला कथन हमारा है ।
अन्याय कार्य तजो सभी, इसमें ही भला तुम्हारा है ।।
बालीखिल्य को छुडवाकर, कुबेर नगर भिजवाया है ।
जहा हुआ विरह दु ख दूर खुशी का मानो बादल छाया है ।।
उस तर्फ खुशी में सब प्रजा, इस तर्फ राम समझाते हैं ।
और हटा पाप से चौरों को, फिर आगे कदम बढाते हैं ।।
बस महापुरुष है सदा वही, जो औरों का हित करते है ।
यदि धर्म हेत कहीं पडे काम, तो मरने से नहीं डरते है ।।

दो.— विंध्य अरवी अति क्रमी, और तजे कई ग्राम ।
तापी नदी का तट जहा, वहां पहुंचे श्रीराम ।।
,, नदी पार आगे मिला, अरुण नाम एक ग्राम ।
निर्लज्ज निर्धन और अति, दुःखी लोक वसें उस धाम ।।
,, सुशर्मा सुखदायिनी, विप्राणी गुणखान ।
कोकिल वाणी मधुरता, वसुधा करे बखान ।।

दो. नौ–तृषातुर सीता हुई, पहुंचे उसके स्थान ।
आदर दे अति ब्राह्मणी, करवाया जलपान ।।
चौ नौ–करवाया जलपान प्रेम से, आसन बिछा रही है ।
करो यहां विश्राम क्योंकि, तबीयत घबराय रही है ।।

बियाबान चहुं ओर सहज, नही पानी मिले कही है ।
जो कुछ इच्छा करूं सभी, हाजिर यह वात रही है ॥

दौड— उधर से ब्राह्मण आया, देख गुस्सा तन छाया ।
पड़ा मस्तक पर बल है, विप्राणी से लगा कहन
विप्र बन भूत शकल है ॥

दो. नौ. (ब्राह्मण)–मति हीन तेरी हुई, तज दई आन और शर्म ॥
धर्म भ्रष्ट सब कर दिया, अग्नि होत्र सुकर्म ॥

चौ नौ (ब्राह्मण)–अग्नि होत्र सुकर्म सभी, फल पानी बीच वहाया ।
जात पात की खबर नहीं, घर में यह कौन बैठाया ॥
सब अपवित्र हो गये वर्तन, क्यों पानी इन्हे पिलाया ।
फूटे मेरे भाग्य तेरे सग, जिस दिन व्याह कराया ॥

दौड — निकल जा मेरे घरसे, उड़ादूं सिरको धडसे ।
तेरा सिर चकराया है, वलती ले लडकी चूल्हें से
मारन को धाया है ॥

छ -- ब्राह्मणी भयभीत हो, सीता की शरण में आ गई ।
आगे सिया हो गई खडी, पीछे उसे बैठा लई ॥
दुष्ट फिर भी न टला, सीता लगी दिलमें कांपने ।
देख हाल अनुज यह, आकर खडा हुआ सामने ॥
लक्ष्मण ने समझाया बहुत, माना नही चाडाल है ।
लखन का भी हो गया फिर, गुस्से से चेहरा लाल है ॥
पकड़ कर ऊपर उठा, करके किया उपहास्य है ।
भयभीत होकर के महा, विप्रने पाई त्रास है ॥

दो — रोने के सुनकर शब्द, आ पहुचे नरनार ।
भेद समझ देने लगे, विप्र को धिक्कार ॥

(ग्रा नि)-फिर बोले दोष क्षमा करदो, इस विप्रकी नादानी का।
कहीं नही दूसरा मनुष्य कोई, क्रोधी है इसकी शानी का॥
देकर विश्राम पिलाया पानी, कौन दोष विप्राणी का।
है आदत से लाचार करो मत गिला जरा अज्ञानी का॥

दो.— छुड़ा दिया श्री रामने, करुणा दिल में धार।
फिर आगे को चल दिये, पहुचे वन मझार॥
अब दूसरी अटवी में आये, घनघोर भयानक भारी है।
आषाढ महिना लगते ही, जहा लगा बरसने वारी है॥
एक वट का वृक्ष विशाल देख, श्री रामने आसन लाया है।
श्री राम लखन का तेज देख, वटवासी सुर घबराया है॥

दो — वटवासी वहा देवता, पाया मन में त्रास।
यक्षों के सरदार ये, गया छोड निजवास॥
इम्भकर्ण यक्ष के पास पहुच कर, सारी व्यथा सुनाता है।
बोला तीन मनुष्य है जिनका तेज सहा नही जाता है॥
तब इम्भकर्ण ने अवधि ज्ञान से, सभी हाल पहिचाना है।
फिर कह देव को भाग्यहीन, तैंने नही कुछ भी जाना है॥

दो (इम्भकर्ण) सूर्यवंश कुल मणि मुकुट, दशरथ के सुकुमार।
पूर्व पुण्य अनुसार यह जन्मे कर्मावतार॥
वासुदेव बलदेव अष्टम यह, रामचन्द्र और लक्ष्मण है।
पुण्यवान् यह महा पुरुष और नही किसी के दुश्मन है॥
सेवा न कुछ करी पाहुने, घर में आये चाह कर के।
अब चलो चलें हम भी सेवा, तुम करो वहा पर जा करके॥

दो — सामायिक करके राम यहां, करने लगे विश्राम।
देवों ने आ रात को, रचना करी तमाम॥

पुरी अयोध्या के मानिंद, एक नगरी वहां बसाई है ।
लबी चौडी विस्तार सहित, अति शोभनीय सुखदाई है ॥
कोट महल क्या बाग बडा, बाजार है माल दुकानों में ।
नाचरंग स्वर मधुर गायन के, शब्द पडे आ कानो में ॥
बाग बगीचे चहुं ओर, फल फुलो में यौवन टपक रहा ।
क्या करें कथन उस पतन, का सुरपुर की मानिंद चय कर रहा ॥

दो.— रजनी में रचना करी, देवामनसा काम ।
दरवाजे जहा चार है, राम पुरी अभिराम ॥
मंगल शब्द सुहावने, जिस दम सुने नरेश ।
बस्ती अद्भुत देखकर, आश्चर्य सुविशेष ॥

छ — विचार तब मन में उठा, क्या ? माजरा नायाब है ।
सो रहे या जागते, या आ रहा कोई ख्वाब है ॥
सोये थे हम तो अरण्य में ? आती नजर क्यों अवध है ।
रूप रग सब नगर के, पडता सुनाई शब्द है ॥
इतने में सम्मुख आ खडा, वर यक्ष वीणा धारके ।
देख विस्मित राम को, यों बोला सुर उचार के ॥

दो. (इम्भकर्ण)—नाथ यह सब मैंने रचा, महल नगर आवास ।
इम्भकर्ण वर यक्ष हू, तुम चरणों का दास ॥
पुण्यवान् का पुण्य साथ, जगलमें मंगल होता है ।
पुण्यहीन को मिले न कुछ, नगरों में फिरता रोता है ॥
यक्ष करें जिनकी सेवा, सब पूर्व पुण्य फल पाया है ।
और इस जंगल में कपिल विप्रभी, समिधा लेनें आया है ॥

दो.— सहसा एक तौफान ने, विप्र लिया उडाय ।
देव कृत जो नगर था, डाला वहां पर जाय ॥

यहां नूतन नगरी देख विप्रको, आश्चर्य अति आया है।
यदि मिले कोई पूछे उससे, मनमें यह भाव समाया है॥
एक यक्षणी नारी रूप में, नजर सामने आई है।
फिर पास गया विप्र उसके, मनकी सव कथा सुनाई है॥

दो. (कपिल)–क्या तुमको भी कही से, उठा लाया तूफान।
या इस नूतन नगर में, है तेरा स्थान॥

दो.— कहे यक्षाणी विप्रसे, यह वन खंड उद्यान।
इम्भकरण वर यक्षने, नगर वसाया आन॥

दो (यक्षणी) देव करी रचना सभी, वास वसे श्रीराम।
करे याचना जो कोई, देते वांछित दाम॥
याचक को बादल समान, कंचन श्रीराम वरसते है।
तव कहे विप्र हम है गरीव, पैसे के लिये तरसते है॥
तू वता किस तरह नगरी में जाऊ और दान मिले मुझको।
यदि इच्छा हो पूर्ण मेरी, खुश हो आशीस देऊ तुझको॥

दो (.,) यक्षों का पहिरा यहा, नगरी क्या उद्यान।
बिना सहायता के कोई, धस नही सकता आन॥
यक्ष देव रक्षा करते, फिर कौन वहा जा सक्ता है।
हा परमेष्ठी मंत्र जो जाने, वही फल पा सकता है॥
यदि हो वारह व्रत का धारी, फिर तो कहने की वात ही क्या।
इन्द्र भी नही रोक सकता, फिर और की पारवसाती क्या॥

दो — विप्र गया जहां मुनि थे, प्रथम नमाया माथ।
नमोकार मंत्र धारण किया, गृहस्थ धर्म के साथ॥
संग विप्राणी को दिला देशव्रत रामपुरी में आया है।
सियाराम लखन को देख विप्र मनही मन अति शर्माया है॥

फिर बोले लक्ष्मण कहो विप्र ! कैसे आदर्श दिखाये है ?।
देकर आशीस ब्राह्मण बोला, बस शरण आपकी आये हैं ॥

दो.— मन वाञ्छित श्रीरामने, दिया विप्रको दान ।
खुश हो विप्रने किया, निज मुख से गुणगान ॥
खुशी खुशी निज ग्राम गया, ब्राह्मण समृद्धि पा करके ।
जहां भोगे सुख अनेक धर्म, सध्या में ध्यान जमा करके ॥
फिर सोचा किचित् किया, धर्म जिसने यह कष्ट निवारा है ।
सम्पूर्ण धर्म यदि ग्रहण करे, तो खुल्ला मोक्ष द्वारा है ॥

दो.— समझ लिया संसार में, है सब वस्तु निस्सार ।
संयम बिन होगा नही, आतम का उद्धार ॥
तजा सभी ससार धार, संयम निज आतम काज किया ।
उस तरफ राम सिया लक्ष्मणने, वहां ही पूरा चौमासा किया ॥
जब चलने को तैयार हुवे, फिर यक्ष वहा पर आया है ।
एक स्वय प्रभ नामा हार देवने, राम को भेंट चढाया है ॥
रत्न जडित कुडल जोडा, श्री लक्ष्मण को शोभाता है ।
और चूडामणि सिया के मस्तक, ऊपर चमक दिखाता है ॥
वर वीणा चौथी दई देवने, इच्छित राग मिले जिससे ।
सब साज सहित अद्भुत, गुणदायक आर्ति दूर हटे जिससे ॥

दो. नौ.–पुण्यवान् जहा पर बसें, मिले समागम आय ।
श्रीराम आगे वढे, नगर गया विलाय ॥

चौ. नौ.–नगर गया विरलाय, सफर दर सफर रोज जारी है ।
करें वहां विश्राम जहा, थकती सीता प्यारी है ॥
विजय पुरी के जगल में, बट वृक्ष एक भारी है ।
करें यही विश्राम यही, इच्छा दिलमें धारी है ॥

दौड— देख छाया खुश मन है, खिला जैसे गुलशन है।
नगर में अनुज पठाया, जो कुछ थी इच्छा सबही
खाना पीना ले आया ॥

दो.— भोजन कर श्री रामजी, बैठ आसन लाय।
शोभा अद्भुत वट वृक्षकी, सोच रहे मन मांय ॥

यह वृक्ष विशाल अनुपम है, वल्ली भूमि पर लटक रही।
है चहुं ओर दाढी जिसके, कुछ गडी धरण कुछ चिपट रही ॥

या गृह के मानिन्द बना हुआ, और वडी दूर तक छाया है।
एक पास सरोवर भरा हुआ, निर्मल जल अति सोभाया है ॥
जब सूर्य अस्ताचल पहुचा, श्रीराम ने सध्या ध्यान किया।
आ गया समय जब निद्राका, निज निज आसन विश्राम किया ॥
लक्ष्मण जाग रहा पहरे पर, अतुल वीर वलधारी है।
अब विजय नगर का हाल सुनो, जिसका सबध आगारी है ॥

गाना-नं० ३८ (बनमाला कुमारी का वर्णन) (कव्वाली)

महीधर नाम राजा का, विजयपुर राजधानी थी।
सुता का नाम वनमाला, रूप में जो इन्द्राणी थी ॥ १ ॥
सुनी शोभा थी लक्ष्मण की, बालपन से ही लडकीने।
पति इस जन्म का लक्ष्मण, यही दिल बीच ठानी थी ॥ २ ॥
भेद रानी के द्वारा सब, मिला पुत्री का राजा को।
ठीक है लखन संग शादी, यही सब दिल समानी थी ॥ ३ ॥
राम लक्ष्मण गये वन मे, सुना जब हाल राजाने।
लगा ब्याहने पुरेन्द्र नृप को, चढ़ती जवानी थी ॥ ४ ॥
लगी सोचन वह बनमाला, करूं न और संग शादी।
बसा लक्ष्मण ही था मनमें, तृण सम जिदगानी थी ॥ ५ ॥

छ — इन्द्रपुर पुरेन्द्र भूप से, व्याहने की नृप मशा करी ।
लक्ष्मण बिना व्याहुं नही, पुत्रीने यह मनमें धरी ॥
जिसको दिया न्यौता पिताने, एक दिन वह आयगा ।
क्या बनाऊगी मैं फिर, यह धर्म मेरा जायगा ॥

इससे अच्छा प्राण अपने, खत्म पहिले ही करू ।
जगल में जा वट वृक्ष ऊपर, ला गले फासी मरू ॥

रात को ले हाथ में, सामान महलों से चली ।
पास पहुची वृक्ष के तो, कौमुदी रजनी खिली ॥
तल्लीन थी निज ध्यान में, कुछ भी नजर आता नही ।
थे अतुल सुख सब तुच्छ, लक्ष्मण के बिना भाता नही ॥

चौपाई- रामसिया निद्रागत सोवें । लक्ष्मण जागे दसो दिस जोवें ॥
देखी लक्ष्मण राजदुलारी । चन्द्र वदन मुख रूप अपारी ॥

दो — लक्ष्मण मन में सोचता, रूप नारीका खास ।
या वनकी देवी कोई, बटपर जिसका वास ॥

(लक्ष्मण) है सच्चे मोती हेम जवाहिर, से पौशाक जडी सारी ।
थी रवि कीरणों के मानिद, मस्तक पर शोभन उजियारी ॥
यह क्या कोई विजली टूट पडी, जो नही समाई अबर में ।
मानिन्द सिया के आकृति, जैसे थी खास स्वयंवर में ॥

वह शशि एक तो चढा व्योम, दूजा जल में प्रतिबिब पडा ।
दोनों को इसने मात किया, मैं देख रहा हूं खडा खडा ॥

अनमोल गौल बिन्दी मस्तक पर, अपनी चमक दिखाती है ।
क्या साचे में है ढला जिस्म, इन्द्राणी भी शरमाती है ॥

दो — वनमाला बट पर चढी, पीछे लक्ष्मण लाल ।
जो भी कुछ करने लगी, देख रहा सब हाल ॥

वाधा रस्सा वट टहनी को, कर फासी आकार।
वनमाला कहने लगी, स्वर कुछ मन्द उचार ॥
विना सुमित्रानन्द के, सभी पिता और भ्रात।
अव न तो परभव मिले, करती हूं निजघात ॥

चौ. (,,)मैं सिवा लखण न वरूं और को, अपने प्राण गंवाती हूं।
परणावे पिता खास इन्द्र को, उस को भी नही चाहती हूं ॥
कौन चीज फिर अन्य मनुष्य, इस कारण फासी खाती हूं।
इच्छा नही मुझको जीने की, इस तन की वली चढाती हूं ॥

दो.— पाश गले मे डाल कर मरने को हुई तैयार।
तुरत आन लक्ष्मण ग्रही, वोले वचन उचार ॥

चौ (लक्ष्मण)-जिसकी इच्छा तुझे भामिनी, वही खडा सामने तेरे है।
कर्तव्य तेरा कायर पन का, विल्कुल पसंद न मेरे है ॥
देख मनुष्य को चमक पडी, किसने आ फासी खोली है।
कोई नकली बना समझ लक्ष्मण, वनमाला ऐसे वोली है ॥

दो. (बनमाला)-कौन यहां तू छिप रहा, आन किया मोहे तग।
इस असली रंग वे तेरा, चढे न नकली रग ॥

चौ (,,)चढे न नकली रंग, खडा क्यो वातें वना रहा है।
चले न तेरे दम गज्जे, क्या पट्टी पढा रहा है ॥
बनवास गये है राम लखन, किस को बहकाय रहा है।
जली हुई को मुझे कौन तू, आकर जला रहा है ॥

दो — प्रणहित मरना ठाना है, तुच्छ यह प्राण जाना है।
नही त्यागूंगी निश्चय अपना, शील धर्म के सिवा नही
मुझ कोई भी शरणा ॥

दो (बनमाला)-अलग जरा हट जाइये, मुझे नही कुछ होश।
फासी लेने दीजिये, रहें आप खामोश ॥

गाना नं ३९ (वनमाला का लक्ष्मण को कहना)

न छेडो मुझे मैं, सताई हुई हू ।
तपे जिगर से दिल, जलाई हुई हू ॥ १ ॥
तुझे जिसकी चाहना, नहीं वह यहां पर ।
यह मुर्दा जिस्म, मैं उठाई हुई हूं ॥ २ ॥
जावो यहा से न, हम को सतावो ।
रंजो गम अलम् की, दुखाई हुई हू ॥ ३ ॥
लई जिस पे फांसी, सभी सुख तजे हैं ।
उसी गुलसे लौ मैं, लगाई हुई हू ॥ ४ ॥
इसी में खुशी हूं, तजू मैं जिस्म को ।
अदम के इरादे पे, आई हुई हू ॥ ५ ॥
करो गर कलम सर, तो अहसान मानू ।
यह लो मैं तो सिर को, झुकाई हुई हूं ॥ ६ ॥

दो नौं (लक्ष्मण)-गुण माला तू किस, लिये होती है बेजार ।
मैं लक्ष्मण वह सो रहे, राम और सिया नार ॥

चौ नौ (लक्ष्मण)-रामचद्र सिया नार हमी तीनों वन को जाते हैं ।
यदि नहीं विश्वास, देखलो तुम को दिखलाते है ॥
नामांकित मुद्रिका पढलो, तुम खुद ही समझाते है ।
निश्चय कर लो सूर्य वशी, क्षत्रिय कहलाते है ॥

दौड— सिया के दर्शन पाओ, उतर अब नीचे आओ ।
सुमित्रा का जाया हू, सेवा करने मैं भाइ के
सग वन में आया हू ॥

दो — लक्ष्मण के ऐसे सुने, वनमालाने बैन ।
परीक्षा कारण देखने, लगी उठाकर नैन ॥

दृष्टि झट झुकगई नीचे को. मानिन्द रवि के तेज बडा।
शुभ थे वतीस सभी लक्षण, और शूर वीर अति तना खडा॥
वनमाला किया विचार नही, कोई और इन्हो की शानी की।
और नामांकित मुद्री पढ कर, फिर दर्श किया सिया रानी का॥

दो.— खुली आख सियाराम की, देखी मनमुख नार।
लक्ष्मण ने फिर कह दिया, सभी वात का सार॥

चौ.— सियाराम को प्रसन्नता से, वनमाला शीश झुकाती है।
और अगला पिछला हाल सभी, निज भेद खोल दर्शाती है॥
सन्तोष दिलाकर श्रीरामने, सीता पास वैठाइ है।
अव उधर महल में वनमाला की माता अति घवराई है॥

दो — हा! वनमाला कहां गई रानी रही पुकार।
शोर एक दम से मचा, महलो के मझार॥
सुना हाल जव राजाने, जैसे हृदय में वाण लगा।
सव मारे मारे फिरते है, सेवक कोई महलों फिरे भगा॥
और खडे सिपाही जगह जगह, पल्टन चहुं तर्फी फैल गई।
जुम्मेवारीथी जिन जिन की, उन सवकी तवीयत दहल गई॥
सव फिरे गुप्तचर जगह, अव लगी तलाशी होने को।
और दूर दूर कई दिये भेज, जहां मिले रास्ते टोहने को॥
कुछ सेना निज साथ लई, राजा जगल की और वढा।
वहा पास सरोवर वृक्ष तले, कुछ इष्ट चिन्ह सा नजर पडा॥
थे दो अलवेले शूर एक वैठा, और दूसरा पास खडा।
फिर नजर पडी वनमाला पर जव राजा आगे और वढा॥
वनमाला ही है विश्वास हुआ तो. भूप अति झुंजलाया है।
पकडो इनको आगे वढकर, योद्धों को हुक्म सुनाया है॥

बस चर्म उडा दो मार मार कर, जब तक न सत्य बतावेंगे ।
यह दुष्ट चौर डाकू जन, अपने कर्मो का फल पावेगें ॥
जब सुना भूपका कथन, शूरमा आग बभूका हो रूरे ।
अब समय देखकर अनुज भ्रात भी, नाहर की मानिंद घूरे ॥

दो नौ -बोली की गोली लगी, हुई जिगर के पार ।
लक्ष्मण ललकारे उधर, धनुषबाण करधार ॥

चौ. नौ -धनुषबाण कर धार एकदम, दलमें कूद पडा है ।
घनघोर शब्द टंकार तडित्, सम सुन दल कांप पडा है ॥
लक्ष्मण की शक्ति को राजा, देखे खडा खडा है ।
देखे भागते शूर भूपका, हृदय उछल पडा है ॥

छोड — भूप मनमें घबराया, अश्व पीछे को हटाया ।
भेद लक्ष्मण ने पाया, देख साफ मैदान अनुजने
ऐसे वचन सुनाया ॥

दो.-- ऊंचे स्वर से कह रहे थे, कुछ करो विचार ।
वृथा जोश में आनकर, बढ़ा लई है रार ॥
मैदान में पीठ दिखा जाना, यह क्षत्रापन का धर्म नहीं ।
क्या बनमाला क्या हम है, तुमने जाना कुछ भी मर्म नही ॥
अपशब्द जबां से कह डाले, क्या आई तुमको शर्म नही ।
अंधे बने क्रोधानल में, और पाया कुछ भी मर्म नही ॥
पीठ दिखाकर क्षत्रापन क्यो, पानी बीच बहाते हो ।
वह चीज नहीं कुछ तोप किले, जिनपर तुम जाना चाहते हो॥
लेने आये थे बनमाला, उसको भी आप विसार चले ।
कुछ बचा हुआ जो गौरव था, वह आज धूर में डार चले ॥
इस बनमाला को ले जाओ, हम आपकी इज्जत चाहते है ।
मत घबराओ अब खडे रहो, हम निर्भय तुम्हें बनाते है ॥

अपशब्द सहित यह बतलाओ, किसको तलवार दिखाई है।
जो दशरथ नंदन रामचन्द्र का लक्ष्मण छोटा भाई है ॥

दो.— सियाराम और लखन है, सुने भूपने बैन ।
फेंक दिये हथियार सब, लगे इस तरह कहन ॥
प्रभु आप है मुझको ज्ञात नही, सब दोष क्षमा अब करदीजे।
गंभीर आप शक्तिशाली, अपशब्द मेरे सब जर लीजे ॥
मैं आज महा प्रसन्न हुआ, क्योंकि मन वाञ्छित योग मिला।
यह राज पाट सब आपका है क्या महल खजाना फौज किला ॥

दो.— सीधी दृष्टि जब बने, दुःख सब जाय पलाय ।
रणभूमि में परस्पर, हुआ प्रेम सुखदाय ॥

चौ— बोले लक्ष्मण श्रीरामचन्द्र हैं, दोष क्षमा करने वाले ।
हम तो सेवक उन चरणो के, जो आज्ञा सिर धरने वाले ॥
फिर उसी समय भूपालने जा, श्रीराम को शीश नवाया है।
और विनय सहित अति नम्र होकर, कोमल वचन सुनाया है॥

दो (राजा)-निस्सदेह मैंने किया, आज महा अपराध ।
किन्तु दर्शन आपने, दिये अहो धन्यवाद ॥
क्षमा सभी अपराध करो, फिर आप पधारो महलो में ।
शुभ उत्तम बुद्धि कहां प्रभु, हम जैसे वनचर बैलो में ॥
सब इच्छा पूर्ण हुई मेरी, और प्रतिज्ञा वनमाला की ।
और बीच में जो कुछ विघ्न पडा, यह हुई समय की चालाकी॥

दो (राम)-आपने निज कर्तव्य किया, हमें नही कुछ रोष ।
अनुचित जो इस में हुआ, सब कर्मों का दोष ॥
किन्तु घाव भर जाने पर, पीडा का नाम निशान नही ।
जब दिल में प्रेम उमड आवे, फिर वहां विरोध का काम नही ॥

यह सब दुनियां का चक्र एक, व्यवहार मात्र से चलता है ।
व्यवहार का जो अपमान करे, वही अपने कर मलता है ॥
कभी दृष्टि दोष से हितकारी भी, अरि नजर में पड़ता है ।
उल्टे का सीधा बन जाता, जब पुण्य सितारा चढता है ॥
यह देवी वनमाला बैठी, राजन् अपने संग ले जाओ ।
अब निर्भय हमने किया तुम्हें, कुछ भय न जरा मन में खाओ ॥

दो — तन मन प्रसन्न भूपाल का, सुनकर अमृत बैन ।
हाथ जोड कर नम्र हो, लगा इस तरह कहन ॥

कृपा सिन्धु कृपा निधान अब, गृह को चल कर पावन करें ।
इन शुष्क हृदयों के लिये आप, अमृत बर्षाका सावन करें ॥

अष्टांग ज्योतिषी से चलकर, अब साहेको सुधवाना है ।
फिर लक्ष्मणजी संग, वनमाला का जल्दी विवाह रचाना है ॥

दो — विनती करके ले गया, राज महल में साथ ।
उत्सव नगरी में हुआ, सभी नमावें माथ ॥
सेवा करी राम लक्ष्मण सीता, की और सम्मान दिया ।
रघुकुल दिनेश को सिंहासन पर बैठा कर प्रणाम किया ॥
जब सभा ऐन भरपूर हुई, दर्शक जन दर्शन करते है ।
उस समय 'महीधर' भूपराम, आगे यों गिरा उचरते है ॥

दो. (राजा)-नम्र निवेदन है यही सुनिये कृपा निधान ।
किस दिन होना चाहिये, शादी का सामान ॥
बोले राम सुनो राजन, इस समय विवाह का काम नहीं ।
भ्रमण हमारा बनमें है, और निश्चय कोई धाम नही ॥
इसी समय सब कुछ होगा, जब पुरी अयोध्या आवेगें ।
बस विदा करो अब तो हमको, जहां लगा ध्यान वहां जावेगें ॥

दो.— इतने में एक दूत झट, आया सभा मझार ।
ऐसे महीधर सामने, खोला कथन पिटार ॥

दो. (दूत) क्षत्रिय कुल मणिमुकुट, संकट भंजन हार ।
कृपा सिंधु मेरी करो, नमस्कार स्वीकार ॥
गौरवशाली भूपति, शूर वीर सिरताज ।
विन्ध्या पुरवर नगर से, आया हूं महाराज ॥
अति वीर्य नृपने भेजा, उनका प्रणाम बताता हूं ।
मैं आया हू जिस कारण सारा भेद, खोल समझाता हू ॥
भरत भूप संग रणभूमी में, युद्ध नित्य अति जारी है ।
अवधेश भरत की सेना अब तक, हटी न जरा पिछाडी है ॥
श्री भरत भूप संग भूप बहुत आये कुछ कहा न जाता है ।
जहां युद्ध हो रहा घोर शब्द, सुन फलक जमी लर जाता है ॥
अब दल बल लेकर चलो, भूपने आपको जल्द बुलाया है ।
बस आपके वहा पहुचते ही, होगा निजपक्ष सवाया है ॥

चौपाई (दूत) काम पडे पर करे सहाई, सोही मित्र जगत् के माही ।
विपद समय करे टालमटोला, सो तो पोल ढोल समबोला ॥

दो — मन में सोचा भूपने, बने किस तरह काम ।
हा, ना, कर सकता नही, बैठे लक्ष्मण राम ॥
महीधर पड़ा विचार में, बोल उठे श्रीराम ।
अहो दूत कहो किस लिये, लगा होन संग्राम ॥
कहे दूत महाराज समझ, मेरी में ऐसा आता है ।
नृप अतिवर्य बलवान्, भरत को आन मनाना चाहता है ॥
निर्भय स्वामी बलवान हमारा, भरत भूप कोई चीज नही ।
है देर इन्ही के जाने की, शत्रु का मिलना बीज नही ॥

दो.— बुद्धिमान शत्रु भला, शठ मित्र दु खदाय ।
जैसे नीम से रोग क्षय, प्राण किपाक से जाय ॥

(,,) कहे दूत से महीधर, दलबल कर तैयार ।
आते है जाकर कहो, रण भूमी मंझार ॥

छ.— दूत भेजा उधर को, फिर राम से कहने लगा ।
समझाके आऊ मित्र को, विश्वास यों देने लगा ॥
शठता करी अतिवीर्य ने जो, भरत से झगडा किया ।
वाघने विग्रह का मानों, सिंह को न्योता दिया ॥
मर्म कुछ जाना नही, युद्ध भरत से करने लगा ।
जिनका हू मैं सेवक मदद, मुझ से ही फिर चाहने लगा ॥
जाता हू संधि परस्पर दोनों, की मैं करवाय दू ।
यदि माना नहीं अतिवर्य तो, फिर मान सब गिरवाय दूं ॥
सुन राम बोले बात यह, हम को नहीं मंजूर है ।
सब विकल चित्त बनता वहा, जहां पर बजे रणतूर है ॥

दो (राम)–हम जाते है उस जगह, पुत्र तेरा ले साथ ।
आप कष्ट न कीजिये, है स्पष्ट यह बात ॥
क्या शक्ति थी नट जाने की, झट वचन भूपने मान लिया ।
कुछ सेना रामने कुंमर सहित, ले उसी तर्फ प्रस्थान किया ॥
हम आते है अतिवीर्य को, लक्ष्मणने पत्र पठाया है ।
और नगरी नंदावर्त पास जा, तंबू डेरा लाया है ॥

दो.— देवी उस उद्यान की, कहे राम से आन ।
मुझ को भी कर दीजिये, आज्ञा कोई प्रदान ॥

दो.(राम)–तुम लायक कोई काम न बोले राम नरेश ।
तब देवी कहने लगी, कुछ तो देओ आदेश ॥

दो -(राम) यदि प्रबल इच्छा तेरी तो कर इतना काम।
सेना सब ऐसे लगे, जैसे नार तमाम ॥
दो.— फौज जनानी कर दई, देवीने तत्काल।
आश्चर्य में लीन हो, जो कोई देखें हाल ॥
जब अतिवीर्य ने सुना फौज, आई तो मन हर्षाया है।
और था पूर्ण विश्वास महीधर, मदद हेत खुद आया है ॥
लगा पता फिर थोडी सी कुछ फौज, जनानी भेजी है।
यह देख हाल अतिवार्य भूपको, आई झट अति तेजी है ॥
उपहास्य किया कोई कहे, महीधरने भेजी फौज जनानी है।
विश्वास घात किया कोई कहे, कृतघ्नता दिल मे ठानी है ॥
फिर अतिवीर्यने मंत्री जन को, ऐसा हुक्म सुनाया है।
सब वापिस कर दो सेना, यह क्या दुष्ट ने स्वांग रचाया है ॥
फिर द्वारपालने आकर के, इतने मे अर्ज गुजारी है।
सब फौज जनानी तेजी से, घुम रही नगर मझारी है ॥
घृत सिंचित अग्नि जैसे, एक दम से लपट दिखाती है।
या यों समझो जैसे लकडी, जल भुन कोला बन जाती है ॥
दो — यों जल भून कर भूपाल ने, आज्ञा दी तत्काल।
अर्धचन्द्र धक्का देवो, सब को बाहर निकाल ॥
जब सुभट गये धक्के देने, तो उधर मोर्चा अड़ा खड़ा।
अब लगी लडाई होने वहां, कही शीश और धड कही पडा।
हो रहा घोर संग्राम जहां, राजा हस्ती पर चढ आया है।
उस नारी फौज का देख तेज, अतिवीर्य दिल घबराया है ॥
फिर अतिवीर्य ने ललकार दई, आगे निज कदम बढाये है
अब फैर हौंसला किया शूर में, भूज एकदम आये है।
उधर शूरमा ललकारे, टंकार धनुष्य लक्ष्मण लाया ॥
मैदान छोड सब फौज भगी, नृप लक्ष्मण के काबू आया ॥

छं.— केश पकडे अनुजने, बांधा है मुश्क चढ़ाय के।
जा राम पे हाजिर किया, बाकी भगे घबराय के॥
संकोच माया का किया, देवीने सब नरतन हुवे।
देखे तो क्या श्रीराम लक्ष्मण है, खडे दर्शन हुवे॥
श्रीराम के चरणों में पडा, अतिवीर्य नृप तत्काल है।
बोले क्षमा मुझको करें, सब आपका धनमाल है॥
कुछ ज्ञात मुझको था नही, हे नाथ! तुमही हो खडे।
अन्याय का फल मिल गया, और धूर भी मम सिर पडे॥

दो.— रामचन्द्र कहने लगे, अतिवीर्य सुनबात।
जैसा मुझको भरत है, वैसा तू भी भ्रात॥
क्षमा किया अपराध सभी, अब आगे जरा विचार करो।
तुम भरत भूप से संधी करके, निर्भय अपना राज्य करो॥
अतिवीर्य कहे महाराज सुनो, अब दुनिया से दिल विरक्त हुआ।
अब यौवन गया बुढ़ापा है, तप संयम ध्यान में चित्त हुआ॥

चौपाई- राज विजय रथ सुतको दिया। सिह गुरु पे संयम लिया॥
तज जंजाल हुए मुनिराज। तप जप किया निज आत्मकाज॥

दो.— भरत भूप की आन में, किया विजय रथ राय।
दारुण दु ख सब दूर कर, झगडा दिया मिटाय॥
नृप विजय रथने बहन रतीमाला, लक्ष्मण को परणाई।
और विजय सुन्दरी भगिनी दुसरी, भरत भूप को है व्याही॥
बस फेर वहां से चले राम संग, सेना विजय पुरी आई।
नृप महीधर ने सम्मान किया, बनमाला मन में हर्षाई॥

दो— महीधर से आज्ञा लई, वन जाने की राम।
लक्ष्मण से कहने लगी, सा वनमाला ताम॥

दो. (वनमाला) प्राणदान दातार तुम, अब क्यों तजो निराश।
दासी की यह विनति, चलूं साथ वनवास ॥

छं (वनमाला) है दुःख विरह का अतुल, यह मुझसे सहा नहीं जायगा।
याद कर कर आपकी यह, मन मेरा घबरायगा ॥
सीता की सेवा में करूंगी, तुम करो श्रीराम की।
सोचलें मन में जरा, मैं तो हूं साथिन जान की ॥
बोले अनुज अयि भामिनी! ज्यादा न हठ अब कीजिये।
वापिसी में साथ लेगें मन को तसल्ली दीजिये ॥
समझाय वनमाला को लक्ष्मण, राम आगे को चले।
थकती जहा सीता वहा विश्राम लेते द्रुम तले ॥

दो.— वन खण्ड से आगे बढ़े, क्षेमांजल पुर पास।
उद्यान देख कहने लगे, मिला दृश्य यह खास ॥

चौ— थे बाग जलाशय स्वाभाविक, अद्भुत ही रंग दिखाते है।
क्या यही स्वर्ग का टुकडा है, जो कवि कथन कथ गाते है ॥
उसी जगह विश्राम किया, फल फूल अनुज कुछ लाते है।
फिर संस्कार किया सीताने, सियाराम अनुजने खाये है ॥
जब आहार किया फल फूलों का, नही अन्न की दरकार रही।
तब देख देख खुश होते है, नही मिला दृश्य यह और कही ॥
फिर अनुज राम की आज्ञा पा, नगरी की सैर सिधाया है।
नृप शत्रु दमन की प्रतिज्ञा का, भेद अनुज ने पाया है ॥

छं— भेद सब एक, मनुष्य से श्री अनुज ने पूछा तभी।
वृत्तान्त यह उस पुरुषने, लक्ष्मण को समझाया सभी ॥
शत्रु दमन राजा यहा, शक्ति का न कोई पार है।
भूप है आधीन कई, सबका यही सरदार है ॥

है जित पद्मा पद्मनी, प्रत्यक्ष पुत्री भूप की।
तुलना न कर सकता कोई, उस पुण्य रूप अनूप की ॥
मेरी शक्ति का वार अपने, तन पे सह लेगा कोई।
जित पद्मा मेरी पुत्री को, फिर विवाहेगा वही ॥
आज तक आया न कोई, सहे न को शक्ति भूप की।
मौत के बदले कोई, करता न चाहना रूप की ॥
सुन अनुज लाई चाट, धौंसे पर करी न वार है।
फिर वहा पहुंचे लगा था, खास जहां दरबार है ॥
देखी शोभा अनुज की, बांकी अदांका जवान है।
शत्रु दमन कहने लगा, मुझ को बता तू कौन है ॥
कहे लखन दूत मैं भरत का, स्वामी के आया काम हूं।
प्रतिज्ञा पूरी करने तेरी, आ गया इस धाम हू ॥

दो.— क्रोध भूप को आगया, सुना दूत का नाम।
राजपुत्र बिन और को, विवाहना अनुचित काम ॥
यह होकर दूत भरत का, मेरी पुत्री व्याहने आया है।
तो समझ लिया मैंने अब इसको, काल शीस पर छाया है ॥
अब मारू एक तान शक्ति इसको, परभव पहुचा देऊं।
जो शक्ति इसका नास करे, पहिले वह इसे दिखा देऊ ॥

दो (शत्रु द)-जो शक्ति सहनी पडे, उसको जरा पहिचान।
परभव को पहुचायगी, जिस दम भारी तान ॥

दो (लक्ष्मण)-सह सकता हूं पाच मैं, कौन चीज है एक।
परीक्षा अब कर लीजिये, खड़ा सामने देख ॥

चौ.— फिर क्रोधातुर हो अति भूपने, शक्ति हाथ उठाई है।
और देख सूरत उस लक्ष्मण की जनता सब घबराई है ॥

यह देख वार्ता एकदम सब, लक्ष्मणजी को समझाते है।
और बोली उधर पद्मा पितासे, क्यों इनकी जान गवाते है।।
बस यही हो चुका पति मेरा, इनके संग शादी कर दीजे।
न ब्याहू और किसी को भी, यह शक्ति हाथ से धर दीजे।।
जैसे घी डाला अग्नि में, भूपाल को ऐसे क्रोध चढा।
निज शक्ति लाकर सभी, अनुज पर राजाने प्रहार जड़ा।।
किये दो प्रहार भुजाओं पर, और दो हाथों पर मारे है।
लख आश्चर्य में भूप हुआ, हैरान सभासद सारे है।।
सोचा कि कहता दूत किन्तु यह दूत नजर नही आता है।
यह शक्ति में बलवीर अतुल, जो तनिक नही घबराता है।।

दो.— मन ही मन में भूपको, आश्चर्य हुआ अपार।
और मुस्काता हुआ इस तरह, बोला वचन उचार।।

प्रहार पांचवा अय लड़के, हम तुझे माफ फर्माते है।
तब बोले अनुज क्यो मेरे, क्षत्रीपन को बट्टा लाते है।।
प्रहार पाचवे की नृपने, फिर सरपे चोट लगाई है।
कुछ असर नही हुआ लक्ष्मण पर, यह देख सभा हर्षाई है।।

दो— राज कुमारी ने तुरत, पहिनाई वरमाल।
परणो अब पुत्री मेरी, यो बोले भूपाल।।
अनुज कहे उद्यान में, बैठे है श्रीराम।
सेवक हूं रघुवीर का, करूं बताया काम।।

चौ.— श्रीराम सिया लक्ष्मण है, सुनकर राजा मन में हर्षाया।
फिर विनय सहित तीनों को, अपने महलो के अन्दर लाया।।
अति प्रेम से भोजन करवा कर, भूपति ने प्रेम बढाया है।
फिर आज्ञा ले श्री रामचन्द्रजी, आगे को चल धाया है।।

दो — चलते चलते आगया, वशस्थल गिरी देश ।
वंशस्थल पुर नगर में, पहुचे राम नरेश ॥
नरनारी उस नगर के, देखे सभी उदास ।
पूछा तब श्रीरामने, बुला मनुष्य एक पास ॥

चौ (नर) कहे मनुष्य महाराज रात को, एक शब्द भयानक होता है ।
और साथ एक तुफान चले, वह कष्ट सहा नही जाता है ॥
दिन को यहा श्याम होते, कही और जगह जा सोते है ।
उस महा उपद्रव से नरनारी, बच्चे बूढे रोते हैं ॥

दो.— श्रीरामने लक्ष्मण से कहा, देखो सब रंग ढंग ।
जल्दी आकर के कहो, चलें फेर हम संग ॥

छ — यह कथन सुन श्रीराम का, सुमित्रानन्द देखन को चला ।
दो मुनि आये नजर, कुछ और न वहां पर मिला ॥
लक्ष्मण ने आकर हाल जो, देखा था सब बतला दिया ।
श्रीराम ने मुनियों के जा, चरणों में डेरा ला दिया ॥

दो.— विधि सहित वन्दना करी, पांचो अग नमाय ।
कुछ दूरी पर द्रुमतले, बैठे आसन लाय ॥

चौ.— श्रीराम बजाते है वीणा, लक्ष्मण सुर ताल उच्चार रहे ।
उस जगल मे हो रहा मगल, निजशुक्ल ध्यानमुनि ध्याय रहे ॥
अर्ध रात्रि में अनल प्रभ, सुरने रूप भयकर किया भारी ।
तूफान सहित स्वर शब्द, भयानक करता आ रहा दुःखकारी ॥

दो — मुनियों को देने लिये, दु ख आया वैताल ।
रूप भयानक अति बुरा, जैसे कोपाकाल ॥

चौ.— श्रीराम सिया लक्ष्मण बैठे हैं, पुण्य प्रताप प्रचंढ बडा ।
सुर सह ना सका उस तेजी को, इस कारण उल्टा कदम पडा ॥

शुभ शुक्ल ध्यान शुद्ध होने से, मुनिजन को केवल ज्ञान हुआ।
जहां उत्सव करने सुरपुरसे, देवों का आवागमन हुआ ॥
करके ज्ञानोत्सव देव सब, निज निजस्थान सिधाये हैं।
फिर विधि सहित कर नमस्कार, सियागमने शीश नमाये हैं॥
यों बोले राम कहो भगवान, कारण था कौन उपद्रव का।
कृपया यह सब फरमा दीजे, मिट जावे भ्रम सभी दिल का ॥

दो.— कुल भूषण कहे केवली, सुनिये सभी स्वरूप ।
पद्मिनी नामा नगरी में, विजय पर्वत भूप ॥
अमृत स्वर मतिवन्त दूत, उपयोगा जिसकी नारी थी ।
और उदित मुदित दो पुत्र जिन्हो की रूप कला कुछ न्यारी थी॥
वसुभुति एक मित्र दूतका, उपयोगा पर आशक था ।
वह जाति का था उचवर्ण, मिथ्यामत धर्म उपासक था ॥

दो.(,,)-प्रेमी को कहे प्रेमिका, अमृत स्वर को मार ।
खटका सब मिट जायगा, भोगें सुख अपार ॥
एक दिवस भुपने दूत, काम करने को कही पठाया था।
वसुभुति ने मार्ग में अमृत स्वर, परभव पहुंचाया था॥
फेर अधमने आकर, उपयोगा को यो समझाया है।
तू पुत्रौ को देमार बढे फिरराग, यही मन भाया है ॥
यह लगा पता जब उदित मुदित को, क्रोध वदनमें छाया है।
वसुभुति को परभव पहुंचाने का, सब ढंग रचाया है॥
उदित कुमरने एक समय, वसुभुति परभव पहुंचाया ।
मर इषदानल पल्ली में, वसुभूतिने भील जन्म पाया ॥
वैराग्य भुपको हुआ छोड, संसार ध्यान तप जप लाया।
सब शत्रु मित्र समान मुनिने, तजा क्रोध लालच माया ॥

सग उदित मुदित भी हुवे मुनि, निज आत्म कार्य सारन को।
मार्ग में आ वही भील मिला, मुनिजन को धाया मारन को॥
तब पल्लि पति ने छुडवाया, गुप्तजन मात्र का माना है।
कुछ पल्लि पति और उदित कुमर का, पूर्व हाल सुनाना है॥
जमींदार था जीव उदित का, पल्लि पति वहां पक्षी था।
छुटवाया लुब्धक से जो, इसके भक्षण का आकांक्षी था॥
पक्षी पल्लिपति आन हुआ, अनमोल मनुष्य तन पाया है।
और जैसी संगति मिले बने, वैसा ही मनवच काया है॥
वह कृपक जन्मा उदित आन, और मुदित दूसरा भाई है।
इस कारण अण गारों की, पल्लि पति ने जान बचाई है॥
उदित मुदित ने तप संयम को, आराध किया सथारा है।
महा शुक्र में जा देव हुवे, सुर करते जय जय कारा है॥
जन्मान्तर से वसुभूति भी, नरतन को धार हुआ तापस।
अज्ञान कष्ट जिन किया बहुत, तन में था भरा हुआ तामस॥
मिथ्या मति का था भरमाया, संसार बंधन का हेतु है।
वह उपना ज्योतिष्य चकर में, जा देव धूमवर केतु है॥

दो· (कुलभूषण) अरिष्ट पुरी नगरी भली, प्रियनन्दी भूपाल।
पटरानी पद्मावती, सुन्दर रूप रसाल॥

उदित मुदित नें महाशुक्र तज, पद्मावती के जन्म लिया।
जहां राज्य पाट सुख आन मिला, पूर्व शोभन था कर्म किया॥
श्री रत्न रथ और चित्र रथ, दोनों का नाम कहाया है।
छोटी रानी के उदर धूम केतूने जन्म आ पाया है॥
रखता था, विरोध निज भाइयो से, और अनुधर नाम कहाया है।
रत्न रथ को ताज दे, नृपने सयम ध्यान लगाया है॥

तप जप निर्मल कर राजऋषिने, उच्च देव पद पाया है।
अब सुन लीजे दशरथ नंदन, आगे जो हाल बकाया है॥
श्री प्रभा नाम एक अन्य भूप के, सुन्दर राज दुलारी थी।
अनुधर कहता मुझे विवाह दो, उसको लगी यही बिमारी थी॥
नृपने न विवाही अनुधर को, किसी अन्य भूपको पराणाई।
अब आशा निराशा हुई अनुधर की, मन में अति आर्ति आई॥
फिर लगा उजाड़न देश भूप का क्रोध में अंधा बना हुआ।
शिक्षा न हृदय में धरी किसी की, मान में ऐसा तना हुआ॥
तब पकड एक दिन राजाने निज कैद में उसे ठुकाया था।
फिर रत्न रथ भूपने आकर, उसको तुरत छुडवाया था॥
जा बना तापसी तापस के डेरे, नही घर में आया है।
अशुभ कर्म की चाल सदा, उल्टी श्री जिन फर्माया है॥
प्रमाद महाशत्रु आतम को सदा महा दुःख देता है।
और सम्यक्त्व धारी जीव कोई, शुद्ध ज्ञान चारित्र लेता है॥

दो. (कुल)-बाल कष्ट वहां पर किया, फेर भ्रमा संसार।
कभी पशु कभी नर्कमें, फिर तापस अवतार॥
अज्ञान कष्ट महा तप किया, करी कुगुरू की सेव।
मर हुआ ज्योतिषी देवता, अनल प्रभसो देव॥

चौ (,,)-उधर रत्न रथ और चित्ररथ, दोनों ने संयम धारा है।
हुवे अतिबल महाबल नाम, बारहवें सर्ग गये सुख भारा है॥
सुर पुर तज विमला रानी के, फिर हम दोनों ने जन्म लिया।
कुल भूषण और देश भूषण, व्यवहार मात्र यह नाम दिया॥

छं (,,)-बालपन से मात पितुने, भेज हम गुरूकुल दिये।
आचार्य के बर्ष बारह तक, हमे सुपुर्द किये॥

विद्या गुरु 'वर घोत्र' फिर लाया हमें नृप पास है ।
राजा ने फिर परीक्षा लई, दरबार लाकर खास है ॥
वहु परितोपिक दिया, भूपाल ने सम्मान से ।
खुश कर दिया गुरुको पिताने, सार प्रीति दान से ॥
फिर पास माता के चले, हम शीश पितु को नायके ।
माता और बहनें नगर की, बेठी बहुत वहां आयके ॥
एक महल पर बैठी दुलारी, नजर उस पे जा पडी ।
हम अनुराग से देखन लगे, सूरत है क्या अद्भुत घडी ॥

दो. (कुल भू)-माता को हमने करी, चरणों में प्रणाम ।
फिर पूछा यह कौन है, कहा मातने ताम ॥
अय पुत्र तुम्हारे पीछे से, जन्मी यह राज दुलारी है ।
तुम रहते थे गुरु कुल में यह, एक छोटी बहिन तुम्हारी है ॥
हमने जब सुना बहिन अपनी, मन विरक्त हुआ सब भोगोसे
और समझ लिया नहीं बच सकते, दुनिया में ऐसे रोगोसे ॥

दो. (,,)-राग किया निज बहिन पर, जो नही करने योग्य ।
इस कारण हमने तजा, राज पाट सयोग ॥

चौक (मुनि)-यह धार लिया सयम हमने, फिर आत्मज्ञान अभ्यास किया।
महा घोर तपस्या धारी तन पर, कई मास उपवास किया ॥
फिर करते उग्र विहार इसी नग पर, आ ध्यान लगाया था ।
मरने जीने की आशा तज, कायोत्सर्ग ध्यान जमाया था ॥
और पिता धार अनशन पीछे, महा लोचन गरुड हुआ सुर वह ।
जब अवधि ज्ञान से देखा हमें, आने को था गिरी ऊपर वह ॥
था उसी समय श्री अतिवीर्य मुनिराज, को केवल ज्ञान हुआ ।
वह पिता देव गया उत्सव पर, संग अनल प्रभ का ध्यान हुआ ॥

चौपाई (,,)-उत्सव ज्ञान अधिक प्रकाशा, दया धर्म अमृत मुनि भाषा
मानव देव परिषदा मांही, पूछत प्रश्न एक मुनिराई ॥
अबके किसकी संख्या आवे, जो मुनि केवल ऋद्धि पावे।
कृपया कर कहो अन्तर्यामी, कौन मुनि होगा शिवगामी॥

दो. (,,) ध्यानस्थ मुनि दो है खडे, वंशस्थल के पास।
उन दोनो मुनि जनो को, होगा ज्ञान प्रकाश ॥
सर्वज्ञ देवने फर्माया, कुल भूषण और देश भूषण।
शुभ ज्ञान दर्श चारित्र तप, चारो में नही कोई दूषण ॥
केवल ज्ञान उन्हें होगा यह, अनलप्रभ ने सुन पाया।
और उसी समय क्रोधातुर हो, उपसर्ग हमें देने आया॥

दो (,,) नित्य प्रति करता था यहां, शब्द भयानक आन।
और वैक्रिय शक्ति से, लाता था तौफान ॥
कई दिवस हो गये किया, उपसर्ग बहुत दुखकारी है।
यहां केवल ज्ञान में विघ्न हुआ, विपदा लोगो पर डारी है॥
अब देख तुम्हें सुन अनलप्रभ, हट गया पिछाडी घबराकर।
जब शुक्ल ध्यान निर्विघ्न हुआ, केवल प्रगटा हमको आकर॥

दो — सुनवाणी सर्वज्ञ की, प्रसन्न चित्त अवधेश।
उसी समय चरणन गिरा, साधी सेव विशेष ॥
झट महालोचन सुरने आकर, सियाराम से प्रेम बढाया है।
कुछ प्रत्युपकार करूं मैं भी, ऐसे मुख से फर्माया है ॥
बोला कुछ सेवा बतलाओ, जो इच्छा आपको देवेंगे।
तब बोले राम जब इच्छा होगी, याद तुम्हें कर लेवेंगे ॥

दो — ज्ञानोत्सव करके गये, सुर निज निज स्थान।
तैयार हुवे श्रीराम भी, करने को प्रस्थान ॥

वंशस्थल पुर पति आन, चरणोमें शीश नमाता है ।
श्रीराम को ठहरने लिये, वेनती जनता से करवाता है ॥
रामगिरी धर दिया नाम पर्वतका, सबने उस दिनसे ।
उत्सव हुआ अति भारी, और दान दिया खुल्ले दिलसे ॥
अतिथियों के विश्राम हेत, प्रसाद वहां बनवाये है ।
फिर समय देख श्री रामचन्द्र ने, आगे कदम बढाये है ॥

चौपाई–उद्दड दंडकारण्य अति आया, प्रबल सिंह सम भय नही खाया ॥
गिरी गुफागृह मानिद पाया, अब कुछ निश्चल आसन लाया ॥
एक दिवस भोजन के बेले, चारण मुनि दो पुण्य समे ले ॥
द्विमासीक तप से तन सोहे, त्रिगुप्त सुगुप्त नाम मनमोहे ॥

दो. नौ –भोजन गृह में समय पर, बैठे दोनों भ्रात ।
सस्कार सीता किया, वडे प्रेम के साथ ॥

चौ नौ –वडे प्रेम के साथ सिया ने, व्यंजन सभी बनाये ।
वह लब्धी धारक मुनि, वहां पर लेन पारणा आये ॥
देख मुनि श्री रामसिया, लक्ष्मणजी अति हर्षाये ।
और उसी समय कर नमस्कार, तीनों ने आहार वहराये ॥

दौड– समागम मुश्किल पाया, चरणन गिर शीश झुकाया ।
दान देवों मन भाया, खुशी में आकर देवो नें
भी गंधोदक वर्षाया ॥

दो – अहो दान उद्घोषणा, करे व्योम में देव ।
भेट करें कुछ राम की, सोचें अमर स्वमेव ॥

चौ – अश्व सहित रथ दिया अचित, एक रत्नजटी खेचर सुरने ।
गंधोदक वृष्टी कर के सब, देव गये निज निज घरने ॥
यहा वार वार मुनि चरणनमें, रघुपति ने शीश नमाये है ।
गइ फैल वासना गंधोदक की, सभी जीव सुख पाये है ॥

दो नौ - गंधोदक की वासना, फैली वन मंझार।
गधाभिध नामक पक्षी, के साता हुई अपार ॥
चौ नौ.-साता हुई अपार जिस्ममें, लगी दाहथी भारी।
पुण्य उदय चल आया, जहां थे राम मुनि तप धारी ॥
वठ वृक्ष पर देख रहा था, लवी नजर पसारी।
जाति स्मरण हुआ ज्ञान, भावना दिलमें शुद्ध विचारी ॥
दौड़ — दृष्टि गई पूर्व जन्ममें, तुरत फिर गिरा धरनमें।
उठाया सीता ने करके मुनि चरणन गेरा पक्षी,
भरा रोग तन पर में ॥
दो. नौ.-लब्धी धारक मुनि के, चरण फरसे पक्षी ताम।
हुई कंचन वर्णी देह को, देख अचंमे राम ॥
चौ. नौ -देख अचंभे राम फेर, मुनि आगे अर्ज गुजारी।
कौन कर्म का पल प्रभु इसने, भोगी विपदा भारी ॥
पूर्व हाल वतलाओ इसके, इच्छा यही हमारी।
गला सड़ा जो तन था इसका, अब सुन्दर हितकारी ॥
दौड़— सुगुप्त मुनि यों फरमावें, कर्म के फल वतलावें।
ध्यान सिया राम लगावें, खदक दंडक पालक के सब
भेद खोल दर्शावे ॥

❀ श्री स्कंधकाचार्य चरित्र-अधिकार ❀

दो. नौ -नृप था सावत्थी नगर में, जित शत्रु वलवान।
रानी जिस के धारिणी, शोभन गुण की खान ॥
चौ नौ (मुनि)-धर्मनथी गुणवान् पुत्र एक जन्मा खंधक प्यारा।
चौसठ कला प्रवीण, पुरन्दर यशा पुत्री सुखकारा ॥
बहत्तर कला का ज्ञाता, स्कंदक जैन धर्म का प्यारा।
रंग मजीठी चढा धर्म का, चर्चावादी भारा ॥

दौड— कुंभकार कट नगरी, दंडक राजा क्षत्री ।
पुरंदर यशा को व्याहा, अब देखो आगे गति कर्म,
की कैसा रंग खिलाया ॥

दो. सुगुप्तमुनि) पालक एक वजीरथा, नास्तिक दुष्ट स्वभाव ।
धमध्यान भावे नही, लाखों करो उपाव ॥

दो. नौ. (,,) दंडक नृप ने एक, दिन भेजा पालक काम ।
जित शत्रु भूपाल पे, ले आया पैगाम ॥

चौ. नौ (,,) ले आया पैगाम भूपने, सेवा की हित करके ।
धर्मस्थान ले गया दिलावें, शिक्षा इसे दिल धरके ॥
सुनके धर्म कथा सवही का, हृदय कमल अति हर्षे ।
मिथ्या बस पालक सुन, निंदा करे क्रोध में भरके ॥

दौड— निंदा सुन खधक आया, तुरत शास्त्रार्थ लगाया ।
हुई तव चर्चा जारी, अन्त में पालक हुआ निरूत्तर,
खिष्ट सभा में भारी ॥

दो. (सुगुप्त) हार सभा के वीच में गया, स्वदेश मंझार ।
उपहास्य देख अपना अति, दिल में द्वेष अपार ॥

चौ (सुगुप्त) खंधक का दिल हुआ वैरागी, परउपकार करू अब लागी ।
आज्ञा लेने माता पे आये, तव माताने वचन सुनाये ॥

दो पू. जान हथेली जो धरे, वह ले संयम धार ।
यदि पीछे गिरना पडे तो, उससे भली बेगार ॥

चौ पू (माता)-उससे भली वेगार, क्योंकि यहां कष्ट समुह को सहना है।
यदि कोई गर्दन पर धरे, तेग तो दीन वचन नहीं कहना है ॥
राग द्वेष दो कर्म वीज को दिलमें, जगह नही देना है ।
कोई कष्ट आनकर पडे जिस्मपर, सम प्रणाम से सहना है ॥

दौड़.- न दृष्टि लोटावे, पर आगे को वढ़ावे ।
भीरुता दूर भगावे, प्रतिज्ञा पर रहे दृढ़ चाहे,
खेल जानपर जावे ॥

दो. पू. (माता)-कहे श्री सर्वज्ञ ने, अष्ट प्रवचन सार ।
इनको धारे विन कोई, हुआ न भव से पार ॥

चौ. पू (माता)-पांच सुमति और तीन गुप्ती को,हरदम हृदय लाना है।
कही नीरस सरस जो मिले आहार समसम प्रणामों से खाना है॥
कर्म जंग में अड़कर के फिर, मरने से नही डरना है।
इस गदे जिस्म की खातिर, क्षत्रिय कुलदागी नही करना है॥

दौड़- एक दिन सबने मरना, धर्म विन और न शरणा ।
यही भाव हृदय में धरना, चक्री तीर्थंकर गये छोड़,
यहां अमर किसी का घर ना ॥

गाना ४० माताका स्कंधक कुमारको समझाना (तर्ज-निहालदे की)

वासी भी खाना मेरे खधक और जमी का सोवना ।
कठिन यह वृति मेरे, खधक सधने की नाही ॥
कटुक वचन मेरे, बेटा जव वरसेगें वाण सम ।
बाईस परिषह मेरे बच्चे तू, सहने का नाही ।
चार महाव्रत धारने होगें,
जीवित ही मरना है बेटा धरणी की न्याई ॥

दो. नौ. (खंधक)–माता तेरे सामने, लई प्रतिज्ञा धार ।
समदम खम को धारके, करूं धर्म प्रचार ॥

चौ.नौ. (,,)-करूं धर्म प्रचार पूर्ण, कर्तव्य सभी कर दूंगा ।
चाहे सिर कट जाय किंतु, पीछे नही कदम धरूंगा ॥

सत्याग्रह अनादि नियम, जैन का हृदय यही धरूंगा ।
धर्म प्रचार के लिये मात, कुर्बान जिस्म कर दूंगा ॥

दौड़— मुनि का बाना पाऊ, देश दंडक के जाऊं ।
धर्म झडा लहराऊ, अज्ञान अंध में पडे जीवों को
सत्य धर्म दर्शाऊ ॥

दो (सुगुप्त)-माता ले गई पुत्र को, मुनि सुव्रत स्वामी पास ।
हाथ जोड़ कहने लगी, सुनो प्रभु अर्दास ॥

चौ पू (माता)-सुनो प्रभु अर्दास, आपको अपना पुत्र देती हू ।
मोह कर्म वध का भय मुझको, इस लिये विरह को सहती हू ॥
अव माता पुत्र सम्वध नही, खधक को अतिम कहती हू ।
इस कर्म जग में अडकर, पीठ न देना शिक्षा देती हूं ॥

दौड़— माता गई घर संभारी, पुत्रने दीक्षा धारी ।
लिये महाव्रत सुखकारी, तपस्या में लीन गुरु के
हरदम आज्ञा कारी ॥

दो. नौ (सुगुप्त) हुवे खधक मुनि के पांचसौ, शिष्य अरिदल चूर ।
शान्तरूप तप संयमी, विद्या में भरपूर ॥

चौ. नौ (,,) विद्या में भरपूर हुवे, सम्मति मेलन को ।
कहे खधक घर नहीं छोडा, हमने खाली पेट भरन को ॥
वह राज्य ऋद्धि सुख तजे सभी, स्वपर उपकार करण को ।
धीर वीर गभीर वनो, आपत्ति सभी जरन को ॥

दौड़— प्रचार को जिसने चलना, तो जान हथेली धरना ।
निश्चय है एक दिन मरना, शान्तरूप हो सहो कष्ट,
पर पीछे कदम न धरना ॥

दो. (शिष्यमंड) सभी हम जो पाचसौ, कर्म जग जुझार ।
तन मन मन्न तुमको दिया, करो जो हो स्वीकार ॥

चौ. पू. (,,) करो जो हो स्वीकार, आपको जान हथेली धरली है।
प्रचार कार्य में जुडने को, अब कमर सबने कस ली है ॥
जो पडे कष्ट वह सहन करे, चाहे टूटे नस नस पसली है।
यह जिस्म साथ नहीं जाना हमने, सोचा सभी कुछ कर ली है॥

दौड— पेट तो खर भी भरते, शूर रणक्षेत्र लडते।
उपसर्ग सभी है सहते, जिन आज्ञा पालन में देवें
जान यही दिल धरते है ॥

दो नौ. (सुगुप्त)-दृढ़ संकल्प सबने किया, खंधक आदि ऋषि महान्।
आज्ञा लेने प्रभु पे गये, करी चरण प्रणाम ॥

चौ. नौ. (,,)-करी चरण प्रणाम, प्रभुजी हम जावें विचरने को।
दड़क राजा को समझाने, और उपकार करने को ॥
सत्य धर्म स्थापन मिथ्या, नास्तिक पाप हरन को।
पुरंदर यशा को दृढ करन, निज पूर्ण करन प्रण को।

दौड— प्रभुजी यों फर्मावें, उपद्रव हो दर्शावें।
होनहार बतलावे, सिवा तेरे सब का सिद्ध कार्य,
अन्त मोक्ष में जावे ॥

दो (स्कंधक)-सर्वज्ञों के वचन को, कोई न टालन हार।
होनहार होगी वही, पर यह भी परोपकार ॥

चौ नौ. (स्कधक)-यह भी उपकार पाचसौ, के सिद्ध कार्य होवें।
धर्म काम में लगे जिस्म तो, दुख समुह को खोवें ॥
करेंगे उग्र विहार सभी जन के, दिल का दुःख खोवें।
हर व्यक्ति के दिल अन्दर, हम बीज धर्म का बोवें ॥

दौड.— ज्ञान बर्षा बरसा कर, मिथ्यात्व को दूर नसा कर।
धर्म द्विविध दर्शाकर, अज्ञान रूप वन धर्से हस्तिगण
को ज्यों सिह भगाकर ॥

दो (सुगुप्ति)-खबर लगी श्री संघको, मुनि दंडकदेशमें जांय ।
नम्र निवेदन यूं करें, चरणन-शीश झुकाय ॥

गाना नं. ४१ (श्री संघ एव स्कंधकाचार्य का सम्मिलित)

श्रीसंघ-अर्ज श्री संघकी स्वामिन, देश दंडक के मत जावें
स्कधकाचार्य-प्रतिज्ञा टला नहीं सकती, चाहे अंतक निगल जावें ॥टेर॥
श्रीसघ-सभी नास्तिक वहां बसते, दुष्ट पापी अनाडी है ।
भरे अज्ञान से हृदय, साफ कैसे किये जावें ॥ १ ॥
स्कधकाचार्य-वहाकर ज्ञान का दरिया, मिथ्या अज्ञान धो दूंगा ।
सुधारूंगा उन्हें सह लूं चाहे, महाकष्ट आजावे ॥ २ ॥
श्री संघ-स्वल्प यह लाभ है वहा का, यहां अनमोल जिदगी है ।
जिसे हम कह नहीं सकते, वही न कष्ट आजावे ॥ ३ ॥
स्कधकाचार्य-आत्मा सब बराबर है, भेद है सिर्फ कर्मों का ।
उन्हें सम्यक्त्व आजावे, यहां चाहे प्राण भी जावे ॥ ४ ॥
श्रीसंग- विनय यह सार चरणोंमें, आप यदि रूक नही सकते ।
करें प्रचार नर्मी से, कहीं न विघ्न आजावे ॥ ५ ॥
स्कधकाचार्य-न्याय से तो वहां अन्याय, मिथ्या जड को खोना है ।
हटूं न मैं सचाई से, चाहे पृथ्वी उल्ट जावे ॥ ६ ॥
श्रीसंघ- वचन सर्वज्ञ का सुनकर, हमारा दिल धडकता है ।
महा पापिष्ट वह जन है, पाप करने में सुखपावें ॥ ७ ॥
स्कधकाचार्य-शुक्र क्या दोप उनका है, सभी कर्मों के पर्दे है ।
खुशी है हम लिये उपकार के, चाहे सर भी लग जावे ॥ ८ ॥

चौ (सुगुप्त,-जब नास्तिक देश के मध्य गये, तो कष्ट भयानक आने लगे
गंध हस्तिरण में ऐसे मुनि, प्रचार में कदम बढाने लगे ॥
अन्याय की जड को काट छाट, सद् ज्ञान का नीर बढाने लगे ।
मिथ्या तम का कर नाश, ज्ञान प्रकाश मुनि फैलाने लगे ॥

दो. (,,)-नास्तिक मत के शिरोमणि, अंध पक्ष में लीन ।
लगे द्वेष से तड़पने, जैसे जल बिन मीन ॥

चौ (,,)-पराजित होकर शास्त्रार्थ में, अब नीच कर्म पर तुल आये।
मुनियों पर कंकर पत्थर फैंक, गाली गलौज मुह पर लाये॥
भयभीत हुवे कई भव्य जीव, मुनियों को आ समझाने लगे।
बोले आगे मत वढो प्रभु, मृत्यु का भय बतलाने लगे ॥

दो (,,)-ऐसे वचनों को सुना, स्कंधक ने जिस वार ।
मुनि वीर गभीर यों, बोला वचन उचार ॥

* गाना नं ४२ स्कंधकाचार्य का '

सत्य प्रचार में यह जान रहे या न रहे ।
परोपकार में शान, रहे या न रहे ॥ १ ॥
फैला दूगा मैं शिष्यों को, राष्ट्र भर में ।
मिथ्या विष काटने में, कान रहे या न रहे ॥ २ ॥
ज्ञान दर्श चारित्र का, डंका बजाऊं सारे ।
पांव पीछे न हटे, प्राण रहे या न रहे ॥ ३ ॥
भूले भटकों को, बतावेगें जिनवाणी ।
साफ कह देगें यह सिर, जान रहे या न रहे ॥ ४ ॥
सर्वस्व लगाकर भी, करू कर्तव्य पालन ।
खाने पीने का मुझे, ध्यान रहे या न रहे ॥ ५ ॥
हरगिझ न डरेगें, किसी की धमकी से ।
चाहे हाथ में मैदान, रहे या न रहे ॥ ६ ॥
सुर नर मोक्ष तिर्यच, नर्क है दुनिया में ।
आस्तिक धर्म रहे, इन्सान रहे या न रहे ॥ ७ ॥
सिद्ध ईश्वर, सच्चिदानन्द परमात्म ।
आन रह जाय अमिट, जान रहे या न रहे ॥ ८ ॥

शुक्ल शुभ ध्यान है, दो कर्मों के उडाने वाले ।
विन शुभ ध्यान के यह, जहान रहे या न रहे ॥ ६ ॥

दो (सुगुप्त)-ऐसे कह कर मुनि, फैल गये चहुं ओर ।
नास्तिक के हृदयों में, मचा अपूर्व शोर ॥
कहीं दो दो और कहीं चार चार, मुनियोंने धर्म प्रचार किया।
था मिथ्या भंवरे में पडा हुआ, बेडा कइयों का पार किया ॥
थी आज्ञा आचार्य की, कुम्भकार कट नगरमें आनेकी ।
निर्दोष देख स्थान स्वच्छ, सब आसन वहां जमाने की ॥

चौपाई (,,) विचरत कुंभकार कट आये। बाग बीच निज आसन लाये॥
सुन बालक कुमति दिल धारी। नीच स्वभाव सूअर समवारी।
कहे पालक यह मुनि वही आये। बदला लेऊ कोई करूं उपाय॥
पूर्व वैर कर स्मरण मनमें। जल रहा भीतर द्वेष अग्नमें॥

दो (,,) मुनिवर कुछ ही सोचते, पालक सोचे और ।
होनीने अपना किया, कर्तव्य महा कठोर ॥
पालक ने चारों तर्फ, पहरा दिया लगाय ।
दारू गोला बागमें, शस्त्र दिये गडवाय ॥
राजाको कहने लगा, पालक पापी ढोर ।
राजन क्या सोया पड़ा, त्याग अब निद्राघोर ॥
नृप कहे मन्त्री किस लिये, इतना है हैरान ।
रात समय क्यों आये हो, कह दो सकल बयान ॥

दो (पालकमन्त्री) राजा नीति यों कहे, करो न पल विश्वास ।
धोखे में आना नही, चाहे मित्र हो खास ॥
खबर नहीं कुछ आपको, स्कंधक पहुंचा आय ।
राज्य लेने के वास्ते, गुप्त भेष बनाय ॥

दो. (राजादंडक) मंत्री तेरी भूल है, यह मुनि है गुणधार।
त्याग दिया संसार सब, करते धर्म प्रचार॥

दो नौ (पालक) निज कर्तव्य मैंने किया, जो मुझ पर था भार।
नमक खाय कर आपका, देऊं सलाह सुखकार॥

चौ नौ (पालक) देऊ सलाह सुखकार, बाग में चलो संग अब मेरे।
शस्त्र दारु गोला देखो, गुफिया पाचसौ चेहरे॥
सहस्त्र सहस्त्र पर भारी है, एक शूरवीर दल घेरे।
आलस्य में जो पडे रहे तो मौत पुकारी नेडे॥

दौड— चलो अब देर न लावो देख आज्ञा फर्मावो।
यदि स्कंधक न होता, कष्ट नहीं देता तुम को सब,
काम मैं खुदकर देता॥

दो (सुगुप्त)-गद्दी के होते गधे, जिन्हें न कुछ पहिचान।
जहां लगाय लग गये, तज गौरव का ध्यान॥

दो. नौ (,,)-मंत्री को ले बाग में, तुरत गये भूपाल।
दारु गोला शस्त्र सब, दिखलाया जंजाल॥

चौ नौ. (सुगुप्त) दिखलाया भ्रमजाल, भूपको चढा रोप अति भारी।
सोचा यदि किया आलस्य तो, करेगा दुष्ट खवारी॥
मैं स्वय यदि दू दड इसे तो, निन्दा होगी भारी।
अधिकार दिया सब मंत्री को, मति उल्टी यही विचारी॥

दौड— दुष्ट का भेद न पाया, भूप अपने घर आया।
मंत्री मन आनद पाया, आना जाना कर बन्द बागमें,
कोल्हू तुरत गडवाया॥

दो. (सुगुप्त) दुष्ट जनों को साथ ले, पहुंचा मुनियों पास।
बोला अब तुम को नहीं, बचने का अवकाश॥

दो. (पालकमंत्री) शत्रु जो होवे मेरा, और शत्रु के यार।
मारे बिन छोड़ू नहीं, घानी है तैय्यार ॥

दो. नौ (,,) वह दिन करले याद तू, स्कधक राजकुमार।
पराजित मुझे तु ने किया, भरी सभा मझार ॥

चौ नौ. (,,) भरी सभा मझार किया, अब साधु बन आया है।
प्रचार करण निजधर्म, पांचसौ शिष्य सग लाया है ॥
किन्तु अब तू बच नही सकता, काल उठा लाया है।
अद्‌भुत ढोंग बना, भद्र लोगों को भर्माया है ॥

दौड़— यदि है जान पियारी, चार है शर्त हमारी।
फेर यहा कभी न आओ, कुधर्म त्याग मांगो माफी,
मम धर्म ग्रहण कर जावो ॥

दो. (सुगुप्तमुनि) स्कंधक मुनि ने जब सुनी, पत्तान्ध की बात।
गभीर ऋषि कहने लगे, यों गौरव के साथ ॥

दो नौ. (स्कंधक)-पालक क्यों घबरा रहा, फिरे नचाता शोर।
प्रबल सिंह आगे नहीं, चले स्यार का जोर ॥

चौ. नौ. (,,)-नही चले स्यार का जोर, यहां तो सारे शेर बबर है।
क्या दिखलाता धौंस, मरण की, जान हथेली पर है ॥
शरतों को रख घर अपने, यहां सारे मुनि निडर है।
धर्म बली देने को प्रभूने, दान बताये सिर है ॥

दौड़— जिस्म यह नहीं हमारा, गया कहां ध्यान तुम्हारा।
सोच कर करो विचारा, सत्य धर्म कर ग्रहण मिटे,
अज्ञान तिमिर तब सारा ॥

दो (सुगुप्त)-इतनी सुनकर मन्त्री, जल बल हो गया ढेर।
भृकुटि मस्तक डाल कर, लिये मुनि सब घेर ॥

दो.(,,)-खधक दिल मे सोचता, यह कोई अभव्य विशेष।
मुनियों को अब दृढ करूं, देकर के उपदेश ॥
दुर्जन को सज्जन करने का, भूतल में कोई उपाय नहीं।
घनघोर घटा कितनी वरसे, चातक की तृषा जाय नहीं॥
वसन्त ऋतु में सब हंसते, नहीं पत्र करीर के आता है।
भानु की इच्छा सब करते, पर उल्लु उसको नही चाहता है॥
नागर के फलका अभाव, पीपल के फूल नही आता है।
फणीधर को जितना दूध मिले, उतना ही विष वन जाता है॥
जिसमे न ज्ञान का अंश ज़रा, उसको वृथा समझाना है।
ज्यो बहिरे को सुरताल सहित, निष्कारण गायन सुनाना है॥
जन्मान्ध के आगे आंसु डाल, नेत्रो का तेज घटाना है।
व्योम के फुल की चाहना, या वज्र पर कमल जमाना है॥
जो महा दीर्घ ससारी अथवा, कोई अभव्य प्राणी हो।
उसको न समझ सके, कोई चाहे आप्तकी वाणी हो॥
दो (स्कधक) द्रव्य क्षेत्र और समय में, जैसा अवसर होय।
फिर अपने कर्तव्य को, सोचे बुधजन कोय॥
कर्तव्य वही इस समय, धर्मको अपना शीस चढाना है।
तुच्छ अनित्य सुखों के लिये, धर्मका गौरव नही गिराना है॥
किस तरह सत्य पर वीर बली, देते है सो दिखलाना है।
ज्ञान सुधारस वीरशांतरस, मुनियों को आज पिलाना है॥
दो. (,,) धर्मवीर हे मुनिजनो! सुनो लगाकर कान।
अब समय अपूर्व आगया, देने को बलिदान॥

❀ स्कधकाचार्य का मुनियो को वैराग्यमयी उपदेश ❀

पानी का बुलबुला जान, जिस्म यह अन्त खाक रुल जायगा।
अनमोल समय यह मिला आन, जो फेर हाथ नही आयगा॥१॥

मैदान जंग में अडे सूरमा, मोक्ष जागीरी पायगा ।
पीठ दिखा के भागे जो कायर, काग मास नही खायगा ॥२॥
क्रोध मान अरति परिषहों, से जो मुनि चल जायगा ।
विराधक हो के मरे चौरासी, चक्कर में रूल जायगा ॥३॥
असख्य परमाणुओंसे बना, मनुष्य तन अवश्यमेव खिर जायगा ।
रत्न पदार्थ जीव शुक्ल यह छेद भेद नही पायगा ॥४॥

दो. (स्कधक)-सुनो मुनि अब कान धर, है कोल्हू तैयार ।
बाध क्षमादि शस्त्र सब, हो जावो तैय्यार ॥

चौ. पू (,,)-हो जाओ तैयार क्योंकि, अब जल्दी जग जुडनेवाला है ।
तुम क्षमा खड्ग से काट क्रोध का शीश करो मुंह काला है ॥
मोह कर्म चाडाल दुष्ट यदि, लिया मारकर भाला है ।
फिर सात अरिके नाश करन को, काफी खूब मसाला है ॥

दौड— भय न कुछ मन में लावो, धर्म को शीस चढावो ।
चित्त को शांत बनाओ, ध्यान शुक्ल शुभ ध्याय,
शान्तमय होकर धर्म बचाओ ॥

* गाना-न. ४३ (स्कधकाचार्य का मुनियो को उपदेश) *

सुनो मुनि प्यारो यह ससार असार ॥ टेर—
यह ससार, सगयों का हार, होवे ख्वार, जो कोई पहिने ।
सुतदार नार, परिवार यार, यह जिस्म सदा स्थिर नही रहने ॥
सहे दु ख अपार नर्कों के द्वार जमदों की मार दु ख क्या कहने ।
तिर्यचभार डडों की मार, गल छुरीधार अग्नि दहने जी ॥
जो थे जिनेश, सेवें सुरेश, इन्द्र नरेन्द्र भी आकर के ।
करणी के धार केवल अपार, ससार सार सुख पा करके ॥
योधा महान्, धरते थे ध्यान, देते थे ज्ञान समझा करके जी ।
सुवर्ण जैसे अग जिन्हो के, उनकी भी होगई छार । सुनो ॥१॥

जो कोई मित्र को कैद से, काढे फंद काट आजाद करे।
मत करो गिला संयोग मिला, जा मोक्ष शिला आवास धरें॥
जो धर्म हित लगता है रेत निपजे है खेत सब काम सरें जी।
चाहे सेल बिन्धे चाहे बर्छी छिन्धे, चाहे तेग काढ़ गर्दन धरदें॥
चाहे अग्नि बाण लोहे को, लाल करके कमाल सिरपर धर दें।
चाहे घानी डाल पीले, कमाल नेत्र निकाल कर पर धरदें॥
दश विध का धर्म खंती का मर्म, मत रखे भ्रम दिलमें सरधोजी।
धर्म हेत जो लगे अग तो मिलता है शिवद्वार ॥ सुनो ॥ २॥
हो जाओ तैयार सहने को मार, नही बार बार जन्म मिले।
होजाओ फिदा कायासे जुदा, हो फर्ज अदा सब दुःख टले॥
रहता है नाम सिद्ध होय काम, शूरा संग्राम घानी में पीले।
मेरु समान हो जाओ जवान, अब क्षमा खड्ग करमें गहिये।
शांति की तेग लो पकड बेग, संयम की टेक रखना चाहिये।
जिन जी के पूत हो राजपूत, सिर देके कजा चखनी चाहियेजी।
शूरवीर जो रखे धर्म को, चाहे पडें कष्ट अपार ॥ सुनो ॥ ३।
जो क्षमा करे वह नही मरे, मुक्ति को वरे करो कुर्बानी।
यह जिस्म जान गंदा महान् , रोगों की खान तुच्छ जिदगानी॥
है शुद्ध स्वरूप चेतन अनूप, भूपोंका भूप केवल ज्ञानी।
यह जीव जुदा नहीं होता, कदा नहीं जलता नहीं गलता पानी।
धीरज को धरो संसार तरो, मुक्ति को वरो कीजे करणी।
हो जाओ लाल चिन्ता को टाल, जब करो काल मुक्ति वरणी॥
सब कटें फंद कहे शुक्ल चन्द, निर्मल ज्यूं चंद धार्मिक तरणी।
मत डरना गीदड कर्मों से हो जाओ हुशियार ॥ सुनो ॥४॥

दो. (सुगुप्त) पालक तब कहने लगा, अब नही रही उधार।
निंदना आलोयणा कर सभी, खडे मुनि तैयार ॥

चौ (,,) निर्यामक वन खंधक मुनि, संथारा तुरत कराते है।
पैरों से लेते दुष्ट पकड, घानी में उधर चढाते हैं ॥
क्षपक श्रेणी चढे मुनि, सम दम खम ह्रदय लाते हैं ।
अन्त केवली बने वन्ध तज, अक्षय मोक्ष पद पाते है ॥
पिल रहा एक घानी में क्रम से, और एक तैयार खडा ।
कर दिया मात बूचड खाना, वह रहा खून कहीं हाड पडा ॥
उस यंत्र से मानो निकली, एक रक्त नदी दिखलाती थी।
गृध पक्षी घूम रहे नभ में, और चीलें झपट लगाती थी॥
जव पील दिये सव ही चेले, एक छोटा शिष्य रहा बाकी।
था होनहार गुणवान कणी, मानों जैसे थी हीरा की ॥
जव उसे पीलने के हेतु, पालक ने हाथ बढाया है ।
तव उसी समय स्कंधकने, पालक को यों वचन सुनाया है ॥

दो.— (स्कंधकाचार्य) सन्तोष तुझे आया नही, अय पालक सुन बात।
लघु शिष्य की न दिखा, मुझे सामने घात ॥

चौ नौ (,,) घात दिखा मत मुझको इसकी, यह कहना मान हमारा।
पाला इसको प्रेम भाव से, ज्ञान सार दिया सारा ॥
शत्रु यदि हूं तो मैं हू, न इसने कुछ तेरा विगाडा।
तयार खडा हूं पील यंत्र में, पहिले जिस्म हमारा ॥

दौड— पील पहिले वम मुझको, द्वेष जिससे है तुझको ।
आपको समझाता हूं, यह दुःख मत दिखला मुझको,
वस यही वात चाहता हूं ॥

दो. (सुगुप्त) मुनिराज के सुन वचन, वोला पालक वाद ।
तन मन खुश सव हो गया, लगा आन अव स्वाद ॥

छं (पालक) स्वाद वदले का सभी, अवही तो है आने लगा ।
छोड दे लघु शिष्य को, किसको यह समझाने लगा ॥

जिस तरह तुझको मिले दुःख, काम वह करना मुझे।
पीलूंगा तडपा करके इसको, दु ख मैं दिखलाऊ तुझे॥
तू ने सावत्थी नगर में, अति क्लिष्ट मुझको था किया।
सार यह मत का तुम्हारा, उस बदी का फल लिया॥

दो. (सुगुप्त) लघुशिष्य ने सब सुनी, बातें करके ध्यान।
नमस्कार कर गुरु को, बोला मधुर जबान॥

छं. (लघुशिष्य) नम्र निवेदन एक मेरा, गुरुजी सुन लीजिये।
बन गया अब सूत निरमल को, कपासन कीजिये॥
सद्धर्म को अर्पण करूं सब, स्वाद अब आने लगा।
भय गुरुजी इस समय मैं, क्षत्रिय कब खाने लगा॥

गाना नं. ४४ (लघुशिष्य का गुरु स्कधकाचार्य को कहना)

आपकी कृपा से अब मैं अपनी सूरत देखली।
मिट गया सारा भ्रम, जब असली सूरत देखली॥१॥
थक गया मैं ढूढता लेकिन, यह थे परदेनशीन।
ज्ञान दीपक से की अब, परदे में सूरत देखली॥२॥
अब अनित्य रग रूप की, खातिर भटकता मैं रहा।
आनंद अपूर्व मिल गया जो, थी जरुरत देखली॥३॥
जिह्वा और माला के दाने, फेरता मुद्दत रहा।
छोड़ दी जब अपने इस, मन की कुदरत देखली॥४॥
ज्ञानमय हूं मुझ में अब यह कर्म मल कुछ भी नही।
ध्यान धरके शुक्ल सच्चिदानन्द, अमूर्त देखली॥५॥

दो (ल शिष्य)–इस दिन के ही वास्ते, शीस मुंडाया आन।
वन्ध अनादि तोडकर, लेऊ मोक्ष निर्वाण॥
अवश्यमेव एक दिन छुटे, यह जिस्म साथ नही जावेगा।
अनमोल समय यह मिला आन, फिर नही पता कब आवेगा॥

क्षपक श्रेणी चढूं अभी, तन से मोह जाल हटाया है।
जिस दिन के लिये भटकता था, वस आज वही दिन आया है॥

दो (सुगुप्त)-ज्ञान दर्श चारित्र सम, और शान्त रसलीन।
समदम खम शुभ भाव से, योग हुए शुद्ध तीन॥
इधर चढ़े परिणाम उधर, दुष्टों ने चढाया घानी में।
पाकर केवल ज्ञान पहुंच गये, अक्षय मोक्ष राजधानी में॥
सर्वज्ञ देव ने जो भाषा कही न, आया फर्क न आना है।
हाल देख खधक ऋषि के, झट क्रोध वदन भर आया है॥

दो.(सुगुप्त)-आयु का वल घट गया, कर न सके कुछ और।
होनहार का एक दम पडा, आन कर जोर॥

दो.(स्कधकाचार्य)-अहो अतुल्य यह पाप है, ऐसा अनर्थ घोर।
नदी खून की वह गई, जरा मचा न शोर॥

छं (स्कधक)-क्या सभी अभव्य है, मुनि पाचसौ मारे गये।
हृदय सभी के पत्थर है, क्या वज्र के ढाले हुवे॥
अच्छा जो मैं तप जप किया, उसका मुझे यह फलमिले।
नाश मैं इनका करू, और तोड डालूं सब किले॥
वेच दी करणी सभी, खदक ने नियाना कर दिया।
दुष्ट पालक ने मुनि, घानी मे उस दम धर दिया॥
श्वास पूरे होगये गुस्से के, वस विराधक हुआ।
साधक हुआ संसार का, और मोक्ष का वाधक हुआ॥

दो (सुगुप्त)-स्कंधक जाकर देवता, होगया अग्नि कुमार।
इधर मास ले व्योम में, पक्षी उडे अपार॥
जिसको जो कुछ मिला वही, पक्षी वहा से ले दौडा है।
लालच के वश कोई ले गया, ज्यादा और कोई थोड़ा है॥

टुकड़ा एक रत्न कंबल का, रजोहरण जिसमें लिपटी।
खून मांस का भरा हुआ, एक चील उसीको आ चिपटी॥
लेकर उडी वहां से बैठी, राजमहल ऊंचे जाकर।
लगी जिस समय खान मिला, नहीं सार पडा नीचे आकर॥
जब देखा इसे महारानी ने तो, रजोहरण कंबल पाया।
पुरन्द्र यशा मन घबराई, झट भूप महल में बुलवाया॥

दो. (पुरन्द्रयशा) प्राण नाथ यह देखिये, कंपा कलेजा आज।
क्या कोई मारा गया, बाग बीच मुनिराज॥

दो (सुगुप्त) हाल देख भूपाल का, गया कलेजा कांप।
छाती पर से एक दम, गया जिस तरह सांप॥
होगया नृप का फक चेहरा, न शक्ति रही बदन में है।
क्या बतलाऊं अब रानी को, बस यही सोच रहा मनमें है॥
लाचार कहा क्या बतलाऊं, गई डोर छूट नहीं हाथों में।
यह महाघोर किया पाप आन, मैंने वजीर की बातों में॥

दो. (,,) दुःख सागर में मग्न हो, बहा रही जल नयन।
कहन लगी भूपाल से, रानी ऐसे बैन॥

* गाना नं ४५ शोकाकुल रानी पुरन्दर यशा का राजा दंडक को कहना *

अय पति तूने कराया, जुल्म यह अति घोर है।
दुष्ट पालक सा अभव्य दुनियां में न कोई और है॥ १॥
पाचसौ शिष्यों सहित, भाई मेरा खंधक मुनि।
पीलते पीलते यन्त्र में, हा जिनको हो गया भोर है॥२॥
उफ् तलक किसी ने न किया, अंधेर कैसा छा गया।
जहां किसी को दुःख मिले, वहां पर तो मचता शोर है॥३॥

मातायें सुन मर जायेगी, जिनके थे यह शोभन कुंवर।
हाय उस दम वेदना, होगी सही किस तौर है ॥४॥
राज जन और फौज पल्टन, क्या किले नरनारी है।
अब तो सब गारत बनें, रहनी न यहां कोई ठौर है ॥५॥
अब सहू कैसे अतुल दुःख, जान भी जाती नही।
मैंने कर्म खोटे किये, आयु के बल का जोर है ॥६॥
यदि शुक्ल मुझ को पता, होता अनर्थ हो जायगा।
फिर पिया यह हाथ से, हरगिज न छुटती डौर है ॥७॥

दो.(दंडक)-महा खेद मैंने किया, कुछ भी नही विचार।
ऐसे पापी दुष्ट को दिये, सभी अधिकार ॥

❀ गाना न. ४६ (दंडक का विलाप) ❀

अब मैं धरूं, किस तरह धीर।
देख देख यह जुल्म भयानक, उठे कलेजे पीर ॥टेर॥
राज कुमर खंधक मुनि त्यागी, शूर वीर गंभीर।
कमल फूल से वदन पील दिये, घानी सकल शरीर ॥१॥
बिलबिल रोवे रानी मेरी, जिसका खधक वीर।
खबर सुनत ही प्राण तजेंगी, पीया जिनका क्षीर ॥ २॥
ज्ञात मुझे होता, नहीं, रखता ऐसा दुष्ट वजीर।
बात सुनेंगे सेवक जिनके, लगे कलेजे तीर ॥ ३ ॥
शुक्ल समय बीता नही आता, बहे नयनो से नीर।
सब रोगों की एक औषधी, श्रीजिनधर्म आखीर ॥ ४ ॥

दो (दंडक) धिक् ऐसे संसार को, और मुझे धिक्कार।
अब दिल में यह ही बसा, तप संयम लेऊं धार ॥
इधर विचार किया नृपने, वहा उपयोग देखने लाया है।
सब देख बाग का हाल उसी दम, क्रोध वदन में छाया है ॥

अग्नि कुमार उस सुरने आकर, अग्नि तुरत लगाई है।
देख प्रचंड मची ज्वाला, जनता मन में घबराई है॥
हाहाकार मचा सारे, भागे सब जान बचाने को।
जहां पर कोई मनुष्य नजर पड़ा. सुर अग्नि लगा जलाने को॥
पुरन्दर यशा की शासन देवीने, आकर करी सहाई है।
मुनि सुव्रत के पास पहुचा कर, दीक्षा उसे दिलाई है॥
दडक और पालक दोनो को दुःख सुरने दिये अति भारी।
दु ख अतुल भोगने को मंत्री, गया नर्क सातवी मझारी॥
काल अनन्त अन्त नही आना, पालक ने दु ख भरना है।
अभव्य स्वभाव है जिस प्राणी का, कभी न उसने तरना है॥

दो. (सुगुप्त)–दंडक नृप के देशमें, प्रलय हुई अपार।
नर्क और तिर्यचमें, गये बहुत नरनार॥

चौ— उसी दिवस से यह अटवी, दडकारण्य कहलाती है।
कर्म बडे बलवान यहां न, पेश किसी की जाती है॥
उस दंडक राजाने भवभव में, जन्म मरण दु ख पाया है।
फिर जन्मा यह गधभिद्य पक्षी, महारोग वदनमें छाया है॥
अब मुनियों के दर्शन से इसको, जाति स्मरण ज्ञान हुआ।
जब लगा देखने पूर्व जन्म, पालक खधक का ध्यान हुआ॥
तब उसी समय यह गिराधरणमें, पक्षी मूर्च्छा खाकरके।
अब सियाने हमारा पैरोंपर, यह पक्षी डाला लाकरके॥

छं (सुगुप्त)–स्पर्श ओपधी लब्धि हमें, पक्षी का जिस दम तन लगा।
वेदना उपशम हुई, जो रोग था सबहीं भगा॥
त्याग तन मन से किया, नहीं घात जीवों की करे।
बना गया धर्मी धर्म धारण, बिशुद्ध मनसे धरे॥

अब तुम्हारे शरण हैं, इसकी भी रक्षा कीजिये ।
मानिन्द समझो भ्रात की, करुणा यह दिल धर लीजिये ॥
राम बोले जो कुछ कहा, सब आपने वह ठीक है ।
इसकी रक्षा के लिये, मम प्राण भी नाचीज है ॥

* इति स्कंधकाचार्य अधिकार *

दो. नं -शिक्षा दे जब मुनि चले, पडे चरण श्रीराम ।
धन्य श्री जिनधर्म है, धन्य आपका नाम ॥
चौ नं (राम) धन्य आपका नाम, ज्ञान श्रीजिन का बतलाया है ।
धन्य मात वह तात प्रभु, जिसने तुम को जाया है ॥
सार सभी नरतन पाने का, तुमने ही पाया है ।
सफल जन्म उनका जिनके, सम दम खम मन भाया है ॥
दौड— मुनि वहा से चल धाये, ध्यान तप जप चित लाये ।
प्रसन्न पक्षी तन मन से, रक्खा नाम जटायु जिसका,
सीता पे रहे मग्न से ॥
दो — पक्षीका सुन्दर जिस्म, शोभे कलगी शीस ।
सीता से अति प्रेम है, रहे पास निशदीश ॥
सियाराम रथ में बैठे, लक्ष्मण सारथि बन जाता है ।
पक्षी उडे अगाडी जिस समय, चले सैर शोभाता है ॥
पुरी अयोध्या के समान, दण्डकारण्य में रहते हैं ।
अब सुनो हाल पाताल लंक का भी, संबंध यहा कहते है ॥

शम्बुक लक्ष्मण वर्णन

दो.— पाताल लंक का अधिपति, खर नामक भूपाल ।
शूर्पणखा रानी अति, सुन्दर रूप रसाल ॥
राजकुमार थे दो जिसके, शम्बुक और सुनन्दन ।
युवावस्था थी जिन की, शुभ रूप वर्ण जैसे कुन्दन ॥

सूर्य हास खाडा साधू, हर घडी यही शम्बुक चाहता।
नित्य विघ्न डालते मातापिता, नही कामयाब होने पाता॥

दो. नौ.-एक दिवस हठ में खडा, बोला हो विकाल।
विघ्न यदि देगा कोई, उसका आया काल॥

चौ नौ -उसका आया काल, लगे क्यो सोता शेर जगाने।
मारूं धर तलवार अक्ल, मारी आजाय ठिकाने॥
सोच समझ नही करते कायर, अपनी अपनी ताने।
विद्या साधन जाय शूर, शुबक न हरगिज माने॥

दौड़— विघ्न जो कोई देवेगा, जान अपनी खोवेगा।
दण्डकारण्य मैं जाऊ, द्वादश वर्ष सात दिन का,
साधन प्रारभ लगाऊं॥

दो.— सूर्य हास साधन असि, कुमर के मन उत्साह।
होनहार लेकर गई, दंडक वन के माह॥

दो.— क्रौंचखा नदी तीर पर, गंधूर वश विशेप।
उसमें जा साधन लगे, हो एकाग्र अक्लेश॥

दो — एकान्त भूमी शुद्धात्मा, जितेन्द्रिय व्रत धार।
पांव बांध वट वृक्ष से, नीचे मुख सुविचार॥
नीचे मुख सुविचार मंत्र मे, अपना ध्यान जमाया था।
बारह वर्ष सात दिन का विद्या प्रारंभ लगाया था॥
था चहुं ओर बांसो का वन, जहां पवन अति गुंजार करे।
पर क्या मजाल है दृष्टि की, अन्दर को जरा पसार करे॥
शूर्पणखा वहां तीन दिवस के, बाद में आया करती थी।
सुत शबुक के लिये खाद्यपदार्थ, वनमें लाया करती थी॥
विद्या साधत बीत गये, यहां बारा वर्ष चार दिन है।
सिद्धि प्राप्त लगी होन पर, मिले न रत्न पुण्य बिन है॥

तेज महान सूर्य समान, गधूर में लगा चमकने को।
लटक रहा था जहां पर खाडा, शम्बुक लगा हर्षने को॥

दो— रूप ऋद्धि वुद्धि अति, सेवा भक्ति महान्।
होनहार आगे सभी, वन जाते नादान॥

चौ.— रूप कहे मैं ही मैं हू, ऋद्धि कहे मैं कुछ कहलाती हूं।
वुद्धि कहे मैं तुम दोनों का, एक ग्रास कर जाती हू॥
होनी लगी मुस्कराने, और वोली जव मैं आऊगी।
रूप ऋद्धि वुद्धि आदि, कुछ हो सव पर छा जाऊंगी॥

दो.— क्रीडा कारण आगया, फिरता लक्ष्मण वीर।
दैव योग आगे वढा, क्रौंचरवा के तीर॥
वश जाल में पडी नजर, सूर्य मानिद प्रकाश हुआ।
क्या रवि आन वैठा इसमें, लक्ष्मण को ऐसा भास हुआ॥
वंश जाल में खड्ग अपूर्व, अपनी चमक दिखाता है।
देख अनुपम शस्त्र वीर, योधा का मन ललचाता है॥
झट हाथ पसार के खड्ग लिया, लक्ष्मण का मन हर्षाया है।
अज्ञातपने से परीक्षा कारण, वंश जाल पे चलाया है॥
होनी ने अपना काम किया, शवुक की आशा धरी रही।
वह जीव वसा जा परभवमें, संपत्ति सव यहां पर पडी रही॥

दो— लटक रहा था शीश जो, शंवुक का दर्म्यान।
वंशजाल के संग कटा, पडा सामने आन॥
देख भयानक दृश्य अनुज के, चोट हृदय पे आई है।
क्योंकि यह निरपराध कोई, मुझसे मरा वृथा ही है॥
किया खेद अति लक्ष्मण ने, फिर आगे पैर वढाया है।
शीश कटा धड लटक रहा, यह नजर सामने आया है॥

गाना नं. ४७ (शबुक की मृत्युपर लक्ष्मण का दुःख करना)

सैर करते आज मेरा, यहां क्यों आना हो गया।
बेगुनाह इस मनुष्य का, परभव में जाना हो गया ॥१॥
कष्ट सह सह करके जिसने, था खड्ग साधन किया।
हाय किस परिवार का, हृदय जलाना हो गया ॥२॥
देख वह रो रो मरेंगे, जिनका राजकुमार है।
क्योंकि उनका आज यह, अनमोल दाना खो गया ॥३॥
अब तो कुछ बनता नही, चाहे यत्न लाखों करूं।
जीव इसका तो 'शुक्ल", परभव रवाना हो गया ॥४॥

दो— पछताता ऐसे अनुज, गया राम के पास।
खड्ग सामने धर दिया, चेहरा अति उदास ॥

चौ— बोले राम अहो भाई, चेहरे पे आज उदासी क्यों।
यह खड्ग कहा से लाये हो, और ठण्डी लई उदासी क्यों ॥
कहे अनुज महाराज आज मैं, क्रौंचरवा के तीर गया।
निरपराधी विद्यासाधक, मारा एक रणधीर गया ॥

दो.— जो जो कुछ बीतक हुआ, सभी बताया हाल।
रामचन्द्र फिर अनुज से, बोल उठे तत्काल ॥

दो. नौ (राम)–भाई तूने बो दिया, झगडे का यह बीज।
जिसकी यह तलवार है, वह नही मामूली चीज ॥

चौ नौ (राम)–मामूली नही चीज फना, कर दिया शूर अलबेला।
है कोई उच्चराजवंशीय, तुम न समझो उसे अकेला ॥
दल बल सेना आने वाली है, कोई रेलम ठेला।
देख अभी दीखेगा बनमें, भरा हुआ रणमेला ॥

गाना न ४८ (रामचन्द्रजी का लक्ष्मण को कहना)

पहिन वस्त्र अभी तैयार, हो जाना मुनासिब है ।
पानी आनेसे पहिले ही, वन्ध लाना मुनासिब है ॥ १ ॥
ख्याल है सिर्फ सीता का, और वस फिकर न कोई ।
एक यहा पर रहे दूजे का, जाना ही मुनासिब है ॥ २ ॥
यहा फैसला किये विना, आगे न जाना है ।
जो होता धर्म क्षत्रिय का, वह दर्शाना मुनासिब है ॥३॥
जो होना था सो हो वीता, ख्याल मनसे भुला दीजे ।
उल्लंघ नीति वह जावे तो, धनुष उठाना मुनासिब है ॥४॥

दो— इधर अनुज से वात कर, हो वैठे होश्यार ।
शूर्पणखा ने महल में, मनमें किया विचार ॥

शूर्पणखा-विद्या सिद्धि राजकुमार की, जल्दी होने वाली है ।
हृदय कमल खिला ऐसे, जैसे फूलों की डाली है ॥
भोजन पान सभी सामग्री, तुरत फुर्त वनवाई है ।
लेकर सब सामग्री आप, दंडकारण्य में आई है ॥

दो.— क्रौंचरवा के तीर जव, आई गधूर पास ।
नजर उठा देखन लगी, दिल में अति हुलास ॥
वंशजाल है कटा हुआ, शम्बुक पुत्र का शीश पडा ।
यह दृश्य भयानक देखत ही, हुवा माता को अफसोस वडा ॥
लगी देखने अन्दर को तो, शीश विना धड लटक रहा ।
क्या कारण यह आज हुआ, कर रही सोच मन भटक रहा ॥
रुदन फाड रही अंवर को, नैनों से नीर है वरस रहा ।
मूर्च्छित होकर गिरी धरण पर, हृदय अंदर मे तडप रहा ॥
शूर्पणखा होकर सचेत, पुत्र के शीश को चूमती है ।
मूर्च्छित हो कभी गिरे धरण, कभी धड की तरफ घूमती है ॥

बिना नीर मछली जैसे यो, तडप रही खर की रानी।
और बोली अय बेटा तेरी, किस तरह गई यह जिंदगानी॥
अय बेटा तेरी खातिर मैं, सब सामग्री लाई थी।
इस बन खंड में शबुक बेटा, मैं तेरी खातिर आई थी॥

बाकी है नाराज सभी, इस कारण कोई न आया है।
छैया मैया को सबर कहां, मैंने तो तुझको जाया है॥
तू प्रातःकाल सदा उठ कर, माता को शीश झुकाता था।
और माता माता कह कर मेरा, हृदय कमल खिलाता था॥

दो. (शूर्पणखा) सिर पीटूं छाती धुनुं, हा शंबुक हा लाल।
और बता किसको कहूं, बन में अपना हाल॥

गाना न. ४९ (शूर्पणखा का विलाप) (बहरतबील)

छैया मैया को तजकर किनारा किया,
मेरी जान जिगर का सहारा गया।
मुझे छोड़ अभागिन को तू चल बसा,
और सर्वस्व कैसे विसारा गया॥ १॥
मैं तो आई खुशीसे यहां दौड कर,
साथ लाया न जहर करारा गया।
जिसको खाकर के मैं भी जाती उधर,
जिस जगह मेरा बेटा पियारा गया॥ २॥
हाय लटकता यह धड है पडा सिर उधर,
इससे थर्रा कलेजा हमारा गया।
अय बेटा करूं तो करू क्या बता,
मुझे जान जिगर आति मारा गया॥ ३॥
मत जा साधन को विद्या कहा पेश्तर,
जिससे कट करके सिर यह तुम्हारा गया।

कर चला गोद खाली कुमर मात की,
मेरे घरका तो सारा उजाग गया ॥ ४ ॥

दो. (शूर्पणखा) क्या मेरे ही भाग्य थे, फूटे इस जग मांय ।
विरह आपका हे कुमर, मुझ से सहा न जाय ॥

गाना (शूर्पणखारानी का विलाप) (विहाग)

प्राण प्यारे लाडले मूरत, जरा दिखलाय जा ।
रोवे खडी अम्मा तेरी, इसको तो धीर वधाय जा ॥ १ ॥
कौनसी साधी कुमर, विद्या बताती दे जरा ।
भोजन मैं लाई पास तेरे, यह जरा सा खायजा ॥ २ ॥
नौ मास रक्खा गर्भमें, मैं लाल तुझको सुख दिया ।
क्या कहे अम्मा मुझे, इतना तो शब्द सुनाय जा ॥ ३ ॥
बारह वर्ष अति दु:ख सहा, फिर खो दिये निज प्राण हैं ।
काटा है किसने सिर तेरा, यह तो जरा बतलाय जा ॥ ४ ॥

दो — शूर्पणखा ने इस तरह, किये बहुत विलाप ।
अब रोने से क्या बने, सोच किया फिर आप ॥
जिसने मारा राजकुमर, मैं उसकी खोज लगाऊंगी ।
जान का बदला जान ही लेकर, सुतका बदला पाऊंगी ॥
कैसे पता लगे मुझको, दुर्जन को स्वाद चखाऊं मैं ।
चिन्ह देख कर पाओं का, अब उसका पता लगाऊं मैं ॥

दो — जिधर गया लछमण उधर, चली चरण चिह्न देख ।
नयनों से जल वह रहा, कर रही सोच अनेक ॥

चौ — पद चिन्ह देखती जाय कभी, चहु ओर को दृष्टि घुमाती है ।
जब नजर पडे वह राम लखन, तब ऐसा सोचती जाती है ॥
क्या यह रवि चन्द्रमा है, या दो स्वर्गों के इन्द्र है ।
क्या साचात् है नल कुबेर, अति रूप कला में सुन्दर है ॥

दो.— कामबाण जिसको लगे, सुध बुध दे विसराय ।
शोक हुआ काफूर सब, बसे राम दिल मांय ॥

चौ— लगी देखने छिप वृक्षों में, काम बसा रग रग अन्दर ।
लाज शर्म उड़गई हुई, बेशर्म जाति जैसे बंदर ॥
मध्य भाग में दोनों के, मानों हो रहा उजाला है ।
वृक्षों पर योवन बरस रहा, रंग हरा बहुत कुछ काला है ॥

दो. (शूर्पण मन में)–रत्नो के पुतले बने, क्रांति रवि समान ।
क्या सब दुनियां का मिला, रूप इन्हो को आन ॥
क्या बिजली यह नक्षत्र, व्योम से बैठे टूट सितारे है ।
रम गये हाड और भिजी क्या, रग रग में फूल हजारे हैं ॥
है निश्चय पुण्यवान किसी, यह भूप के राज दुलारे हैं ।
और सभी कुछ हेच मुझे, बस लगते यही पियारे हैं ॥

दो— पलक नही झपके जरा, देख रही हर वार ।
दृष्टि गोचर फिर हुई, उसी जगह सीया नार ॥
देख हुई हैरान कहा से, यह चन्द्रमा चढ आया ।
शरद ऋतु मे प्रात काल जैसे, कि सूर्य निकल आया ॥
इन्द्राणी से अधिक रूप, फिर मैं पसद कब आऊंगी ।
रूप रोशनी और वढाकर, पास इन्होंके जाऊंगी ॥

दो— रूप देखकर शूर्पणखा, हुई विषय में लीन ।
इश्क बीच अंध हुई, न कुछ रहा अधीन ॥
रूप परावर्तिनी विद्या, अब शूर्पणखाने सुमरी है ।
बनी नई नवेली साक्षात्, जैसे कुबेर की कुमरी है ॥
तरुण अवस्था मोहिनी मूर्त चलता पक्षी देखगिरे ।
फिर गई सामने रामचद्र के, इधर फिरे कभी उधर फिरे ॥

दो.— काम राग में अंध हो, अद्भुत बनी अनूप ।
ऐसी व्यक्ति को कहा, आत्मगौरव स्वरूप ॥

गाना नं. ५१ (शूर्पणखा का शृंगार-वर्णन)

फिरे हंस गति से कामन, दामन कर सोलह शृंगार ॥ टेर
मजन कर बनाय अंजन, नेत्रों में लिया डाल ।
मस्तक ऊपर गोल बिंदी, मोती से पिरोये बाल ॥
चूडामणि फूल शीश, गले में हीरों की माल ।
नाक में बुलाक शोभे, मोती जडी साडी लाल ॥
बदल— गहनों की झंकार घणी है, वेशर में हीरों की कनी है ।
शोभा अति अधिक बनी है, नखरे का न पार ॥ फिरे ॥१॥
चाद और जडाऊं बुजनी, कानों में सुनहरी वाले ।
कौड शीस बिम्बोष्ठी, नथ मांही मोती डाले ॥
मृगा नयनी सेवक ठोडी, जुल्फ जैसे नाग काले ।
गति है मराल हथिनी मस्त, जैसी चाल चाले ॥
बदल— चन्द्र वदनी कोयल वैनी, पहनी साडी ऊपर चोली ।
रसना पतली मीठी बोली, इन्द्राणी अनुहार ॥ फिरे ॥ २॥
हाथ कंठ परिवद, आरसी, चूड़ा पछेली ।
गजरा और जडाऊ पहुंची, मेंहदी से रची हथेली ॥
पहिने सब छाप छल्ले, अगूली ज्यूं मूंगफली ।
पुत्र विरहिनी पर कामवस नीत चली ॥
बदल— फूली नहीं समाती तनमें, खुश हो रही घूम उस वनमें ।
जैसे बिजली चमके घनमें, फिरे अकेली नार ॥ फिरे ॥ ३ ॥
पांव कडे रमझोल, मेंहदी बिछुवे और मोर ।
ठुमक ठुमक चाले गहणे, मारे करते शोर ॥

पावों में पायजेब सोहे, घुघर वाली चहु ओर ।
दुबक छुपक आई जैसे, पाड लाने चौर ॥
चदल— रही घूम विषय के वलमें, गधहस्ति जैसे दल में ।
घड रही वनावट मनमे, करे इधर उधर संचार ॥ फिरे ॥४॥

दो.— देख हाल यह राम ने, मन में किया विचार ।
किस कारण उद्यान में, फिरे अकेली नार ॥
शूर्पणखा को इस तरह, वोल उठे श्री राम ।
इस दुर्गम उद्यान में, कौन तुम्हारा काम ॥

(राम)- कहो वृतान्त अपना सारा, किस कारण वनमें आई हो ।
और इधर उधर क्या देख रही, कुछ भय न जरा मनलाई हो ॥
क्या कहीं चौला है गिरफ्तार, जिसकी तुम फिरो तलाशी में ।
क्या आई पैदल इस वन में, या वैठ विमान आकाशी में ॥

दो. (शूर्पणखा) अव्वल तो उद्यान में, वैठे दूर हजूर ।
उपयोग नही दोयम लगे, उडे व्योम में धूर ॥
जरा पास आ करके अपना, मैं सारा हाल सुनाती हूं ।
मैं मनुष्य मात्र से डरी हुई, कुछ भय इस कारण खाती हूं ॥
कुछ हाल पूछना चाहते हैं, अनुमान यही मैं पाई हूं ।
अब कान लगाकर सुन लीजे, मैं पास सुनाने आई हूं ॥

दो. (,,) पुत्री हूं भूपाल की, सोई शिखर आवास ।
एक विद्याधर था जा रहा, वैठ विमान आकाश ॥
यह देख रूप मेरा मोहित, होगया उसी दम विद्याधर ।
मैं निद्रागत मुर्दे समान थी, मुझे नही कुछ रही खबर ॥
बस डाल विमान में ले भागा, यह कह नही सकती गया किधर
वह मुझे जिधर ले चला, और एक आ विद्याधर मिला उधर ।

दो (शूर्पणखा)-निद्रा जब मेरी खुली, हुई बहुत हैरान ।
देखा तो चहुं ओर है, बियावन उद्यान ॥
यह देख मेरी सुन्दरताई, दूजा विद्याधर ललचाया ।
और मुझे खोसने के कारण, झटपट उसको मारन धाया ॥
बैठाकर मुझको एक ओर, फिर लगे परस्पर लड़ने को ।
यह ऐसा पापी रूप हुवे, तैय्यार मनुष्य दो मरने को ॥
दो.(,,)-मैं बैठी वहां रो रही, किस्मत को लाचार ।
हाय मेरा अब कौन है, इस वन के मंझार ॥
छं (,,)-लड़ लड के दोनों मर गये, खोटे व्यसन का फल मिला ।
रह गई वन में अकेली, कांपता मेरा दिला ॥
फिरते फिरते थक गई, रस्ता न कोई इन्सान है ।
धड़कता है मन मेरा, किन्तु न निकली जान है ॥
इस समय मेरा सहायक, धर्म या प्रभु आप हैं ।
शांति मुझ को मिल गई, बस कट गये संताप है ॥
कष्ट मेरा शील के प्रताप, से सब टल गया ।
इस जन्म में बस आप सा, भर्तार मुझको मिल गया ॥

❀गाना नं. ५२ (रामचन्द्र और शूर्पणखा का सम्मिलित गाना)❀

शूर्पणखा-कल खुश्क था यह जंगल, अब है महकार छाई ।
चमकार पंचवटी में, क्या रोशनी फैलाई ॥ १ ॥
तुम किसके हो शहजादे, कबसे यहां पे आये ।
दोनों की खूब सूरत चेहरे की क्या गोलाई ॥ २ ॥
राम— अयोध्या पुरी सुनी है, दशरथ के हम दुलारे ।
सीता यह राजरानी, लक्ष्मण यह मेरा भाई ॥ ३ ॥
तेरह है साल गुजरे, फिरते है हम वनों में ।
रानी है तू कहां पर, यहां पे किधर से आई ॥ ४ ॥

शूर्पणखा-क्या तुम न जानते हो, राजा की मैं हूं पुत्री।
मेरी रूप रोशनी ने, खल्कत में धूम पाई ॥ ५ ॥

राम— फिरती है क्यो अवारा, जगल में इसतरह तू।
कामन नादान तेरे, दिल में यह क्या समाई ॥ ६ ॥

शूर्पणखा-जादू भरी यह सूरत, दिल में बसी है मेरे।
अब आपके है कर में, दुःख दर्द की दवाई ॥ ७ ॥

राम— तुम लखन को सुनाओ, अपनी यह दुःख कहानी
हट दूर हो यहां से, क्या गड़बडी मचाई ॥ ८ ॥

शूर्पणखा-लक्ष्मण जो तेराभाई, नादान है अक्ल का।
मेरी तरफ तो उसने, न नजर तक उठाई ॥ ९ ॥

राम— किया था मैं इशारा, लक्ष्मण के पास जाओ।
फिर भी आ तुमने, यहा पर क्यों टिकटिकी लगाई ॥ १० ॥

दो (शूर्पणखा)-हाथ जोड विनती करूं, कर लीजे स्वीकार।
शादी मुझसे कीजिये, और न कुछ दरकार ॥

दो— इतनी सुनकर बातको, चौंक पडे श्रीराम।
सोचा यह प्रपंच सब, कर रही आकर वाम ॥

राम— देखो कैसे नार आन, त्रिया चरित्र फैलाती है।
आप बनी भोली भाली, और पागल हमें बनाती है ॥
एक बात मुखसे करती, और चार बनाती आखोंसे।
अंग अंग है नाचरहा, जैसे दरख्त निज पातों से ॥

दो (राम-मनमें)-बेशक इसको प्रेम है, पर है व्यभिचारिणी नार।
भेजूं लक्ष्मण की तरफ, देवें मान उतार ॥

दो— रामचन्द्र कहने लगे, शूर्पणखा को बैन।
जा परले के पास तू, जरा लगा के सैन।

राम— पास नहीं जिनके नारी, बस चाव उन्ही को होता है ।
जो फसे प्रेम के फन्दे में, वह फिरे उमर भर रोता है ॥
एक नार है पास मेरे, दिन रात नींद नहीं आती है ।
जा लक्ष्मण के पास, अर्ज कर व्याह करना जो चाहती है ॥

दो— कामान्धी को खबर न, गई अनुज के पास ।
हाथ जोड करने लगी, चरणों में अरदास ॥

शूर्पणखा-हे नाथ विनती दासी की, करुणा कर हृदय धर लीजे ।
पास आपके भेजी हूं, अब विवाह मेरे संग कर लीजे ॥
लक्ष्मण एकदम झुंजलाया, बोला ज्यादह् बक बक न कर ।
जात है तू औरत की, वरना अभी उडादूं तेरा सिर ॥

दो.(लक्ष्मण)-क्यों कामिन अंधी हुई, फिरती शर्म उतार ।
पहिले मेरे भ्रात को, बना चुकी भर्तार ॥

(,,) कहा गया वह सत्य तेरा, जो पति दूसरा चाहती है ।
बन की कहीं चुडेल आन, नखरे हमको बतलाती है ॥
शूर्पणखा सहमी जाती, लक्ष्मण बेधडक सुनाते है ।
सिया राम उधर हंस हस कर, दोनों हाथों ताल बजाते है ॥

दो.(,,)-चल हट यहां से अलग हट, गले न तेरी दाल ।
और कहीं पर आप यह, डालो अपना जाल ॥
बडे भ्रात ने करी प्रार्थना, भाभी लगे हमारी है ।
देख आरिसा जरा दिखाऊ, क्या यह शक्ल तुम्हारी है ॥
टिम टिमाकर खडी सामने, नयनों को फडकाती है ।
झूठ बोलते हुवे जरा भी, मन में नहीं लजाती है ॥
छल फरेब करती घर घर लो, रूप बनाकर आई है ।
क्या इसी शक्ल पर दो पुरुषों ने, कहती जान गवाई है ॥

शूर्पणखा–क्या तुम न जानते हो, राजा की मैं हूं पुत्री।
मेरी रूप रोशनी ने, खल्कत में धूम पाई ॥ ५ ॥

राम— फिरती है क्यों अवारा, जंगल में इसतरह तू।
कामन नादान तेरे, दिल में यह क्या समाई ॥ ६ ॥

शूर्पणखा–जादू भरी यह सूरत, दिल में बसी है मेरे।
अब आपके है कर में, दुःख दर्द की दवाई ॥ ७ ॥

राम— तुम लखन को सुनाओ, अपनी यह दुःख कहानी
हट दूर हो यहा से, क्या गड़बडी मचाई ॥ ८ ॥

शूर्पणखा–लक्ष्मण जो तेराभाई, नादान है अक्ल का।
मेरी तरफ तो उसने, न नजर तक उठाई ॥ ९ ॥

राम— किया था मैं इशारा, लक्ष्मण के पास जाओ।
फिर भी आ तुमने, यहा पर क्यों टिकटिकी लगाई ॥ १० ॥

दो (**शूर्पणखा**)–हाथ जोड विनती करूं, कर लीजे स्वीकार।
शादी मुझसे कीजिये, और न कुछ दरकार ॥

दो— इतनी सुनकर बातको, चौंक पडे श्रीराम।
सोचा यह प्रपंच सब, कर रही आकर वाम ॥

राम— देखो कैसे नार आन, त्रिया चरित्र फेलाती है।
आप बनी भोली भाली, और पागल हमें बनाती है ॥
एक बात मुखसे करती, और चार बनाती आखोंसे।
अंग अंग है नाचरहा, जेसे दरख्त निज पातों से ॥

दो. (**राम-मनमें**)–बेशक इसको प्रेम है, पर है व्यभिचारिणी नार।
भेजूं लक्ष्मण की तरफ, देवें मान उतार ॥

दो— रामचन्द्र कहने लगे, शूर्पणखा को बैन।
जा परले के पास तू, जरा लगा के सेन।

राम— पास नही जिनके नारी, बस चाव उन्ही को होता है ।
जो फसे प्रेम के फन्दे में, वह फिरे उमर भर रोता है ॥
एक नार है पास मेरे, दिन रात नीद नही आती है ।
जा लक्ष्मण के पास, अर्ज कर व्याह करना जो चाहती है ॥

दो— कामान्धी को खबर न, गई अनुज के पास ।
हाथ जोड करने लगी, चरणों में अरदास ॥

शूर्पणखा-हे नाथ विनती दासी की, करुणा कर हृदय धर लीजे ।
पास आपके भेजी हूं, अब विवाह मेरे सग कर लीजे ॥
लक्ष्मण एकदम झुंजलाया, बोला ज्यादह बक बक न कर ।
जात है तू औरत की, वरना अभी उडादू तेरा सिर ॥

दो (लक्ष्मण)-क्यों कामिन अंधी हुई, फिरती शर्म उतार ।
पहिले मेरे भ्रात को, बना चुकी भर्तार ॥

(,,) कहां गया वह सत्य तेरा, जो पति दूसरा चाहती है ।
बन की कहीं चुडेल आन, नखरे हमको बतलाती है ॥
शूर्पणखा सहमी जाती, लक्ष्मण बेधडक सुनाते है ।
सिया राम उधर हंस हस कर, दोनों हाथों ताल बजाते हैं ॥

दो. (,,)-चल हट यहां से अलग हट, गले न तेरी दाल ।
और कहीं पर आप यह, डालो अपना जाल ॥
बडे भ्रात से करी प्रार्थना, भाभी लगे हमारी है ।
देख आरिसा जरा दिखाऊ, क्या यह शक्ल तुम्हारी है ॥
टिम टिमाकर खडी सामने, नयनों को फडकाती है ।
झूठ बोलते हुवे जरा भी, मन में नहीं लजाती है ॥
छल फरेब करती घर घर लो, रूप बनाकर आई है ।
क्या इसी शक्ल पर दो पुरुषों ने, कहती जान गंवाई है ॥

हट यहां से क्यों इधर उधर चमकाती डोले बिन्दी है।
तुझ जैसी नहीं और कोई दुनिया में नारी गदी है ॥
दो. नौ. (लक्ष्मण) पीठ दिखा यहां से जरा, शर्म न तुझे लगार।
भरा मुल्क चारों तरफ, करो देख भर्तार ॥
चौ. (लक्ष्मण) करो देख भर्तार यहां पर, चले न चाल तुम्हारी।
उल्लु जैसी शक्ल गधी, भी चाहे शेर सवारी ॥
मायाचारिणी मिथ्याभाषिणी, बनती राजदुलारी।
मारूं हंटर अभी अक्ल, आजाय ठिकाने सारी ॥
दौड़— कहां दुःख दिया आनके, सताती जान जान के।
चपल चालाक बाक है, और कही जा करो ठिकाना,
यहां न कोई गाहक है ॥
दो— कोरी कोरी जब सुनी, लक्ष्मण की फटकार।
शूर्पणखा को आगया, सहसा रोष अपार ॥
जैसे नागिन फणमारे, ऐसे दो हाथ मारती है।
कुछ बना नहीं काम समझ, पुत्र का मोह चितारती है ॥
बोली तूने ही मेरे शंबुक, का शीश उतारा है।
अब तभी श्वास लेऊंगी, मैं कटवा कर गला तुम्हारा है ॥
दो (लक्ष्मण)-हम भी बैठे है यहां, इसीलिये तैयार।
कह देना आवें जरा, होकरके हुशियार ॥
(,,) जा उन उनको दे भेज यहां, जिनको परभव पहुंचाना है।
है सूर्यवंशी यहां राम लखन, तूने क्या हमको जाना है ॥
अनुचित कहती शब्द चली, पाताल लकमें आई है।
खर दूषण को शंबुक के, मारे की खबर सुनाई है ॥
दो. (शूर्पणखा)-महाघोर अन्याय का, प्रलय हो गया आज।
एक लाल शबुक विना, सूना हो गया राज ॥

हाय निर्दयी ने कैसे शंबुक की गर्दन काट दई।
और बनचर जीवों को सब, टुकडे टुकडे करके बांट दई ॥
कुछ मुझसे भी वह पापी, अनुचित छेडाखानी करने लगे।
जब मैंने उनको धमकाया, तो लडने का दम भरने लगे ॥

दो.— सुत मारा जिस दम सुना, रोष गया तन छाय।
उसी समय भूपाल ने, योधा लिये बुलाय ॥
चौदह सहस्र महायोधा, दंडकारण्य में आये है।
महा गर्द गगन में छाय गई, आंधी से ज्यादा धाये है ॥
सब देख हाल यह अनुज भ्रात को रामचन्द्र समझाते है।
अब सावधान हो जा भाई शत्रु टिड्डी दल आते है ॥

दो. (राम) अय लक्ष्मण तुम यहां रहो, जनक दुलारी पास।
अरि दलके आऊ अभी, उडाकर होश हवास ॥
हाथ जोड लक्ष्मण बोले, महाराज बेनती सुनलीजे।
तुम रहो पास सीताजी के, मुझको रणमें जाने दीजे ॥
मैंने जो कांटे बोये है, मैं ही उनका मुह तोडूगा।
सब करू चपट मैदान धनुष, लेकर जब रण में दौडूंगा ॥

दो. (लक्ष्मण) जब तक जीये जगत् में, सेवक लक्ष्मण वीर।
तब लग तुमको क्या फिकर है भाई रणधीर ॥
बस हाथ शीश पर धर दीजे, मैं जाने को तैयार खड़ा।
और अभी दिखाता हूं करके, देखो यह साफ मैदान पडा ॥
तब बोले राम अच्छा तुम जाओ, हम यहा पर रह जाते है।
किन्तु एक बात हम और कहें, सुनता जा जरा सुनाते है ॥

दो (राम)—कह देना ललकार कर, पहले सुनलो बात।
शम्बुक की हमने नहीं करी, जान बूझ कर घात ॥

(,,) फिर भी गल्ती का खर दूषण, तुम दंड हमें दे सकते हो।
शम्बुक की मृत्यु का योग्य, कोई हर्जाना भी ले सकते हो ॥
यदि इस पर न ध्यान करें तो, फिर मैदान में डट जाना।
और किसी तरह भी अरिजन का, फिर धोखा भाई मत खाना ॥
यह ज्ञात मुझे कोइ दुनियां में, नही तुझे जीतने वाला है।
फिर भी यह साथ में लेजाओ, महा वज्रमयी जो भाला है ॥
घिर जाओ कही शत्रुओं में तो, सिहनाद शब्द करना।
मैं उसी समय आ जाऊगा, तुम भय न कोई दिल में धरना ॥

दो.— हंस कर बोले लखनजी, हे भाई रणधीर।
नम्र निवेदन है मेरा, धरो हृदय में वीर ॥

दो. (लक्ष्मण)-चढ़ते जल में प्रवेश करे, वह अपने प्राण गवायेगा।
क्रोधातुर को शिक्षा देनेवाला, निज काल बुलायेगा ॥
प्रारंभिक ज्वर में हे भाई, औषधी ज़हर बन जाती है।
और राग द्वेष में अधों को, शुभ शिक्षा कभी न भाती है ॥

दो (राम)-बुद्धिमान हो तुम लखन, हरफन में होश्यार।
जाओ अब रण रंग में, करो अरी की छार ॥

दो.— शीश नमा करके चला, सुमित्रा का लाल।
या यों कह दें कि चल दिया, खर दूषण का काल ॥
जा ललकारा सामने, करी धनुष टंकार।
मची खलबली फौजमें, भाग हो गये चार ॥
गड़गडाहट घनघोर शब्द, सुन सब दल का मन कांप पडा।
यह क्या आफत आती है, खर दूबण का भी दिल हांफ पड़ा ॥
आधी शक्ति तोड लखन ने, बाणोंकी झड़ी लगाई है।
आधी आगे जैसे तृणे, ऐसे सब फौज भगाई है ॥

जैसे बादल व्योम बीच, दलमें योधा यों गर्ज रहा।
या बालू के घर गेरन को, वारिवाह जैसे बरस रहा ॥
शूर्पणखा ने देख हाल यह, दान्तों में अंगुली डाली है।
फिर बोली हाय सितम लक्ष्मण, कर देगा सब दल खाली है॥
बिजली के मानिन्द कडक रहा, इससे अब कैसे पार पडे।
शक्ति हीन होगये योद्धा सब, झांक रहे हैं खडे खडे ॥
बिना वीर रावण के यहां न, पेश किसी की चलनी है।
एक नपूते ने सबका हृदय, किया छलनी छलनी है ॥

दो— लंका को अब चल दई, शूर्पणखा तत्काल।
रावण से कहने लगी, जो वीता सो हाल ॥

दो (शूर्पणखा)–तुम बैठे मैं लुट गई, भाई करो विचार।
पहिले सुत मारा गया, अब मरता भर्तार ॥

छ (,,)-वीर तेरे भानजेका सर, अलग धड से किया।
दो मनुष्य जंगल में है, डेरा निडरपन से किया॥
रोष कर तेरा बहनोई, लेके दल सारा गया।
विश्वास नहीं मुझको रहा जीता के या मारा गया ॥
चौदह सहस्र संग अकेला, वीर लक्ष्मण लड रहा।
शेर जैसे बकरियों में, यो लपक के अड रहा ॥
सब खत्म कर देगा यदि न, आप वहा पहुंचे वीरन।
फैल ऐसे जायगा, मानिन्द रवि जैसे किरण ॥
अब तो गोते खा रही, नैया मेरी मझधार है।
डोब देना या बचाना, आपके अखत्यार है ॥

दो— शूर्पणखा के सुन वचन, रावण करे विचार।
मूर्ख जाति नारि की, सोच न जिसे लगार ॥

रावण- प्रथम तो इस दुष्ट बहन ने, कुल को दाग लगाया है।
एक तुच्छ मनुष्य क्या खरदूषण, वह ही इसके मन भाया है॥
फेर नही यह आन गमी शादी में, मुख दिखलाती है।
अब गर्ज पड़ी तब आन खड़ी, नयनो मे नीर बहाती है॥
और कहती है दो मनुष्यों पर, चौदह हजार चढ़ धाये है।
फिर भी बतलाती खतरा है, नही दो काबू में आये है॥
प्रथम तो यह ठीक नहीं, यदि है भी तो क्या हमें पड़ी।
मर जाने दो उन दुष्टों को, रोने दो इसको खड़ी खड़ी॥
बीज नाश हो जाय तो, ही कुल का कलंक मिट जायेगा।
यदि सम्मुख नही पीठ पीछे, कहने सो भी हट जायेगा॥
दो चार घड़ी सिर पीट पीट कर, अपने रस्ते जावेगी।
किया कर्म जैसा इसने, उसका वैसा फल पावेगी॥

दो— शूर्पणखा दिल सोचती, बना नही कुछ काम।
बतलाऊं इसको वही, जो थी सुन्दर वाम॥

शूर्पणखा-है महा लम्पटी इन बातो का, कान इधर झट लायेगा।
कम से कम यह तो निश्चय है, एक बार वहां पर जायेगा॥
जैसे बीन बजाने पर, बस नाग मस्त हो जाता है।
ऐसे ही मस्त करूं इसको, अब यही समझ में आता है॥

दो— लाज शर्म को छोड़ कर, बोली रावण साथ।
अति आश्चर्य की सुनो, एक और है बात॥

शूर्पणखा-नारी जिनके पास एक सहस्रांशु जैसे चढ़ा हुआ।
या मानों बनरूपी रजनी के, गल चन्द्रमा पड़ा हुआ॥
स्फटिक रत्न जैसा तन है, जैसे सांचे में ढाली है।
मानिन्द दामिनी के क्रान्ति, चालि गति हंस निराली है॥

नलकुमरी न तुलना करती, न उपमा कोई जहान में हैं।
अमृत यदि कुछ है दुनियां में, तो उसकी एक जबान में है॥
अद्भुत है लक्षण सारे शुभ, अनुपम दमक दिखाती है।
और स्वर्गपुरी की इन्द्राणी भी, उसे देख शर्माती है॥
एक अगूठे की बराबरी, न तेरा रणवास करे।
नक्ष तेज अति पडे हुवे, सब खिला चमन प्रकाश करे॥
आश्चर्य की बात गधे के, गल हीरों का हार पडा।
एक रहे रखवाली उसकी, एक लडे रणबीच खड़ा॥
रत्न चीज जितनी दुनियां में, सबकी सब वह तेरी हैं।
तुम उसे बनाओ पटरानी, यह तीव्र भावना मेरी है॥
सर्प बीन पर मस्त हुआ, जैसे निज फरण लहराता है।
कर्मोदय भूप कुमार्ग पर, चलने का ढंग बनाता है॥

दो.— जादू करके कर गई, शूर्पणखा प्रस्थान।
विषयवर्धक वचन सुन, रावण हुआ गलतान॥
परनारी का ध्यान जिस, समय जिस प्राणी को आया है।
उस समय से समझो बस, उसकी किस्मत ने चक्कर खाया है॥
कुल गौरव मिला कर मिट्टी में अपयश का पिड भराता है।
और धन सपत की राख बनाकर, अंत में फिर पछताता है॥

दो— परनारी पैनी छुरी, पांच ठौर से खाय,
फल किपाक समान यह, दिल अन्दर धंस जाय।
तन छीजे यौवन हरे, पत पंचों में जाय,
जीवित काढे कालजा, मुआ नर्क ले जाय॥

चौ.— घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत हो, भंवरा प्राण गंवाता है।
भिज भिच कर मरे फूल में, पर नहीं उसे काटना चाहता है॥

चन्द्र रहे नित्य बारहवां जी, अष्टम सूर्य जान ।
बीज नाश कुल का होवे जी, दुर्गति का महमान ॥ ६ ॥
शीलवती सीता सतीजी, वसुधा में विख्यात ।
गौरव तजे न अपनाजी, बेशक होवे तन घात ॥ ७ ॥

दो— इधर सिया पूरी सती, धर्मन अति गुणवान ।
गुण जब रावण ने सुना, लगा काम का बाण ॥

रग रग में विष फैल गया, कुमति के चक्कर में आकर ।
पुष्पक विमान में बैठ गया, दशकधर जल्दी से जाकर ।
होनी बस कामांध बना, रावण बन को चल धाया है ॥
पास सिया के देख राम, पीछे विमान टिकाया है ।

दो— खड़ा खडा नृप सोचता, है यह अद्भुत रूप ।
तीन लोक में भी नही, ऐसा रूप अनूप ॥

रावण—नही पिछाडी हटे नैन, चेहरे पर रूप बरसता है ।
जैसे चातक मेघ बिना, ऐसे मन मेरा तरसता है ॥
या जैसे बिन पानी के कही, मछली का नहीं गुजारा है ।
बिना मिले यह पुण्य समुह मेरा न कहीं महारा है ॥
अद्भुत रूप अनूप चिन्ह, क्या तन पर पडें सभी आला ।
मानिद मौर की गर्दन के, कुदरत ने है सुरमा डाला ॥
जो भगिनी ने बतलाया था, उससे भी बढकर पाई है ।
सचमुच वनरूपी रजनी में, चंद्रमा बनकर आई है ॥
किन्तु आज क्या हुआ मुझे, नहीं पैर अगाड़ी बढ़ता है ।
मानिन्द सिह के आज सामने, राम नजर क्यों पडता है ॥
नक्ष तेज यह रामचन्द्र के, हृदय मेरा हिलाते है ।
जो सजे खडे वस्त्र शस्त्र से, काल रूप दिखलाते हैं ॥

दो. (रावण)–आगे पैर बढ़े नही, पीछे घटता मान
गिरफ्तार चौला हुआ, बने किस तरह काम ॥
(,,) जब तक बैठे है राम सामने, सिया हाथ नहीं आयेगी।
अब करूं याद विद्या अवलोकिनी. भेद यही बतलायेगी ॥
जनक सुता हर लेने का, यही एक ढंग निराला है।
आगे बैठा है शेर हटूं, पीछे तो भी मुंह काला है ॥

दो. मौ.–अवलोकिनी विद्या तुरत, करी याद भूपाल।
आन खडी हुई सामने, लगी पूछने हाल ॥
चौ नौ -लगी पूछने हाल आज, किस कारण मुझे बुलाई।
बतलाओ जो काम मेरे लायक, मैं करने आई ॥
मुश्किल से आसान करूं, जैसे बच्चे को दाई।
उसी बात में हू प्रसन्न, जो हो तुमको सुखदाई ॥
दौड – सभी कारण बतलाइये, आज मुझको अजमाइये।
हाथ अपने दिखलाऊं, शक्ति के अनुसार काम जो हो,
पूरा कर जाऊ ॥
दो. (रावण) काम आज ये ही मेरा, पाऊं सीता नार।
और नहीं चाहना मुझे, करो यही उपकार ॥
रावण—आगे प्रबल सिह बैठा, पीछे हट गिरू समुद्र में।
खैंच लिया मन सीता ने, बस झुरूं खडा बन अन्दर में ॥
सिर धुन कर विद्या बोली, राजन् क्या पाप कमाता है।
दूर करो यह दुष्ट ध्यान, यदि सुख सामग्री चाहता है ॥
दो. (अवलोकनिदेवी) सतियों में है शिरोमणि, रामचन्द्र की नार।
शील रत्न खंडे नही, करे जिस्म की छार।
(,,) यदि कोई चाहे मस्तक से, मंदर गिरी तोड गिरा दूंगा।
प्रमादी बनकर प्रबल सिह की, मूंछे पकड हिला दूंगा ॥

अन्तक न आवे पास कभी, चाहे काल कूट विष खा लूंगा।
और करूं हाजमा लोहे के, दान्तों से चना चबा दूंगा॥
शायद किसी के द्वारा यह, अन होनी भी कर सकता है।
पर स्वयं इंद्र भी सीता को आकर, नहीं फुसला सकता है॥

गाना नं. ५३ (अवलोकिनी विद्यादेवी का रावण को समझाना)

मानले कहना हमारा, मोड दिल इस पापसे।
है बुरा परिणाम हित करके, कहूं मैं आपसे॥ १॥
है पवित्र आत्मा, पूरी न छोडे धर्म-को।
क्यों बनाता भस्म, ऋद्धि की जला इस आगसे॥ २॥
आशिविष तेरे लिए है, लका को बारूद सम।
राख कर डालेगी सबको, यह जरासे शाप से॥ ३॥
सूर्यवंशी की वधु, मानिंद व्याधि के तुम्हे।
कर किनारा तज बदी, बच नरक के संताप से॥ ४॥

दो (रावण) मन में है सीता बसी, मुझे न सूझे और।
पटरानी इसको करूं, चाहे मिले दु:ख घोर॥
(,,) घोर नर्क स्वीकार मुझे, ऋद्धि की कुछ दरकार नही।
बिना सिया के दुनिया में, मुझको कुछ लगता सार नहीं॥
वे ही ढंग बता मुझको, जैसे सीता पा सकता हू।
फिर तो राजी से नाराजी से, जैसे हो समझा सकता हू॥
दो — अवलोकिनी विद्या कहे, तजो ख्याल यह नीच।
फिर भी सोच विचार क्यों, हृदय की लई मीच॥
(अवलो.)-यदि फूटगई किस्मत तेरी तो, मैं क्या यत्न बनाऊंगी।
जिस कारण मुझे बुलाया है सो तो, अब कुछ बतलाऊंगी॥

जब तक हैं श्री राम यहां पर, सिया हाथ नहीं आने की।
सुरपति भी यदि यहां आ जावे तो, पेश न उसकी जाने की॥

दो. (अवलो)–लक्ष्मण जब लडने गया, राम किया संकेत।
सिंहनाद तेरा शब्द, सुन आऊं रणखेत॥

यदि भीड पडे कोई तुम पर तो, मुझको शीघ्र बुला लेना।
तू सिंहनाद कर शब्द मेरे, कानो तक जरा पहुंचा देना॥
तुम करो शब्द अपने मुख से, बस रामचंद्र उठ धायेगा।
पीछे सीता रहे अकेली, काम तुरत बन जायेगा॥
सुनते ही तजवीज भूप का, हृदय कमल प्रकाश हुआ।
बोला विद्या से तुम जावो, बस काम मेरा सब पास हुआ॥
अब पुण्य मेरा वृद्धि पर है, सब काम ठीक बनता जाता।
सीता को हरूं जल्दी से, अब समय बहुत निकला जाता॥
अहा कैसा समय मिला, मन वांछित फल मैं पाऊंगा।
छलकर भेजूं अब रामचंद्र को, सीता हर ले जाऊंगा॥
राम लखन को तो दल में, खर दूषण मार मुकावेंगे।
ले चलें सिया को लंका में, अपना आनंद उडावेंगे॥

दो— सिंहनाद रावण किया, छुप रण भूमि की ओर।
सुनते ही सियाराम के, दिल में मचाया शोर॥

सिया राम से कहे युद्ध में, लक्ष्मण तुम्हें बुलाता है।
घेर लिया कही शत्रुने, इस कारण शब्द सुनाता है॥
इक जान टके सी लक्ष्मण की, और गौल अरिका भारी है।
जल्दी जाकर ललकारो तुम, फिर जूझेगा बलधारी है॥

दो— करे प्रेरणा घडी घडी, बनो सहायक जाय।
रामचन्द्र इस बात को, सोच रहे मन मांय॥

(राम) जो लक्ष्मण को घेर सके, नही जननी ने कोई जाया है।
यह आकर के किसी शत्रुने, ऐसा प्रपंच बनाया है ॥
वह महाबली योद्धा लक्ष्मण, निश्चय न किसीसे हारेगा।
करे शीश धड़से, न्यारे सब दल के होश बिगाडेगा॥

दो— रामचन्द्र यों कर रहे, दिल में निजि विचार।
होनहार आकर यहां, बैठी आसन मार ॥
वार बार सिंहनाद शब्द, रावण निज मुख से करता है।
वहा श्रीराम से करे प्रेरणा, सीता का दिल डरता है ॥
कहे रामचन्द्र वन वीच, अकेली कैसे जाऊ छोड तुझे।
नही हारता लक्ष्मण सारी, दुनियां से विश्वास मुझे ॥

दो. (सीता)-हे स्वामिन् दिल में जरा, कुछ तो करो विचार।
तुम्हे बुलाने के लिये, लक्ष्मण रहा पुकार ॥

गाना नं० ५४ (रामचन्द्र को लक्ष्मण की मदद के लिये सीताजी की प्रेरणा) सीताका-रामसे

जावो जावो जी महाराज, लक्ष्मण ने सिंहनाद सुनाया ॥ टेर॥
प्रेम ऐसा जिनका तुम साथ, दिवस कहो दिवस रात को रात।
तजे सुख राजपाट सब ठाठ, बनों में संग तुम्हारे आया ॥ १ ॥
जहा पर पड़ा कष्ट कोई आन, अगाडी हुआ आप सिरतान।
सुना जब चले बनों में राम, अवध का खाना तक न खाया ॥२॥
हमारी सेवा करी दिन रात, समझा तुमको पिता मुझे मात।
नजर नीची न ऊंची बात, कभी न मुंह की तर्फ लखाया ॥ ३ ॥
लिया शत्रु ने देवर घेर, जल्द जावो मत लावो देर।
फेर में पडे फेरसे फेर, समय बीता न हाथ कभी आया ॥ ४ ॥
मानों प्रीतम मेरी वात, करो शत्रु की जाकर घात।
मिले ना ऐसा तुम को भ्रात, पसीने की जगह खून बहाया ॥५॥

किया तुमने उनसे संकेत, पडा अब काम बीच रणखेत ।
हर घडी शब्द सुनाई देत, शुक्ल यह दिल मेरा घबराया ॥६॥

दो (राम) यही सोच मैं कर रहा, अय प्यारी मन माय ।
दुविधा के अंदर फंसा, कहू तुम्हे समझाय ॥

* गाना न ५६ (सीताजी को रामकी दुविधायें बताना) ~

लखन को जीते कोई, साक्षी यह मन देता नही ।
जाऊ अकेली छोड़ तुमको, यह भी तन कहता नही ॥ १ ॥
सोचो तो यह शत्रु का इलाका, घोर फिर उद्यान है ।
हाल क्या तेरा बने, कुछ भी कहा जाता नही ॥२॥
शब्द सुन सुन के कलेजा, आ रहा मुह की तर्फ ।
यदि सहायक न बनूं यह, भी तो दिल चाहता नही ॥२॥
प्रेरणा तेरी ने प्यारी, फेर डाला मन मेरा ।
अब तो भाई के मिले बिन, दिल सबर लाता नही ॥३॥

दो.— होनहार होकर रहे, क्रोडों करो उपाय ।
धनुष बाण श्रीराम ने, कर में लिया सजाय ॥
कुछ सीता के कहन से, कुछ प्रेरा सिंहनाद ।
पहिन कवच अब चल दिये, अरुणावर्त को साध ॥
बाया नेत्र श्रीराम का, चलते समय है फडक रहा ।
दाहिना फडके सीताजी का, यह देख कलेजा धडक रहा ॥
दाये से बायें हिरण गये, और तीतर बायें बोल रहा ।
पीछे को शकुन हटाते है, यह रामचन्द्र मन तोल रहा ॥
अशुभ कर्म जब उदय होय, काफूर अक्ल बन जाती है ।
इस उल्ट फेर में आन फंसे, नही समझ बात कोई आती है ॥
मन सोच रहे श्रीराम सिया को, अभी छोडकर आया हू ।
मैं पता भ्राता का लूं जल्दी, जाकर जिस कारण धाया हूं ॥

यही बात मन सोच रामने, आगे कदम बढाया है।
अवकाश सिया हरने का, पीछे दशकधर ने पाया है॥
खुशी खुशी अब लपक झपक, रावण कुटिया पर आया है।
और भोली भाली शक्ल बनाकर, ऐसे वचन सुनाया है॥

गाना न. ५७ (रावण और सीता का सम्वाद-गाना)

रावण—कुछ नीर पिलादे, प्यासा मैं आया तेरे द्वार पर।
कुछ ख्याल कर उपकार कर ॥ टेर ॥

सीता—विमान पास फिर देर लगी क्यों, जाते निजस्थानपर।
,, तू कौन कहां से आया, (रावण) लंका पुर से ॥
,, क्या जल कहीं तुझे न पाया, (रावण) प्या निज करसे।
,, जलाशय हर जां निर्मल जल, झरने बहें पहाड़ पर ॥१॥

रावण--वह जल हम नही पीते हैं (सीता) किस कारण से।
,, वस निर्मल जल पर जीते है (,,) तो कारण से ॥
,, जल्द पिलावो देर न लावो, काटे पडे जबान पर ॥ २ ॥

सीता—पीलो यह धरा हुआ है (रावण) दो अंदर से।
,, शीतल ही भरा हुआ है (,,) फिर दो कर से ॥
,, हम नहीं आते वाहर कुटी से, मत ज्यादह तकरार कर ॥३॥

रावण—क्या प्यासे जावें दर से (सीता) ऐसा न कहो।
,, तो भर दो लोटा कर से (,,) प्यासे न रहो ॥
,, किस कारण फिर देर लगाई, जल्दी से उपकार कर ॥४॥

सीता—कैसा है मनुष्य हठीला, (रावण) खुद गर्ज न हो।
,, रुक वैठा जैसे कीला, (,,) जो मर्जी कहो ॥
,, पीलो वह जल का लोटा तुम, मैं नही आती द्वार पर ॥५॥

रावण—इससे नहीं प्यास बुझेगी, (सीता) यह और पड़ा।
,, इससे तो और जगेगी, (,,) मुझे भर्म पड़ा॥
,, यदि पिलाना है तो पिला प्रेम जल वरना वस इंकार कर॥६॥

सीता—तू जल पीने नहीं आया, (रावण) हां समझ गई।
,, तुझे काल घेर कर लाया, (,,) वाह खूब कही॥
,, भाग यहां से वरना मारें, रघुवर तुझे पछार कर॥७॥

रावण—मैं हूं लंका का वाली, (सीता) हो सकता है।
,, तू बन मेरे घर वाली, (,,) क्या बकता है॥
,, जो मर्जी कहो शब्द फूल सम, शोभे रसना मार पर॥८॥

सीता—यह धड से शीश उडेगा, (रावण) क्या आफत है।
,, जब चिल्ले धनुप चढेगा (,,) क्या ताकत है॥
,, असुरनरेन्द्र थर्राते है, अरुणावर्त की टकार पर॥९॥

रावण—मैं महाबली त्रिखडी (सीता) बिल्कुल खर है।
,, है रामहकीर पाखंडी (,,) शेरे नर है॥
,, हरगिज न शोभे कौवेगल, तू रत्नो का हार वर॥ १०॥

दो (**रावण**) आया हूं मैं लक से, कर तेरा अनुराग।
निश्चय हृदय में धरो, खुले आपके भाग॥
(,,) तुम त्रिखंडी की पटरानी बन गई चाल शुभ कर्मो की।
अब चन्द दिनों में ज्ञात हो जाओगी तुम इन सब भर्मो की॥
अब जल्दी पुष्पक विमान में बैठो, दूर सभी यह शर्म करो।
पलके पर मौज उड़ाओगी, दिल में न रंचक भर्म करो॥

दो— रावण ने अनुचित वचन, कहे इस तरह भाष।
सीता के भी उड गये, एकदम होश हवास॥

चौ— देख अनुपम रूप भूप की, खुशी का न कोई पार रहा ।
अब राजी से नाराजी से, बैठो विमान में मान कहा ॥
वज्राघात हुआ सीने पे, मानिंद फूल मुर्झाई है ।
ऊंचे स्वर से रोई सीता, नयनों में जल भर लाई है ॥

दो— धर्म मन में धार कर, बोली सीता नार ।
दुष्ट यहां से भाग जा, क्यों मरता बदकार ॥

(सीता) आकर के श्रीराम तेरा यह, धड़से शीस उड़ादेंगे ।
महा वज्रावर्तज धनुपबाण से, तेरे प्राण गंवादेंगे ॥
हाथ बढ़ाकर रावण ने, झटपट विमान बैठाई है ।
फिर बैठ के आप विमान में, झट चलने की कला दबाई है ॥
परवश वह सीता हाय हाय कर, ऊंचे स्वरसे रोती है ।
हाथों से सिर पीट पीट कर, अपने तन को खोती है ॥
सब देख हाल यह, तुरत जटायु पक्षी पीछे धाया है ।
निज चोंच पख और पंजों से, रावण संग युद्ध मचाया है ॥
सीता को छुडवाने कारण, तन मन से जोर लगाया है ।
पक्षी नही हटा हटाने से, फिर क्रोध भूपको आया है ॥
पकड़ जटायु को कर से, दोनों पख तोड़ बगाया है ।
वह पंख हीन लाचार जटायु, शरण धरण की आया है ॥
कुछ फिकर नही पक्षी को, अपने दु ख का या मर जाने का ।
एक शल्य है वडा हृदय में, सीता को हर ले जाने का ॥
निर्भयता से जा रहा रावण, वैदेही रुदन मचाती है ।
यह मुझे ले चला दुष्ट कोई, आ करो सहाय बताती है ॥
हे ! राम पति देवर लक्ष्मण, रावण से मुझे छुडालो तुम ।
हा ! खेद पुकार कोई नही सुनता, हो बैठे सबही गुमशुम ॥

हाय ससुर दशरथ तुम हो, कुछ आज सहाय करो मेरी।
हे जनक पिता कहाँ गये, विदेहा मात मैं जाई हू तेरी॥

हे भामडल वीर कही, सुनता हो मुझे छुड़ा लेना।
कोई परोपकारी मनुष्य मात्र, रावण से मुझे बचा लेना॥

क्या निश्चल सब ही पत्थर की, मूर्ति के मानंद बने।
क्या आज मेरी किस्मत लौटी, दुखिया की कोई न बात सुने॥

सास और परिवार सभी, कहते थे तू मत जा वन में।
यह किस्मत उल्ट गई मेरी, बस एक नहीं लाई मन में॥

परवाह नहीं कुछ मरने की, मैं अभी जबान को काढ मरूं।
पर राम प्राण तज देवेंगे, इसका कहो क्या मैं इलाज करू॥

दो— सीता ऐसे कर रही, दुःख में रुदन अपार।
सुनने वाला कौन था, उस वन में नरनार॥

अर्कजटी का पुत्र एक, रत्नजटी कहलाता था।
विमान के द्वारा शूरवीर वह, कंबुक द्वीप में आता था॥

रुदन सुना जब सीता का, कुछ मन में जरा विचारा है।
यह सिया बहन भामंडल की, जो जिगरी मित्र हमारा है॥

श्री दशरथ की कुल वधु, रामचन्द्र की नार कहाती है।
रावण हरके ले चला लंक में, अपना दुःख सुनाती है॥
यदि लड़ू मैं रावण से तो, निश्चय प्राण गंमाऊंगा।
पर कुछ भी हो क्षत्रापन को, हरगिज नही लाज लगाऊगा॥
जो कर्तव्य अपना पालूंगा, बेशक फल हाथ नही आवे।
जो वक्त पडे पर कर दे टाला, वह क्षत्रिय नर्क बीच जावे॥
खिला फूल जो आज बागमें, वह एक दिन कुम्हलावेगा।
इस तन पिंजर को छोड जीव, मात्र परभव को जावेगा॥

दो.— कर्त्तव्य अपना समझ कर, खैंच लई तलवार ।
रावण के सन्मुख अडा, यों बोला ललकार ॥

दो. नौ. (रत्नजटी)-दुर्बुद्धि दुरात्मा, नामर्द चौर के चौर ।
कहां सिया को ले चला, देखूं तेरा जोर ॥

चौ. (,,)-देखूं तेरा जोर करू पापी, धड से सिर न्यारा ।
निर्भय हो जा रहा लक, नहीं जाना मिले सुखारा ॥
छोड अभी सीता को नहीं, मारूं धर तान दुधारा ।
रामचन्द्र की नार चुराकर, फासा निज गलमें डारा ॥

(दौड) बेशर्म शर्म न आई, क्या अबला नार चुराई ।
भुजा फडके है मेरी, झेल मेरा यह बार,
जान सकट में आगई तेरी ॥

दो.— रावण यों कहने लगा, जरा जरा मुस्काय ।
गीदड की आवे कजा, ग्राम सामने जाय ॥

रावण—उछल कूद कर मैंडक सा, किस को तलवार दिखाता है ।
प्रवल सिह के ऊपर भी, आकर के धौंस जमाता है ॥
जान बचाकर भाग अरे, मूर्ख क्यों प्राण गंवाता है ।
कोई गरीब मार न हो जावे, मुझको विचार यह आता है ॥

दो — झगड़ा दोनों में बढ़ा, लगा होन सग्राम ।
रत्नजटी ने लगा दई, अपनी शक्ति तमाम ॥
तीव्र हवा में टिक नहीं, सकता पक्का आम ।
इसी तरह तौफान सम, रावण था उस धाम ॥

छं — काट शस्त्र तोडकर विमान, सब बेपर किया ।
लाचार हो नीचे गिरा, कर्तव्य पूरा कर दिया ॥

कंवूगिरी पर आ गिरा, कंवू ही नामा द्वीप है।
गिरते गिरते छिल गया, सारा जिस्म क्या पीठ है॥
मूर्च्छित हुआ वहा से, फिसल कंदर के अंदर जा पड़ा।
सीता सहायक देख अपना, यों कहे रावण खड़ा॥

दो (रावण)-जनक सुता रहो रंग में, सुख में दुःख न दिखाय।
भाग्य हीन संग राम के, फिरती थी वन मांय॥

(रावण) हूं तीन खंड का नाथ मेरे. चरणों में गजे गिरते है।
उन सब के हृदय कांप उठे, जब मेरे नेत्र फिरते है॥
भूचर खेचर क्या तीन खंड के, भूप सभी आधीन मेरे।
क्यो रोती है पटरानी बन जावेगी खुल गये भाग्य तेरे॥
थी कौवे रूप राम गल तू, रत्नो की माला पडी हुई।
तब लौट गई थी किस्मत तेरी, अब दीखे कुछ चढी हुई॥
शोभे दूध शंख अदर और जैसे लाल अगूठी में।
ऐसे तू मेरे सग शोभे- शस्त्र वूरे की मुट्ठी में॥
शशी सहित रजनी शोभे. हस्ती शोभे दो दातों से।
मौन सहित मूर्ख शोभे, और चतुर आदमी बातों से॥
मौर शीश कलगी शोभे, शूरा शोभे रण के अन्दर।
यो तेरी शोभा रंग महलो मे, यहा नही शोभती वन अदर॥
सब महारानियो के ऊपर, पटरानी तुझे बना दूगा।
जो भी आज्ञा तुम देओगी, मस्तक पर उसे उठा लूगा॥
निर्भय निजमन में हो जाओ, तुम को न कभी सताऊंगा।
मैं चाकर बनकर रहूं तेरा, किंकर बन हुक्म बजाऊंगा॥
शुभ जगह सदा मोती शोभे, मन में कुछ ध्यान लगा ले तूं।
धैर्य धर दस बीस दिनो तक. और मुझे अजमा ले तू॥

'जो स्वय हृदय से न चाहे', उस नारी का है नियम मुझे ।
बस यही जरा सी अटक हटा दे, साफ साफ अब कहू तुझे ॥
अपने सिर का ताज मान, निज मुख से शब्द सुना दे तू ।
हंस करके मुखसे कहो जरा, मम हृदय कमल खिलादे तूं ॥
जो कुछ इच्छा तेरी सो कर तू, तीन खडकी रानी है ।
दासो का दास बन रहू तेरा, बस यही मेरे मनमानी है ॥

दो.— सिया न ऊपर को लखे, राम चरण में ध्यान ।
उत्तर कुछ देती नही, समझे पशु समान ॥
ऊंचे स्वर से रो रही, करे अति विलाप ।
इसी बात का हो रहा, रावण को सन्ताप ॥

दो (रावण)-स्यानी होकर के सिया, क्यों बनती अनजान ।
देखो तो वह सामने, लंका कोट महान ॥

(,,) सुवर्ण मयी लंका सीता, वह देख सामने आती है ।
शुभ हवा देख यह देव रमण से, मस्त सुगधी लाती है ॥
तेरा ऊचे स्वर से रोना यह, गौरव मेरा घटाता है ।
सुन लोग कहेंगे क्या रोती, सूरत दशकधर लाता है ॥
फिर आती है कुछ शर्म मुझे, कैसे महलों में ले जाऊ ।
तब सभी रानियां पूछेंगी, तो क्या मैं उनको बतलाऊ ॥
सब रुदन छोडकर खुश चेहरा, हरवार तुझे समझाऊं मैं ।
कुछ तो बोलो क्या चाहती हो, सो ही सेवा में लाऊ मैं ॥

दो — सीता के चरणों में लगा, धरने मुकुट नरेश ।
जनक सुता पीछे हटी, करके रोष विशेष ॥
जैसे हवा चले पूर्व की, ध्वजा तुरत पश्चिम जाती ।
यदि चले वायु पश्चिम की तो, फटकारा खा पूर्व आती ॥

मन में सोच रही सीता, अपना नही धर्म गंवाऊंगी ।
समय यदि आया तो रसना, खैंच तुरत मर जाऊंगी ॥

दो (सीता)-शील रत्न है, वाकी सब पापाण ।
कहा श्री सर्वज्ञ ने, मिले अन्त निर्वाण ॥
जो नाक कान दोनों तोडे, किस काम का वह फिर सोना है।
यह ऐसा मुझको रूप मिला, वस रात दिवस का रोना है॥
इस पापी रूप के कारण पहिले, माता पिताने दु ख पाया।
फिर भामंडल भाई का मन था, इसी रूपने भर्माया॥
और इसी रूप को अटवी में, चोरों ने घेरा लगाया था।
उस समय श्री लक्ष्मणजीने, उन सबको मार भगाया था॥

दो (सीता)-कर्मो ने है मुझ पर वुरा, डाला अव यह जाल ।
उन्मान सभी यह कह रहे, आने वाला काल ॥

(सीता) दुर्निवार यह आपत्ति, पापी मम धर्म गवायेगा ।
प्राणान्त यहा पर मैं कर दू, पीछे रघुपति मर जावेगा ॥
धर्म हेत सबको त्यागो, सर्वज्ञ देव वतलाया है ।
यह वाकी सब संयोग जगत के, झूठी सारी माया है॥
राज्य पति परिवार सभी, अवसान में एक दिन छूटेगा।
यह तन मेरा चमकीला भांडा, अवश्यमेव ही फूटेगा॥
चोट पड़ी अब सिर पर आकर, तो फिर क्या घबराना है।
सर्वस्व चाहे अर्पण कर दूं, आत्म का धर्म बचाना है॥
शील की खातिर तजो प्राण, ऐसी आज्ञा है श्रीजिन की।
अशुभ कर्म अब उदय आगया, तो फिर आस करू किन की॥
मौत के आगे डर क्या है, आत्म शक्ति दिखलाऊं मैं।
अब बोला जो कुछ मुख से तो कोरी बात सुनाउ मैं॥

दो. (रावण) अय सीता रोना तेरा, डाले मम सिर धूल ।
प्रसन्न चित्त मुख से जरा, बर्षा प्यारी फूल ॥

दो.— मुंह पीछे को फेर के, बोली त्योरी तान ।
अधम महा पापिष्ट तूं, बिल्कुल पशुसमान ॥

चौक (सीता) है आश्चर्य की बात गधे भी, इतर फूलेल फिरें टोहते ।
आज तलक दुनियां में देखें, कुरडी पर फिरते खोते ॥

उल्लुवत् नजर नहीं आता, तुझको तो आंख बनवा जाकर ।
प्रवलसिंह की ले खुराक, गीदड कहां छिप सकता धा कर ॥
मिले धूलमें सब लंका, शेखी क्या जता रहा मुझ को ।
मैं नारी नहीं नागिनी हूं, तज दे अभी साफ कहूं तुझको ॥
धिक्कार तेरी शूरमताई, जो मुझे चुरा कर लाया है ।
गौरव हीन काम नहीं करता, क्षत्रिय कुल का आया है ॥

गाना नं. ५८ (सीता की रावण को फटकार)

चल हट उल्लु गधे हैवान, बेहुदे गंवार दहकानी ॥ टेर
अकल के शत्रु दुर्गुण धाम, देख मैं किस नर की हूं बाम ।
चढेगे लंकापर लक्ष्मण राम, होवे काफूर तेरी राजधानी ॥१॥
मैं हू प्रबल सिंह की नार, देवर लक्ष्मण अति बलधार ।
तेरा धड़से लें सिर तार, बनावे क्या मुझको पटरानी ॥२॥
तेरी संपति ऐशोआराम, खाक की मुट्ठी करूं तमाम ।
मेरे भर्तार एक श्री राम, बके मत कौवे सुनी कहानी ॥३॥
मुझे तू पैनी बर्छी जान, विष या कालकूट समान ।
किया तैं दुष्ट कर्म नादान, बचे ना अब तेरी जिंदगानी ॥४॥

दो.— वचन काट करते हुए, सुने खुशीसे भूप ।
जैसे सरदी में लगे, मीठी सबको धूप ॥

चौ.— जैसे वाराती जन गाली, जान बूझ कर सहते है ।
सुन अयोग्य भापा अधिकारी, को हजूर ही कहते है ॥
यही हाल कामांवे का, कुछ नही समझ मे लाता है ।
वर्ताव देख वैदेही का, रावण मन को समझाता है ॥

दो. (रावण)-सीता की सब गालिया, मुझको लगते फूल ।
जो मरजी मुख से कहे, मुझे रंज न मूल ॥

,, प्रेम पुराना राम संग है, नया नया यह काम सभी ।
किया तंग तो ऐसा न हो, खेल जान पर जाय कभी ॥

प्रेम पशु का भी जैसे, अपने रक्षक से होता है ।
फिर यह तो राजदुलारी है, त्रिया हठ भी नही छोटा है ॥
अब रोती हुई इसको महलो में, ले जाना नही अच्छा है ।
सुन न लेवे रुदन कोई, जितना नर नारी बच्चा है ॥
देव रमण उद्यान वीच, एकान्त इसे ठहराना है ।
प्रेम भाव से शनैः शनैः फिर, सीता को समझाना है ॥

दो.— ऐसा मन में सोचकर, दशकधर बलवीर ।
देव रमण का ही हुआ, निश्चय ध्यान आखीर ॥

चौ.— सामन्त मन्त्री स्वागत कारण, उधर सामने आते है ।
नगरी और विशेष सजी, जय जय की ध्वनी सुनाते है ॥
छोड़ सभी को सुरति भूपने, देव रमण को लाई है ।
शुभ रक्ताशोक वृक्षनीचे, श्री जगदम्बा बैठाई है ॥
सब मेवा और मिष्टान्न थाल, वहां थे भोजन के लगे हुवे ।
जहा मीठे स्वरसे कोयल बोले, फूल बागमें खिले हुवे ॥
त्रिजटा नाम आदि दासी, सब आगे पीछे फिरती है ।
फल फूल हार गजरे अद्भुत, ला ला सेवा में धरती है ॥

शक्ति नही जबा लेखिनी में, सब सेवा का गुनगान करें।
अद्भुत वस्त्र क्या आभूषण, लाकर सारे सामान धरें॥
सब लङ्का भर में खुशी हुई, नृप नार अनुपम लाया है।
महाकष्ट के आरे चलें सिया पे, रावण मन हर्षाया है॥

दो — इच्छाएं सब तज दई, रामचरण में ध्यान।
शुक्ल प्रतिज्ञा सिया की, सुनो लगाकर कान॥

दो (सीता) लच्मण और श्री राम का, मिले न जबतक चेम।
खान पान का तब तलक, है मेरा भी नेम॥
प्रबंध बाग का ठीक बना, लंका को भूप सिधारा है।
सामत मन्त्री अधिकारी, क्या जनसमूह संग भारी है॥
कर्म शुभाशुभ जीवो को, कैसा सुख दु ख दिखलाते है।
और ज्ञानदर्शन चारित्र बिन, यह नष्ट नही हो पाते है॥

दो — सीता बैठी बागमें, रावण लंका मांय।
लच्मण की श्री रामजी, करने गये सहाय॥

चौ — भाग दूसरा हुआ खतम, सीता का हरण हुआ इसमें।
कोई छूटे कर्म बिना भुगते, यह शक्ति बतलाओ किसमें॥

रामचन्द्र का हाल शेष, सब पढो तीसरे हिस्सेमें।
धन्य "शुक्ल" वह पुरुष धर्म पर, कायम रहे परिषहमें॥

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

समाप्तोऽय रामायणस्य द्वितीयो भाग

श्री जैन रामायण प्रथम भाग पुस्तकाकारका शुद्धि अशुद्धि पत्र.

पृष्ट	लाईन नबर	अशुद्धि	शुद्धि
१८	८	देखा	रेखा
२०	१६	झनकर	झनकार
२४	२	यातन	यतन
२४	२०	आज्ञाया	आज्ञा पा
३२	१०	वसना	वसान्ना
३२	१४	धारमिथ्यात्व निवार	सम्यक्त्वधार मिथ्यात्व निवार
३६	४	खाता पिता	खाता फिरता
३७	२१	हमारे साथ	हमारे हाथ
४२	१८	अंक	अंग
४५	२२	सोमन	शोभन
४६	२	शमखाती	शर्मखाती
५१	५	भारी	भारी है
५१	२३	विशप	विशेप
५४	२४	किष्किधित	किष्किंधिसुत
५५	१६	वीत	विता
५५	२३	दोड	तोड
६२	१४	कमकमसे	कमसेकम
६४	४	कतव्य	कर्त्तव्य
७०	३	शील	शीश
७५	२	भवकाका	भवका
७५	२२	गोरवकी	गौरवकी
७७	१०	वढ	वढे
७६	१	भातु है	भानु है

७९	६	बदलाताथा	वह लाताथा
८१	४	ड्चक्कों	उचक्कों
८४	६	रानीने	रानीसे
८८	१८	उसस	उससे
८६	२१	किय पसया	किये पसपा
६३	२	मय	मम
६४	१५	प्रेम	प्रेमसे
६७	१२	विनपानी	विन पानी सम
१०१	२	पूरी	पूरी सती
१०२	२०	निम	निर्वाह
१०२	२०	निमवा उंगी	निभाउंगी
१०२	२१	कमय	समय
१०३	२	सम	सब
१०४	८	धिकाधिक	धिकधिक
१०४	१३	ढोकर	ठोकर
१०५	१३	इसके	इसको
१०७	६	माताने	माताके
११०	१५	वतलावो	वतलावें
१११	२३	द्रिया न कोई	द्रिया नकोई
११८	१०	का	क्या
१२१	२५	विफला	विमला
१२४	१५	कर दे	कर दो
१२७	२१	थापावह	था वह
१२७	२५	श्रमद्य	श्रभद्य
१२८	२	पाचक्र	पाचक से

१३४	८	मरना अच्छा है	अच्छा मरना है
१३६	४	ज्ञात तुझे	ज्ञात मुझे
१३६	२१	अपराजित	अपराजिता
१६७	११	नृपमे	नृपपे
१३७	१८	प्रम	प्रेम
१३८	१५	चकर	चक्कर

द्वितीय भाग

१	२२	वसुभूति	अनुभूति
३	१८	भूपाल	भूपाला
४	५	चोंरी	चोरी
६	६	सुखकर	सुखकार
६	६	खबर है	सबर है
६	१०	सबर है	खबर है
६	१८	ही	दी
६	१८	वधाई	वधाई है
८	६	भूमि	भूप
१०	१८	चखे	चाखे
१३	२४	मची	मच
१६	६	धाये हैं	धाया है
१६	२२	दिखलाया है	दिखलाते है
१७	१७	सुनाये हैं	सुनाया है
१७	२०	उचार	उचाट
१७	२५	गुणवर्तन	गुणवर्णन
१९	७	जिसके	जिसको
२२	८	घात को	घात कोई

२३	७	सव	सवर
२३	१४	घुलकर	घुलकर
२५	१४	फणियार	फणियर
२९	९	उठाने	उठा न
३३	१५	भगवान ध्यान	भगवान ध्याना
३६	२२	बुढावा घूर	बुढापा धूर
३७	१५	नप	नृप
३७	२२	झुक	झुकें
३९	२	अंक मे	अंग में
३९	१३	आया है	आता है
३९	२४	कर्णन	वर्णन
४२	१२	सुत	सुर
४४	१९	रनी	रानी
४६	१२	अपने	आपने
४८	१	दारु	हारु
५१	४	कर	करो
५१	५	वरा	वर
५१	२४	पवत	पर्वत
५२	१२	नमाता	नमाता हूं
५३	८	करू	मरू
५४	४	होवो	होकर
५४	७	पर	पर चरण
५४	१८	राज्य	राज्य करं
५५	१३	रही	रही ना
५८	१	मात	माता

५८	६	माईका	भाईका
५६	१	डरेगा	डटेगा
६२	२१	वताऊं लाऊं	बतलाऊं
६३	११	विचार	विचारा
६४	१५	दिल	दिल तेरा
६६	२३	नही	नहीं जिसे
६८	१२	निकाली	निकाली है
७०	१४	जलचर	जलधर
७०	१८	दिल्गानीका	जिन्दगानीका
७०	२०	जायेगा	जायगी
७१	१७	रहनेकी वही	रहनेकी वदी
७२	११	सोचनदूं	सोचन दूंगा
७६	२१	प्राणि	पाणी
७६	२३	करनाचाहिये	करना है
७७	११	जिसतरह	जिसजगह
७८	६	नैन	बेन
८३	१०	विधाताहो	विधाता है
८४	१७	चौथी	चौथी है
८५	६	वर	धर
८५	१७	लोहेका	लोहेको
८६	२०	भेट	मेट
६१	१४	निन्द	निन्दा
६२	२	श्राज	श्राज्ञा
६२	४	मुक्ति	युक्ति
६२	१०	श्रान्र्त	श्रार्त

९३	१९	मैं हैं	मै हूं
९४		यहा आठवीं-नववीं लाइन पूरी रह गई हैं-वे निम्न लिखित है-	

(हमचले वनोंकी सेर अवधका राज भरतने करना है ।)

९५	२४	पुगि	पूरा
९६	१६	झुकावे	झुकाये
९६	२४	सुमति	सुमति
९७	१३	चित्त	चित्त
९८	२	दुर्मेल	दुर्भेप
९८	९	सार	सारा
९८	२५	खाना है	भखना है
९९	२०	पाये	पाले
१००	९	झुकवायाहै	झुकाया है
१०१	२१	पौलो	पौला
१०२	१३	वोल	घोला
१०२	२४	पखर	फकर
१०६	४	वढाते हो	वढाते हैं
१०८	३	मेरे	मेटें
११०	२३	अभी तन	अभी न तन
१११	२०	क्षेत्र	क्षेम
११८	१५	अरवी	अटवी
११९	२	वात	वता
१२१	६	पतन	पट्टन
१२६	१६	रग वे	रग पे
१२६	२३	मुझ	मुझ को
१२८	३	शानी की	शानी का

१३४	२४	भूज	भुज
१३६	१५	लाले है	लाये है
१३७	७	चाट	चोट
१३७	१६	इमको	इसके
१३७	२०	भारी	मारी
१४१	३	जन मात्र	जन्मांतर
१४६	८	करके	कर में
१४७	१६	धार	भार
१४८	१८	यहां आधी लाईन छूट गई है सो इस प्रकार है अष्ट प्रवचन सम	
१४६	१७	हुवे	हुवे एकत्र
१५१	५	टला	टल
१५१	१४	नचाता	मचाता
१५६	८	फर्णावर	फणियर
१५६	१४	समझ सके	समझा सके
१५८	१२	यहा बाहरवी लाईन–पूरी छूट गई है तो नीचे मुजब है – (आत्म अरूप चेतन स्वरूप । क्या कर सकते सगीन किले)	
१६४	२४	मना गया	बन गया
१६६	१	सुर्यहास खाडा साधू	सुर्यहास खाटा नाथु
१६८	१३	बाई उदासी	लई उदासी
१७२	१२	हेच	हेय
१७२	२२	कुमटी है	कुमरी है
१८६	१४	वूरे की	सूरे की
१६७	२४	पूव	पूर्व
१६८	३	शील रत्न है	शील रत्न ही रत्न है